आर्यिका चंदनामती जी व उनके साहित्य का जैन धर्म के विकास में योगदान

BY

SWATI JAIN

UNDER THE SUPERVISION OF

Dr. Mahipal Jain **Dr. Anjali Mittal**

CENTRE FOR JAIN STUDIES

Submitted

in fulfillment of the requirement of the degree of Doctor of Philosophy in Jainology

to the

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY

MORADABAD

2020

@ Teerthanker Mahaveer University

Moradabad – Uttar Pradesh

All rights reserved

CERTIFICATE

Certified that the thesis titled **"आर्यिका चंदनामती जी व उनके साहित्य का जैन धर्म के विकास में योगदान"** submitted to Centre for Jain Studies, Teerthanker Mahaveer University, Moradabad in partial fulfillment of the requirements for the award of the Degree of Doctor of Philosophy in Jainology is a record of original work done by **Swati Jain** during the period of her study under our supervision and guidance.

This thesis has not formed the basis for the award of any Degree/ Diploma/ Associateship/ Fellowship or similar other title to any candidate of any University.

Research Supervisor(s)

Dr. Mahipal Jain	Dr. Anjali Mittal
Professor, Center for Jain Studies	Associate Professor
Teerthanker Mahaveer University	St. Joseph G.D. College

Chairperson, College Research Committee

Centre for Jain Studies

Teerthanker Mahaveer University

DECLARATION

I do hereby declare that the thesis titled **“आर्यिका चंदनामती जी व उनके साहित्य का जैन धर्म के विकास में योगदान”** submitted to Teerthanker Mahaveer University in partial fulfillment of the requirement for the award of the degree of Doctor of Philosophy in Jainology is a record of original work done by me during the period of my study under the supervision and guidance of Dr. Mahipal Jain and Dr. Anjali Mittal.

This thesis has not formed the basis for the award of any Degree/ Diploma/ Associateship/ Fellowship or similar other title to any candidate of any University.

Signature:……………………………………..

Candidate's Name: Swati Jain

Registration No: CJS15 Ph.D/108

Place: TMU, Moradabad

Date…………………………………

ACKNOWLEDGEMENT

With the blessings of respected Aryika Gyanmati Mata Ji I completed this work.

I bow down towards all Mata Jis of the Sangh.

I am deeply indebted and grateful to Swami Ravindra Kirti Ji for their encouragement and overall support througout the period of present thesis.

My sincere thanks to Shri Jeevan Prakash Jain who helped me at various stages of research work.

I pay my gratitude to honorable Chancellor of TMU Shri Suresh Jain who provided me an opportunity to do research work in his University.

I earnestly express my thanks to my supervisors Professor Dr. Mahipal Jain and Associate Professor Dr. Anjali Mittal for their invaluable guidance, encouragement and overall support thoughout the period of the present thesis.

I express my thanks to the Vice Chancellor of the university Prof. R.K. Mudgal, the Pro Vice Chancellor Prof. Raghuvir Singh, the Joint Registrar (research) Prof.Vaishali Dhingra, the CRC Chairman Prof. Vipin Jain and the Research Cell Coordinator Dr. Jyoti Puri.

I am grateful to the library staff who cooperated me in various ways.

I express my sincere thanks to Amit Jaggi who helped me in printing and binding.

Last but not least I offer my greatful regards to my in-laws Shri Vinay Kumar Jain and Smt. Sunita Jain, my mother Smt. Shashi Jain and my brother Rishabh Jain. Nothing less than the word gratitude be appropriate to express my emotion for my loving husband Shri Shobhit Jain and my cute daughters Kanchan and Aaradhya whose love, affection and cooperation helped me to complete my research work.

शोध प्रबन्ध का सार

अध्याय विवरण

1. प्रथम अध्याय में शोध की प्रस्तावना, उद्देश्यों, प्रयुक्त विधि तथा अनुसंधान की सीमाओं के विषय में वर्णन दिया गया है।
2. द्वितीय अध्याय में सम्बन्धित साहित्य के अवलोकन कर, अंकित किया गया हैं।
3. तृतीय अध्याय में जैन धर्म के इतिहास, जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर, प्राचीन जैनाचार्यों, आर्यिका पद, आर्यिका दीक्षा, जैन सतियों का वर्णन हैं।
4. चतुर्थ अध्याय के अंर्तगत आर्यिका चंदनामती जी के जीवन परिचय, उनके कृतित्व, साहित्य सृजन के माध्यम से जैन धर्म के विकास में योगदान एवं उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव आदि का विवेचन किया गया है।
5. पंचम अध्याय में षट्खण्डागम ग्रंथ का परिचय, महत्व एवं सिद्धांत चिंतामणि टीका के हिन्दी अनुवाद का परिचय व महत्व को प्रस्तुत किया गया हैं।
6. छठे अध्याय में आर्यिका चंदनामती जी की गुरू परम्परा, आर्यिका श्री को प्राप्त विशेष उपाधियों एवं तीर्थों के विकास के माध्यम से आर्यिका श्री के द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान के विषय में वर्णन किया गया हैं।
7. सातवें अध्याय में आर्यिका चंदनामती जी के समाज–सुधार सम्बन्धित कार्यों, शैक्षिक विचार जैसे– स्त्री शिक्षा, सर्व शिक्षा, संगीत शिक्षा पर बल आदि के विषय का वर्णन किया गया। साथ ही आर्यिका चंदनामती जी के रचनात्मक कार्यों द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान वर्णन किया गया हैं।
8. आठवें अध्याय में जैन साधकों द्वारा अंगीकार किये जाने कठोर नियमों एवं आर्यिका चंदनामती जी द्वारा उन नियमों के पालन द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं।

तत्पश्चात् उपसंहार एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया हैं।

अनुक्रमणिका पृष्ठ संख्या

अध्याय –1 प्रस्तावना	**1 से 21**
▪ प्रस्तावना	1 से 15
▪ समस्या का कथन	16
▪ शोध की आवश्यकता एवं महत्व	17
▪ अनुसंधान का उद्देश्य	18–19
▪ अनुसंधान विधि	19–20
▪ शोध प्रक्रिया	20
▪ अनुसंधान की सीमायें	20–21
अध्याय –2 सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन	**22 से 36**
▪ राष्ट्रीय शोध	23 से 34
▪ अन्तर्राष्ट्रीय शोध	34 से 36
अध्याय –3 जैन धर्म व जैन धर्म में आर्यिका पद का महत्व	**37 से 82**
▪ जैन धर्म का इतिहास	37 से 46
▪ जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर	46 से 54
▪ प्राचीन जैनाचार्य	55 से 62
▪ जैन धर्म में आर्यिका का पद	62
▪ आर्यिका पद का महत्व	63
▪ आर्यिका दीक्षा का स्वरूप	64 से 71
▪ जैन सतियाँ (जिन्होंने आर्यिका दीक्षा ली)	72

- प्रथम जैन आर्यिका –ब्राह्मी जी एवं अन्य आर्यिकायें 73 से 80
- बालसती गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी 81 से 82
- आर्यिका चंदनामती माता जी 82

अध्याय–4 आर्यिका श्री चंदनामती जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से जैन धर्म के विकास में योगदान 83 से 146

- जीवन परिचय 83 से 89
- जन्म 83
- शिक्षा 84
- विलक्षण व्यक्तित्व 84 से 86
- पारिवारिक जीवन 86–87
- साधना पथ पर अग्रसर 87 – 88
- ब्रह्मचर्य व्रत 89 से 91
- माता मोहिनी की दीक्षा एवं समाधि 91 –92
- आर्यिका दीक्षा 92
- आर्यिका पद की साधना 92–93
- आर्यिका पद के नियम 93–94
- कुशल नेतृत्व 94

व्यक्तित्व पर प्रभाव 94 से 97

- गणिनी ज्ञानमती जी का प्रभाव 95–96
- माँ मोहिनी देवी एवं उनके संस्कारों का प्रभाव 96
- आचार्य कुन्द–कुन्द एवं उनके साहित्य का प्रभाव 96–97

- साहित्य सृजन 97–98
- **साहित्य समीक्षा** **98–141**
- काव्य रचनाएँ 98
- भजन संग्रह 98–101
- काव्य कथानक 101
- विधान साहित्य 101–109
- चालीसा, आरती संग्रह 109 से 114
- पूजाएँ 114 से 118
- नाटक साहित्य एवं टीकाएँ 118 से 123
- सम्पादित ग्रंथ 123 से 126
- अंग्रेजी साहित्य 126 से 130
- अन्य साहित्य 130 से 141
- आर्यिका श्री चंदनामती जी के मंगल प्रवचनों के अंश 141 से 146

अध्याय – 5 आर्यिका चंदनामती जी कृत प्राचीन ग्रन्थ षट्खण्डागम की सिद्धांत चिंतामणि टीका के हिन्दी अनुवाद का महत्व 147 से 184

- षट्खण्डागम ग्रंथ परिचय 147
- आचार्य परिचय 147 से 155
- धवला टीका (आचार्य परिचय) 155 से 159
- सिद्धांत चिंतामणि टीका परिचय 159 से 173
- षट्खण्डागम ग्रन्थ का महत्व 173 से 175

■ सिद्धान्त चिंतामणि टीका के हिन्दी अनुवाद का महत्व 175 से 184

अध्याय – 6 आर्यिका चंदनामती जी की गुरू परम्परा एवं

आर्यिका श्री को प्राप्त विशेष उपाधियाँ 185 से 220

■ आचार्य शांतिसागर जी परिचय 185 से 193

■ आचार्य वीरसागर जी परिचय 193 से 197

■ आर्यिका ज्ञानमती जी परिचय 197 से 203

■ पी0 एच0 डी0 की मानद् उपाधि 203

■ प्रज्ञा श्रमणी की उपाधि 203

■ ब्राह्मी–सुन्दरी की उपाधि 203

■ **आर्यिका चंदनामती की अन्य विशेषतायें 204 से 206**

■ कुशल लेखिका 204

■ वात्सल्य की प्रतिमूर्ति 204

■ धर्म प्रभाविका 204

■ कुशल मार्गदर्शिका 204

■ कुशाग्र बुद्धियुक्त 204–205

■ बहुआयामी व्यक्तित्व 205

■ तीर्थ विकास में योगदान 205

■ त्रिलोक शोध संस्थान अन्तर्गत बेसिक डिप्लोमा के पाठ्य क्रम का निर्धारण 205

■ धार्मिक पत्रिकाओं के सम्पादन का कार्य 205

- जैन श्रावकों के लिये आवश्यक, अणुव्रतों के विषय में आर्यिका चंदनामती जी के विचार 206 से 216
- आर्यिका श्री द्वारा रचित कतिपय पूजाओं एवं साहित्य के महत्वपूर्ण अंश 216 से 220

अध्याय – 7 आर्यिका श्री एक समाज सुधारक के रूप में एवं उनके शैक्षिक विचार एवं रचनात्मक कार्यों द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान 221 से 250

- नवीन तकनीक द्वारा ज्ञान का प्रसार 221
- आर्यिका श्री के शैक्षिक विचार 222 से 223
- आर्यिका श्री के शिक्षण विधि के संबंध में विचार 223–224
- स्त्री शिक्षा पर बल 224 से 228
- आर्यिका चंदनामती जी एवं संगीत शिक्षा 228–229
- आर्यिका चंदनामती जी एवं भक्ति संगीत 229 से 231
- आर्यिका चंदनामती जी द्वारा सर्व शिक्षा का प्रसार 231–232
- जैन धर्म के मूल सिद्धांतों के विषय में अर्यिका श्री के विचार 232
- अहिंसा 232 से 235
- अपरिग्रह 235–236
- अनेकान्त 236–237
- स्याद्वाद 237
- कर्म सिद्धांत 238

■ दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान में आर्यिका चंदनामती जी भूमिका 238– 239

■ जम्बूद्वीप परिसर में निर्मित रचनायें 239 से 243

■ दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के तत्वाधान में क्रियांवित साहित्यिक कार्यों में आर्यिका चंदनामती जी की भूमिका 243

■ दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम 243 से 248

■ संस्थान द्वारा समय–समय पर दिये जाने वाले पुरस्कार 248 से 249

■ मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र : 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण स्थली 249–250

अध्याय – 8 आर्यिका श्री द्वारा आर्यिका पद के कठोर नियमों के पालन के माध्यम से जैन धर्म के विकास में योगदान 251 से 270

■ आहार शुद्धि 251 से 255

■ स्वाध्याय 255 से 257

■ संयम पालन 257–258

■ तप 258–259

■ त्याग 259

■ सामायिक 260

■ प्रायश्चित 260

■ पंच महाव्रत पालन 260 से 262

- जैन साधना में अत्याधिक महत्व पूर्ण चातुर्मास 262 से 264
- गुरू माता आर्यिका ज्ञानमती जी से प्राप्त ज्ञान के मोती 264
- आर्यिका चंदनामती जी के विषय में अन्य जैन साधकों एवं विचारकों के विचार 264 से 270
- उपसंहार 271 से 274
- निष्कर्ष 275 – 276
- भावी अनुसंधान हेतु सुझााव 276–277

सन्दर्भ ग्रंथ

परिशिष्ट

अध्याय – 1

प्रस्तावना

जिस भारत भूमि पर हमने जन्म लिया वह भूमि विभिन्न धर्मों की भूमि है। धर्म हमारी संस्कृति एवं सभ्यता की जड़ है। जिस पर हमारे देश की नींव टिकी है। विविधता में एकता भारत राष्ट्र की विशेषता यहाँ की परम्परायें, धर्मनिष्ठा एवं मानववादी विचार विश्व में प्रसिद्ध है। भारत सम्पूर्ण विश्व में एक मात्र ऐसा देश हैं जहाँ शाकाहार एवं मानव मूल्यों को सर्वाधिक महत्त्व मिला है। भारत में अनेक धर्म एवं संस्कृति विद्यमान है। यह भारत वर्ष सम्पूर्ण विश्व को सहिष्णुता एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की अनूठी शिक्षा प्रदान करता हैं। सम्पूर्ण विश्व में प्रेम की ज्योति प्रज्ज्वलित करने वाला भारत देश क्षमा, सर्वजीवहित, अपने संस्कारों व संस्कृति के लिये जाना जाता है। परन्तु वर्तमान में भौतिकता की चकाचौंध, पाश्चात्य सभ्यता व भोग विलासमय जीवन से ओत–प्रोत भारतवर्ष की युवा पीढी दिग्भ्रमित हो रही है। अपने संस्कारों को तिलाँजलि देकर युवा पीढ़ी अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये हिंसा, असत्य आदि पाप कार्यों का सहारा लेने में भी नहीं हिचकिचाती। जिस देश की संस्कृति में माता–पिता के चरण स्पर्श कर उनका आशीर्वाद शुभ माना जाता था वही आज हाय, बाय जैसे उद्‌बोधन प्रसारित हो रहे है। शाकाहार, जिसे हमारे राष्ट्र का प्राण माना जाता हैं, वह लुप्त प्रायः हो चुका है– मद्य, मांस, मदिरा का सेवन वर्तमान पीढ़ी के लिये शौक बन चुका है। स्कूल, कालिजों में पढने वाले छोटे–छोटे बालक तम्बाकू, सिगरेट, ड्रग्स के आदी बनते जा रहे हैं। गौ माता कहकर जिसकी पूजा की जाती थी आज उसका मांस भी विदेशों को निर्यात किया जाने लगा है। बलि प्रथा, वैश्यागमन आदि कुरीतियाँ धर्म के नाम पर पाँव–पसार रही है। सभी को समानता का अधिकार देने वाला भारतीय संविधान इन कुरीतियों व कुप्रथाओं का अंत करने में असमर्थ प्रतीत हो रहा है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील सेवन आदि पाप कर्म धर्म का रूप लेकर मानव को ही मानवता का शत्रु बना रहे हैं। यह हिंसा इतनी विकराल रूप ले चुकी है कि एक व्यक्ति दूसरे को आगे

बढते देख उसे नुकसान पहुँचाने से भी नहीं कतराता। हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर अपना अधिपत्य चाहता है। जिसके लिए वह नहीं करने योग्य कार्यों को भी सम्पादित करता है। जहाँ एक ओर पाश्चात्य संस्कृति से ऊब चुकी पश्चिम की युवा पीढ़ी भारत में अध्यात्म की खोज में आती है। वही दूसरी ओर भारत की युवा पीढी स्वयं के संस्कारों को त्याग कर पाश्चात्य रंग में रंगने के लिए तत्पर है यह अत्यन्त खेद का विषय है। ऐसी परिस्थिति में आवश्यकता हैं कि माता–पिता बालकों को नैतिकता व मानव मूल्यों का ज्ञान प्रदान करें। बालकों को सत्य, अहिंसा, त्याग व संयम के आदर्श प्रदान करें। युवा पीढी को वात्सल्य व प्रेम पूर्वक भौतिकता की चकाचौंध से दूर कर व्यसनों से दूर रखने का प्रयत्न किया जाए। इस कार्य के लिये नवीन पीढी के मन में घमण्ड, स्वार्थवाद, अंधविश्वास, प्रभुत्ववादी दृष्टिकोण आदि के स्थान पर सहनशीलता, एकता, जागरूकता, समानता की भावनाओं का विकास किया जाये तथा ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने व पुनर्उत्थान के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, ऐसी विचारधारा का अनुसरण किया जाये जो पूर्णतः प्रेमपूर्ण, वात्सल्य, करूणा, दया से ओत–प्रोत हो।

वह विचारधारा हैं जैन धर्म। जो परम पवित्र हैं, प्राचीन एवं पूर्णतः अध्यात्मिक है। अहिंसा परमो धर्मः व जिओ और जीने दो इसी महान धर्म के मूल सिद्धान्त है। प्राणिमात्र पर दया, करूणा एवं सर्वजीवों से प्रेम करने का संदेश जैन धर्म का सार है। शेर व गाय एक घाट पर पानी पिये, ऐसी महान सोच को प्रसारित करने वाला जैन धर्म ही है। जैन धर्म का इतिहास पुस्तक के अनुसार लगभग 2620 वर्ष पूर्व जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का पृथ्वी पर अवतरण हुआ। बालपन से ही अहिंसा की भावना उनमें इतनी प्रबल थी कि वे कभी घास तक पर पग नहीं रखते थे। (महावीर पुराण) किसी मनुष्य को हानि पहुँचाना तो उनके लिये अकल्पनीय ही था। जब उन्होनें किशोरावस्था में प्रवेश किया तो उनके आस–पास के वातावरण में घोर हिंसा व्याप्त थी ''धर्म–कर्म के नाम पर यज्ञ में, निर्दोष पशुओं की बलि दी जाती थी''[1]। (सुमेरूचंद्र शास्त्री दिवाकर, 2002) ऐसे हिंसात्मक वातावरण में महावीर स्वामी ने सम्यक् ज्ञान

[1]सुमेरूचंद्र शास्त्री दिवाकर, महाश्रमण महावीर, पृष्ठ संख्या 17

की अविरल धारा का प्रवाह किया और सम्पूर्ण मानव जाति को अहिंसा के महत्व से परिचित कराया जनसाधारण को इस सत्य का बोध कराया कि संसार के प्रत्येक जीव में समान आत्मा है। किसी पशु के प्राण घात करने पर उसे भी उतना ही कष्ट होता हैं व पीड़ा होती है जितनी किसी मनुष्य को होती है। उनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान से जन समूह अत्यन्त प्रभावित हुआ और सम्पूर्ण भारत वर्ष में होने वाली हिंसा में अद्भूत ह्रास देखा गया। इसी प्रकार का कार्य अन्य विद्वतगणों द्वारा भी समय–समय पर किया जाता रहा है। ‘‘भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी भी भगवान महावीर के सिद्धान्तों से अत्यन्त प्रभावित थे उन्होंने भी जीवनपर्यन्त अहिंसा का ही प्रचार–प्रसार किया’’। (गांधी एण्ड़ जैनिज्म्)

प्राचीन भारत के धर्म प्राण–जीवन से तुलना करने पर तत्कालीन जीवन में आज आकाश–पाताल जितनी दूरी दिखाई देती है, जनजीवन शून्य होता जा रहा है। आज मनुष्य तुच्छ मानसिकता का शिकार होकर स्वयं के स्वरूप से भिन्न दुःष्कर्म करने को तत्पर रहता हैं बलात्कार, शोषण, भ्रष्टाचार जैसे अमानवीय कार्यों का समाज में बोल–बाला हो रहा है। इस विकट परिस्थिति में बालक व युवा पीढी का नैतिक बौद्धिक विकास परमावश्यक है। पारिवारिक मूल्यों के साथ–साथ बालक पर विद्यालय में प्रदत्त शिक्षा का भी अत्यधिक महत्व है। शिक्षा बालक को उचित तथा अनुचित का बोध कराती हैं। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ही हैं बालक का सर्वांगीण विकास करना। शिक्षित बालक ही बडा होकर एक सामाजिक तथा जिम्मेदार नागरिक बनता है। संक्षेप में शिक्षा ही बालक को सही दिशा निर्देश देकर जीवन पथ पर अग्रसर होने की कला सिखाती हैं। परन्तु जिस प्रकार की शिक्षा आजकल विद्यालयों में दी जाती हैं उसमें सांकेतिक और वास्तविक हिंसा को बढावा मिल रहा है। वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये शिक्षा को पुनः परिभाषित करना होगा।

ऐसे में युवा पीढी को आदर्श शिक्षा व साहित्य का ज्ञान होना आवश्यक है, वर्तमान में इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं आर्यिका श्री चंदनामती जी जो स्वयं तो मात्र 11 वर्ष की आयु से संस्कारित जीवन व्यतीत कर रही हैं। साथ ही इन्होंने भावी पीढी के उत्थान के लिये भी संस्कार प्रेरणा व

ज्ञान से ओत–प्रोत जैन साहित्य से साहित्य का अथाह व अनूठा ज्ञान एकत्रित कर सरल, स्पष्ट एवं आधुनिकता व नैतिकता से परिपूर्ण नवीन रचनायें समाज को प्रदान की।

साध्वी जीवन में तीस वर्ष जैन धर्म के कठोर नियम पालन कर तप की अग्नि में स्वयं को कुंदन बनाकर आर्यिका जी ने युवा पीढी के लिये आचार्य, शास्त्री की शिक्षा के लिये पाठ्यक्रम के विषयों का संग्रह किया। उनकी रचनायें एवं उनके कार्य इतने महत्वपूर्ण है कि उनका वर्णन शब्दातीत हैं। मानव ह्मदय को शुद्ध एवं सुसंस्कारित कर उसमें विद्यमान विकारों को दूर करने का प्रयत्न ही आर्यिका चंदनामती द्वारा प्रदत्त पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य है।

आर्यिका स्वर्णमती जी के अनुसार ''अहिंसा और वात्सल्य की भावना से सम्पूर्ण सृष्टि स्वर्ग के सम्मान प्रतीत हो प्राणिमात्र संघर्ष से बचे, मानव जिसकी लाठी उसकी भैंस की उक्ति का आश्रय न ले तथा जिओ और जीने दो के महावीर के संदेश को जन–जीवन तक पहुँचाने का सर्वश्रेष्ठ कार्य आर्यिका श्री चंदनामती जी ने किया''[2]। (आर्यिका स्वर्णमती जी सन् 2016) आर्यिका श्री चंदनामती ने गुरूमाता आर्यिका श्री ज्ञानमती जी ने सानिध्य में सदैव सत्य, अहिंसा व वात्सल्य की प्रेरणा जन साधारण में प्रसारित की। आर्यिका श्री के कुशल नेतृत्व में समय–समय पर जैन धर्म प्रभावना व नैतिक शिक्षा प्रदान करने हेतु अनेकानेक कार्यक्रम, महोत्सव, सेमिनार आदि सम्पन्न किये जाते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण **"विश्व शान्ति अहिंसा सम्मेलन"** का आयोजन ''दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप–हस्तिनापुर तीर्थ पर किया गया जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी व आर्यिका श्री चंदनामती जी के सानिध्य में भारत गणतन्त्र की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमति प्रतिभा देवी सिंह पाटिल के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई''[3]। (आर्यिका चंदनामती 2011) आर्यिका चंदनामती ने "विश्व शान्ति अहिंसा सम्मेलन" के माध्यम से जन साधारण को शान्ति व प्रेम का उपदेश दिया। वात्सल्य की मूर्ति प्रज्ञा श्रमणी आर्यिका चंदनामती के अनुसार– "मनुष्य के दुख का कारण कोई अन्य नहीं अपितु उसके स्वयं

---

[2] आर्यिका स्वर्णमती जी से साक्षात्कार के आधार पर

[3] आर्यिका चंदनामती, दशलक्षण विधान, पृष्ठ संख्या 8

के कर्म है। हिंसा करके, झूठ बोलकर, चोरी करके व्यक्ति कभी सुखमय व शान्त जीवन व्यतीत नहीं कर सकता"[4]। (आर्यिका चंदनामती 2016) इसके विपरीत प्रेम, सद्भावना परोपकार प्रत्येक मनुष्य के जीवन को शान्तिपूर्ण बनाता है। वर्तमान में व्यक्ति धर्म को आधार बनाकर यदि लड़े तो इसमें कोई धर्म नहीं है। विद्युत का उपयोग प्रकाश के लिये किया जाता है, किन्तु यदि कोई विद्युत करन्ट का प्रयोग कर अपने जीवन को समाप्त कर ले, तो उसमें विद्युत का दुरूपयोग हैं। आर्यिका श्री हस्तिनापुर में जन सभा में धर्म को धर्म रूपी क्षमा, परोपकार, दया, संयम, त्याग, वात्सल्य व सहिष्णुता की शिक्षा देती हैं इसके विपरीत शिक्षा प्रदान करने वाला धर्म की श्रेणी में नहीं आता।

उनके अनुसार परोपकार की वास्तविक शिक्षा पर्यावरण प्रदान करता है। वृक्ष पथिक को छाया देता है, भूखे को फल देता है और बदले में कुछ नहीं चाहता। प्रकृति प्रदत्त अमूल्य भावनायें निःस्वार्थ भावना— सरिता निश्चल बहती है, प्यासे को जल देती हैं। वात्सल्य भावना— गाय निःस्वार्थ दुग्ध प्रदान करती है। परन्तु मनुष्य इतना कृतघ्न होता जा रहा है कि फल देने वाले वृक्ष को लकडी की प्राप्ति के लिये जड़ से काट देता है। सरिता में घर का कूडा—कचरा डाल उसे दूषित कर देता है तथा गौ माता का दुग्ध सेवन कर मांस के गाय को भी चिरनिद्रा में सुला देता है। मनुष्य पशुओं को बंधक बनाता है, पशुओं द्वारा आजीविका प्राप्ति के लिये पशुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करता है, उन पर अधिक भार लादता है, नृशंसता पूर्वक शारीरिक यन्त्रणा देता है तथा यथावत् आहार पानी नहीं देता, यह स्थिति मनुष्य समाज में अधर्म का ही कारण हैं। अधिक श्रम, अल्प वेतन, शोषण तथा उत्पीड़न अनैतिकता की श्रेणी में आता है। एक कम तोलने वाला, असत्य वाचन करने वाला, मिलावट—ठगी करने वाला चोरी, रिश्वतखोरी करने वाला भ्रष्टाचार की श्रेणी में आते हैं। फोर्ब्स ने अपने 18 महीने के सर्वे में पाया है कि एशिया महाद्वीप के टॉप 5 भ्रष्ट देशों में भारत का स्थान सबसे ऊपर है, भारत में रिश्वतखोरी की दर 69 प्रतिशत है"[5]। **(भारत में भ्रष्टाचार के आँकडों के आधार पर 2017)** इन सब पापों में परिहार,

---

[4] आर्यिका चंदनामती जी से साक्षात्कार के आधार पर

[5] Thewirehindi. com फोर्ब्स सर्वें, मार्च 2017

आत्मशुद्धि, मानव कल्याण व सद्ज्ञान का प्रचार किस प्रकार किया जा सकता हैं—यह जैन धर्म सिखाता है।

इस विषम परिस्थिति में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी जैसी समस्याओं के समाधान के लिये आर्यिका चंदनामती जी प्रवचन के माध्यम से समझाती हैं कि मनुष्य स्वयं की तृष्णा को सीमित करके लोभ से बचने का प्रयास करना चाहिये। बाह्रय दिखावा व भौतिकता की चमक चारित्र को भ्रष्ट कर देती है, इसके लिये जैन साधकों के आचरण से शिक्षा लेनी चाहिये। दिशा ही जिनके वस्त्र हैं ऐसे दिगम्बर मुनिराज एवं श्वेत वस्त्र धारिणी आर्यिका माता जी हैं जिन्होंने अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर त्याग के आभूषण को अंगीकार किया है, उनके लिये सांसारिक धन एवं भौतिक संसाधनों का प्रयोग त्याज्य हैं, तभी वे जगत पूज्य हैं। आर्यिका श्री श्रावकों को शिक्षा प्रदान करती हैं कि चारित्र के उत्थान व श्रावकाचार की रक्षा के लिये अनैतिकता का त्याग करके सद्वृत्ति अंगीकार करने से जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार से प्राप्त धन से क्षणिक सुख तो प्राप्त किया सकता है, परन्तु उसके साथ अपयश व अपकीर्ति कुल के गौरव को सदा के लिये कलंकित कर देती है।

मानव तृष्णा कषायों की जननी

वर्तमान परिपेक्ष्य से देखा जाये तो तकनीकी विकास के साथ मनुष्य सुविधा सम्पन्न तो हो रहा है परन्तु आंतरिक दुर्बलतायें लोभ, तृष्णा एवं काम का दबाव सुविधाओं से वंचित कर उसे अवसाद के गहन धरातल में ले जाते है। ऐसे में वह विभिन्न विकृतियों का शिकार हो जाता है।

जैन धर्म में इन विकृतियों को कषाय की संज्ञा प्रदान की है। कषाय जो आत्मा को कसे अर्थात् दुःख दे उन्हें कषाय कहते है। कषाय चार होती है— 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ

क्रोध कषाय

सामान्य शब्दों में गुस्सा करना क्रोध कहलाता है। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''क्रोध एक मानसिक अवस्था हैं जब किसी मनुष्य को किसी के व्यवहार, शब्दों अथवा किसी परिस्थिति में

प्रतिकूलता उत्पन्न होती हैं अथवा यह भी कहा जा सकता हैं कि इष्ट के वियोग व अनिष्ट के संयोग से मानव मस्तिष्क में जो आघात लगता हैं उससे उत्पन्न होने वाली भावनाओं को क्रोध के माध्यम से प्रकट किया जाता है''[6]। क्रोध करने वाला सामने वाले से अधिक स्वयं को अधिक हानि पहुँचाता है क्योंकि क्रोध करना विभाव हैं जिसके कारण आत्मा के स्वभाव का घात होता हैं। ''**क्रुद्धः पापं न कुर्यात किं क्रुद्धो हन्याद गुरूनपि**'' क्रुद्ध व्यक्ति बड़े से बड़ा पाप कर सकता है। क्रोध के समय विवेक प्रायः लुप्त हो जाता है। जैन आचार्यों के अनुसार –क्रोध महाविष रूप है। ''क्रोध धैर्य को नष्ट कर देता है, क्रोध शास्त्र ज्ञान को नष्ट कर देता है, क्रोध सभी कुछ नष्ट कर देता है, क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं हैं''[7] (मुनि सौरभसागर, 2000)

क्रोध से बचने का उपाय

आर्यिका चंदनामती जी क्रोध से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय क्षमा को मानती हैं। उनके द्वारा रचित दसलक्षण विधान द्वितीय पूजा क्षमा धर्म की पूजा हैं। उत्तम क्षमा की पूजा के माध्यम से आर्यिका श्री लिखती हैं कि क्षमा मात्र वचनों से कहने से नहीं होती अपितु क्षमा हृदय से उत्पन्न होना चाहिये। क्षमा का अर्थ सहन करना होता हैं सहन करने के लिये अदम्य साहस की आवश्यकता होती है, इसलिये क्षमाशील व्यक्ति शक्तिमान होता है। क्षमा द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है। आर्यिका चंदनामती जी लिखती हैं :

''उत्तम क्षमा हृदय में धरकर, क्रोध को दूर भगाना है।

प्राणिमात्र पर दया भाव धर, समता को अपनाना है''[8]। (आर्यिका चंदनामती 2011)

आर्यिका श्री के अनुसार – क्षमा ही दया व समता की जननी हैं जहाँ क्षमा भाव उत्पन्न हो जाता है, क्रोध स्वतः ही भाग जाता है। जैनागम के अनुसार क्षमा वीरों का आभूषण हैं। बलहीन

---

[6] आर्यिका चंदनामती जी के साक्षात्कार के आधार पर
[7] मुनि सौरभसागर, धर्म गगन में करें विहार, पृष्ठ संख्या 21
[8] आर्यिका चंदनामती, दश लक्षण विधान, पृष्ठ संख्या 10

अथवा कायर मनुष्य क्षमा नहीं कर सकते । क्षमा के विषय में हिन्दी कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी अपनी कविता 'शक्ति और क्षमा में लिखते हैं:

क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।

उसको क्या, जो दंतहीन, विषरहित, विनीत, सरल हो[9]। (रामधारी सिंह दिनकर, 2018)

अर्थात् क्षमा ऐसा गुण हैं जो शक्तिशाली मनुष्य को ही शोभा देता हैं कायर अथवा बलहीन क्षमा की बात करें तो वे हँसी के पात्र बनते हैं। कवि यहाँ सर्प का उदाहरण देकर लिखते है कि यदि विषधर सर्प किसी को क्षमा करें तो उसका बडप्पन है परन्तु यदि दंतहीन और विषहीन सर्प क्षमा के विषय में बात करें तो उसकी बात का कोई महत्व नहीं होता। इस प्रकार क्षमा वास्तव में बलशाली व्यक्ति द्वारा क्रोध पर नियंत्रण कर बलहीन को क्षमा करना है।

मान कषाय

अहंकार अर्थात् ''मैं'' की भावना मान कषाय है। जब मानव मस्तिष्क में अहम् की भावना बलवती हो जाती है, वह स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानकर दूसरों को निम्न दिखाने का प्रयास करें तो समझ जाना चाहिये कि मान कषाय उत्पन्न हो चुकी है। मान कषाय से युक्त व्यक्ति समाज में निन्दा का पात्र होता है। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''मान करना वह दुर्गुण है जो इससे ग्रसित व्यक्ति के समस्त गुणों को छिपा देता है''[10]। (मुनि सौरभसागर जी 2000) मुनि सौरभसागर जी अपनी पुस्तक ''धर्म गगन में करें विहार'' में रावण का उदाहरण देते हुये लिखते हैं कि महाबलशाली रावण ने मान के वश होकर रामचंद्र जी से युद्ध करके स्व पतन का मार्ग अपनाया और अपने अहंकार के कारण अपने जीवन को नष्ट कर लिया।

मान कषाय से युक्त व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता क्योंकि अहम् से युक्त प्रवृत्ति होने के कारण वह मनुष्य सभी को हीन दृष्टि से देखता है। किसी भी रिश्ते, नाते के मध्य जब भी

---

[9] रामधारी सिंह 'दिनकर', हिन्दी मेधा कक्षा–8, पृष्ठ संख्या 52,

[10] मुनि सौरभसागर, धर्म गगन में करें विहार, पृष्ठ संख्या 56

अहंकार का समावेश होता है तो वह रिश्ता स्वतः ही टूट जाता है अथवा कमजोर हो जाता है। मान मनुष्य को सामाजिक जीवन से दूर कर देता हैं व एकाकी बना देता हैं।

मान कषाय से बचने के उपाय

विनय अर्थात् नम्रता मान कषाय से बचने का सर्वोंतम उपाय है। जिसके हृदय में मृदुता हैं मान कषाय का उसके हृदय में कोई स्थान नहीं होता है। जैनागम के अनुसार मान आठ प्रकार का होता है और उससे बचने का उपाय मात्र विनय गुण हैं। इसके विषय में आर्यिका चंदनामती जी दशलक्षण पूजा में मार्दव धर्म की पूजा में लिखती हैं—

''कुल जाति ज्ञान बल पूजादिक, मद आठ आठ प्रकार बताए हैं।

जिनको अपनाकर रावण आदिक, ने कितने दुख पाये हैं।।

उत्तममार्दव का स्वाभाविक गुण, मानशत्रु मर्दनकारी।

जयमाला अर्घ्य समर्पित कर, मैं मृदु गुण पाऊँ सुखकारी''[11]। (आर्यिका चंदनामती 2011)

मार्दव अर्थात् मृदुता आत्मा का स्वाभाविक गुण हैं जिसके उत्पन्न होने पर मान कषाय का मर्दन अर्थात् मान कषाय स्वयं नष्ट हो जाती है।

माया

माया अर्थात् छल—कपट एवं छल—कपट से युक्त आचारण मायाचारी कहलाता हैं। किसी व्यक्ति, वस्तु एवं परिस्थिति को जैसे का तैसा न प्रदर्शित कर उसमें फेर—बदल कर उससे विपरीत प्रदर्शित करना मायाचारी हैं। मायाचारी की भावना से पूर्ण मनुष्य सदैव अनैतिक क्रियाकलापों में लिप्त रहता हैं। ''चिन्तन कुछ फिर सम्भाषण कुछ क्रिया कुछ की कुछ होती है''। मन में मायाचारी होने के कारण व्यक्ति कहता कुछ है और करता कुछ और है। अतः वह विश्वास का पात्र ही होता। दिखावटी जीवन एवं क्षणिक स्वार्थ मानव के स्वभाव को अत्याधिक

[11] आर्यिका चंदनामती, दशलक्षण विधान, पृष्ठ संख्या 21

प्रभावित करता है फलस्वरूप मानव छल–कपट पूर्ण व्यवहार करता हैं। आचार्यों ने माया के विषय में कहा है कि–

''जन्मभूमिरविद्यानाम कीर्ति वास मन्दिरम्।

पापपंकमहागर्तो निकृतिः कीर्तिता बुधैः''[12]।। (आर्यिका चंदनामती जी, 2017)

आचार्यों ने माया को अविद्या की जन्मभूमि, अकीर्ति का निवास गृह और पाप रूप कहा हैं। मायाचारी के कारण भारतीय समाज में अनेक बुराइयॉ व्याप्त हैं। ठगी, चोरी आदि मायाचारी की ही देन हैं।

मायाचारी से बचने के उपाय

मायाचारी छल कपट करने से मनुष्य का चारित्र भ्रष्ट हो जाता हैं। मायाचारी से चरित्र की रक्षा के लिये ऋजुता अर्थात् सरलता सर्वोतम उपाय हैं। ऋजुता से निष्कपटता उत्पन्न होती हैं। सरल स्वभाव मानव को संसार की भौतिक चकाचौध से प्रभावित नही होने देता। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''परिणामों की सरलता'' मायाचारी से बचने का एकमात्र उपाय हैं''[13]। (आर्यिका चंदनामती 2015)

जत्थ कुटिल परिणाम चइज्जइ।

तहिं अज्जव धम्मुजि सम्पज्जइ।।

दंसण–णाण सरूव अखण्डउ।

परम अतीन्द्रिय सुक्ख करण्डउ।।

अप्पे अप्पहु भवहु तरण्डउ।

---

[12] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों पर आधारित

[13] आर्यिका चंदनामती जी से साक्षात्कार के आधार पर

एरिस चेयणभाव पयण्डउ।।

अर्थात् जहाँ कुटिल वक्र परिणाम च्युत हो जाते है, झर जाते है, वहाँ आर्जव धर्म होता हैं। जो भव्य आर्जव धर्म को प्राप्त कर लेता है वह अपने इस विशिष्ट धर्म द्वारा बैरियों के ह्रदय में प्रवेश पा लेता है।

लोभ

लोभ का अर्थ हैं लालच करना अर्थात् किसी वस्तु को देखते ही उसे पाने की लालसा करना। लोभ से तृष्णा की उत्पत्ति होती हैं। जैनागम के अनुसार – ''तृष्णा एक ऐसा रोग है, जिसका कोई इलाज नहीं हैं क्योंकि तृष्णा का कभी अंत नहीं होता यह तो सदैव बढ़ती ही रहती हैं। लोभी मनुष्य के मन में सदैव वस्तुओं के संग्रह की प्रवृत्ति रहती हैं। वह जीवन पर्यंत सामान, धन आदि एकत्रित करता रहता हैं, उसकी पिपासा का कोई अंत नहीं होता। आर्यिका चंदनामती शौच धर्म के विषय में अपने प्रवचन के माध्यम से लोभ के विषय में समझाती हैं।

''तन की भूख तनिक है एक पाव या सेर।

मन भूख अपार है चाहे मिले सुमेर''[14]। (आर्यिका चंदनामती 2014)

अर्थात् मनुष्य का पेट दो या चार रोटी से भर जाता है परन्तु लोभी मनुष्य को सुमेरू पर्वत के बराबर भी सोने का पहाड़ मिल जाये तो भी तृप्त नहीं होता।

लोभ से बचने के उपाय

जैन आगम में लोभ से बचने के लिये कहा गया हैः

''उत्तम शौच लोभ परिहारी

संतोषी गुण रतन भण्डारी''[15] (आर्यिका चंदनामती जी 2018)

---

[14] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों पर आधारित

[15] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों पर आधारित

लोभ से मुक्ति पाने के लिये शौच धर्म का पालन करना अति आवश्यक हैं। संतोष गुण ऐसा रतन है, जिसने इसे प्राप्त कर लिया वह सबसे अधिक धनवान हो जाता हैं। लोभ के अभाव में मानव की तृष्णा का अंत हो जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी के शब्दों में शौच धर्म से तात्पर्य मन की पवित्रता से है। मन की पवित्रता तभी हो सकती है जब व्यक्ति अपने मन से तृष्णा रूपी मल को हटा दे। मन में जो लोभ बैठा हैं उसे हटा दें। संसार में परपदार्थों के प्रति लालसा को कम करके लोभ को कम किया जा सकता हैं।

प्रथाओं के विषय में आर्यिका चंदनामती जी के विचार

भारत विश्व का एकमात्र ऐसा देश जहाँ विभिन्न प्रकार की प्रथायें, परम्परायें एवं रीति रिवाज हैं। ये परम्परायें भारतीय समाज का आधार मानी जाती हैं परन्तु जब ये परम्परायें विकराल रूप धारण कर लेती हैं और रूढ़ियों के नाम पर शोषण प्रारम्भ हो जाता हैं तो इन्हें कुप्रथाओं की संज्ञा प्रदान की जाती हैं। जिनमें दहेज प्रथा, बाल विवाह, कन्या भ्रूण–हत्या आदि विकृत मानसिकता से उत्पन्न होने वाली सामाजिक बुराइयाँ हैं। जिनके विरूद्ध आर्यिका चंदनामती जी ने समय–समय पर प्रवचनों के रूप में आवाज उठायी एवं पारस चैनल के माध्यम से उनके प्रवचनों को जन–साधारण तक पहुँचाकर इन कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिये सभी को जाग्रत करने का प्रयास किया गया।

दहेज प्रथा

दहेज से तात्पर्य उस धन अथवा सम्पत्ति से हैं जो विवाह के समय वधू का परिवार की ओर से वर पक्ष को दी जाती है। प्राचीन समय में कन्या के माता–पिता अपनी बेटी को विदा करते समय उसकी आवश्यकतानुसार कुछ सामान, वस्तुयें दे देते थे जिससे उसे नये स्थान पर कठिनाई का सामना न करना पड़े। परन्तु धीरे–धीरे दहेज प्रथा ने समय के साथ विकराल रूप धारण कर लिया। स्वेच्छा से दिये जाने दहेज मांग कर लिया जाने लगा, वधू पक्ष द्वारा मांग

पूर्ण न किये जाने पर उनकी कन्या को ससुराल में विभिन्न प्रकार की यातनायें दी जाने लगी। ''राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आकड़ों के अनुसार सम्पूर्ण भारत के विभिन्न राज्यों से वर्ष 2012 में दहेज हत्या के 8233 मामले सामने आए। आंकड़ों के अनुसार प्रत्येक घंटे में एक महिला दहेज हत्या की शिकार हो जाती हैं''[16]। **(दहेज प्रथा विकिपीडिया के आधार पर 2018)** भारतीय कानून में दहेज प्रथा एक दण्डनीय अपराध हैं। दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के अनुसार दहेज लेना व देना दोनों अपराध हैं। परन्तु फिर भी दहेज प्रथा वर्तमान में भी पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो रही हैं। आर्यिका चंदनामती जी समय–समय पर अपने प्रवचनों के माध्यम से इन कुप्रथाओं से होने वाली हानियों से परिचित कराती हैं। आर्यिका श्री के अनुसार ''दहेज प्रथा भारतीय समाज मे विषाक्त बेल के समान हैं''[17]। (आर्यिका चंदनामती 2016) जिस प्रकार विष की बेल जितना विकसित होती हैं, वातावरण को उतनी ही हानि पहुँचाती हैं, उसी प्रकार दहेज प्रथा जितना फैलती हैं, समाज के लिये उतनी ही हानिकारक हैं। माता–पिता एक बेटी के जन्म लेते ही अपनी आवश्यकताओं को सीमित करके उसके विवाह के लिये दहेज एकत्र करने में जुड़ जाते हैं परन्तु विवाह के समय जब वर पक्ष उस दहेज से संतुष्ट नहीं होता और अधिक मांग करता हैं तब उनकी पूर्ति के लिये कन्या पक्ष कर्ज लेता हैं। जीवन पर्यंत कर्ज से मुक्त नहीं हो पाते। इस प्रथा के कारण कुछ माता–पिता गर्भ में अपनी बेटियों को मार डालते हैं।

दहेज प्रथा का समाज पर प्रभाव

1. माता–पिता द्वारा बेटा–बेटी में भेद–भाव किया जाता हैं।
2. स्त्री शिक्षा में कमी
3. कन्या भ्रूण हत्या
4. स्त्री–पुरूष लिंगानुपात में अंतर 1000 पुरूषों पर 943 स्त्रियाँ (स्टेटिक्स टाइम्स, डॉट कॉम के अनुसार, 2019)
5. महिलाओं का शोषण

[16] दहेज प्रथा विकिपीडिया के आधार पर
[17] आर्यिका चंदनामती जी से साक्षात्कार पर आधारित

दहेज प्रथा से उत्पन्न इन समस्याओं के निवारण के लिये आर्यिका चंदनामती जी अपने प्रवचन के माध्यम से समझाती हैं कि प्रत्येक माता–पिता को प्रण लेना चाहिये कि वे अपने पुत्र के विवाह में न तो दहेज लेगें व न ही पुत्री के विवाह में दहेज देगें। इससे यदि कन्या के माता–पिता स्वेच्छा से अपनी पुत्री को कुछ सामान देना चाहे, तो वे अपनी सामर्थ्य अनुसार दे सकते है, विवाह समारोह में दिखावे से बचना चाहिये, सजावट, आतिशबाजी में धन का अपव्यय नहीं करना चाहिये। घर में आने वाली वधू को पुत्री के सामान समझकर प्रेम व वात्सल्य देना चाहिये। आर्यिका श्री के अनुसार घर प्रेम से बनता हैं, धन से तो मात्र मकान ही बनाया जा सकता हैं। यदि सास बहू को बेटी मानकर वात्सल्य करेंगी तो बहू भी वृद्धावस्था में सास की सेवा पूर्ण निष्ठा से करेगी।

कन्या भ्रूण हत्या

स्त्री के विभिन्न रूप हैं : स्त्री जननी होती हैं, स्त्री भगिनी होती है, स्त्री पुत्री होती हैं, हर रूप में स्त्री को प्रेम व वात्सल्य की प्रतिमूर्ति माना जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार–''जहॉं जैन एवं वैदिक शास्त्रों में सौभाग्यवती पतिव्रता नारी तथा कुमारी कन्याओं को महान् पतिव्रता तथा व्यवहारिक मंगल का प्रतीक माना गया है, वही वैदिक पुराणों में भी नारी को देवी के रूप में स्वीकार किया गया हैं। मनुस्मृति में तो यहाँ तक कह दिया है कि – ''एक आचार्य दस अध्यापकों से श्रेष्ठ हैं, एक पिता सौ आचार्यों से श्रेष्ठ है और एक माता एक हजार पिताओं से श्रेष्ठ हैं''[18]। (आर्यिका चंदनामती 2011) वर्तमान में तकनीकी विकास, पाश्चात्यता के प्रभाव एवं सीमित परिवार की चाह में मनुष्य न करने योग्य कार्य भी करते हैं। वंश का नाम आगे बढ़ाने के लिये सभी पुत्र की चाह रखते हैं। ऐसी परिस्थिति में वे तकनीकी प्रयोग द्वारा माता के गर्भ में पल रहे बालक लिंग की पहचान कर कन्या भ्रूण को एर्बोशन द्वारा समाप्त कर देते हैं। सन् 2002 में भारत सरकार द्वारा गर्भस्थ बालक की लिंग जॉच व कन्या भ्रूण की पहचान कर उसे समाप्त करना दण्डनीय अपराध माना गया हैं। आर्यिका चंदनामती जी के

[18] आर्यिका चंदनामती, श्रावक संस्कार निर्देशिका, पृष्ठ संख्या 43

अनुसार ''गर्भ का जीव भी एक स्वतंत्र प्राणी हैं, इसलिये की वह लड़की हैं, उसे मार देना महापाप हैं''[19]। (आर्यिका चंदनामती 2011) जैन धर्म के अनुसार कृत–कारित–अनुमोदना किसी भी प्रकार से पाप को बढ़ावा नहीं देना चाहिये इसलिये गर्भ में पल रहे निर्दोष जीव की हत्या नहीं करनी चाहिये, नहीं किसी को इसकी सलाह देनी चाहिये, न ही करवाने वाले की प्रशंसा करनी चाहिये। आर्यिका श्री श्रावकों को धर्मोपदेश देते कहती हैं कि संसार का सुख पुत्र या पुत्री से नहीं वरन् अपने कर्मों से आश्रित हैं। पापकर्म के उदय से जीवन भर पालन–पोषण किया गया पुत्र भी वृद्धावस्था में दुत्कार देता है और पुण्य कर्म के उदय से परायी बेटी भी तन–मन–धन से सेवा करती है, अतः बेटा–बेटी में भेद–भाव न करते हुये दोनों को समान स्नेह करें एवं गर्भपात जैसे कुकृत्य को त्याग देना चाहिये।

आत्महत्या महापाप हैं

आत्महत्या से तात्पर्य हैं– ''आत्म अर्थात् स्वयं का'' ''घात अर्थात् हत्या''। इस प्रकार आत्महत्या वह कार्य हैं जिसमें मनुष्य स्वयं अपने प्राणों का हरण कर लेता हैं। जैनागम के अनुसार ''आत्महत्या एक निंदनीय कार्य हैं, स्वयं अपने प्राणों का घात करने वाला मानव अपना इहलोक व परलोक दोनों बिगाड़ लेता हैं।'' इस संसार में प्रत्येक प्राणी को सबसे प्रिय अपने प्राण होते हैं। परन्तु जब व्यक्ति क्रोध, तनाव, विषाद आदि से भर जाता हैं, तब वह संवेदन–शून्य होकर स्वयं ही अपने प्राणी का घात कर लेता हैं। आर्यिका चंदनामती के अनुसार – ''आत्महत्या करने वाला व्यक्ति महापापी होता हैं, जो मानव स्वयं के प्राणों का घात कर सकता है वह किसी भी पाप को कर सकता हैं''। जैन धर्म के अनुसार आत्म–हत्या करने वाले मनुष्य के परिवार में छह माह तक पातक लगता है।

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी अपनी लेखनी एवं प्रवचनों के माध्यम से समय–समय पर समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरूद्ध जन चेतना को जाग्रत करती हैं और जैन धर्म की आधार अहिंसा का प्रसार जैन धर्म का विकास करती हैं।

---

[19] आर्यिका चंदनामती, श्रावक संस्कार निर्देशिका, पृष्ठ संख्या 44

समस्या का कथन

जैन धर्म अनादि निधन है, शाश्वत है। जैन धर्म में सातवीं शताब्दी में मानतुंगाचार्य नाम के महान् आचार्य द्वारा लिखित भक्तामर स्त्रोत जैन धर्मावलंबियों की आस्था का विषय हैं। इस स्तोत्र के दसवें काव्य में आचार्य श्री ने लिखा हैं:

नात्यद्भुतं भुवन–भूषण भूत–नाथ

भूतै–र्गुणै–र्भुवि भवन्त–मभिष्टुवन्तः

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,

भूत्याश्रितं य इह नात्म–समं करोति (मानतुंग आचार्य)

हे जग भूषण, प्राणियों के स्वामी, आपके श्रेष्ठ गुणों की भक्ति करने वाले इस पृथ्वी पर आप जैसे ही हो जाते हैं। वास्तव में आप सच्चे स्वामी हो, आपके भक्त आपकी भक्ति से भगवान बन जाते है। शोधकर्त्री बचपन से ही जैन धर्म जुडी है। भक्तामर स्तोत्र के दसवें काव्य को पढ़कर जैन धर्म के विषय में शोधकर्त्री के मन में अत्याधिक रूचि उत्पन्न हुयी। जैन धर्म त्याग, तपस्या एवं संस्कार पर बल देता है। मानव से भगवान बनने की अनूठी कला जैन धर्म ही सिखाता है, इसलिये जैन धर्म की गहराई और मनुष्य किस प्रकार त्याग एवं तपस्या द्वारा अपना जीवन महान् बना सकता है इस विषय में जानने की अत्याधिक जिज्ञासा मस्तिष्क में उत्पन्न हुई इसी प्रयोजन से शोधकर्त्री जैन धर्म रूपी सागर की गहराई में छिपे हुये हीरे रूपी वात्सल्य की प्रतिमूर्ति व धर्म की महान प्रचारक आर्यिका श्री चंदनामती माता जी (जिनकी शिष्यायें उनके सम्पर्क में आकर उनके समान बन जाती अर्थात् दीक्षा लेकर आर्यिका बन जाती हैं) के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध लिखने जा रही हैं।

अनुसंधान की आवश्यकता

15 अगस्त 1947 से पूर्व भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। यदि हम इतिहास के पन्ने पलट कर देखे तो हमारा देश सोने की चिड़ियाँ के नाम से जाना जाता था। लेकिन समय–समय पर अनेक आक्रमणकारियों ने हमारी सोने की चिड़ियाँ को लूटा तथा साथ ही हमारी धर्म सस्ंकृति को भी तहस–नहस कर दिया। मन्दिरों का विध्वंस कर धार्मिक मान्यताओं पर प्रहार किया। साधुओं व संयम धारियों को हानि पहुँचाई ऐसी परिस्थिति में जैन धर्म व जैन साधु, साध्वी परम्परा लुप्त होने लगी ऐसे में आचार्य शान्ति सागर जी इस युग प्रथम आचार्य सूर्य के समान अपने ज्ञान के प्रकाश से सर्वत्र धर्म की किरणें फैलने के लिऐ सामने आये व धर्म का प्रसार किया। उन्हीं की परम्परा से गणिनी ज्ञानमती जी गत 66 वर्षों से धर्म की ध्वजा सम्भाले हैं।

''टिकैत नगर उनकी जन्मस्थली जहाँ लड़कियों के घर से बाहर निकलने पर भी रोक टोक व अनेक प्रतिबन्ध थे। समाज में अनेकों रुढियाँ विद्यमान थी । ऐसे में आर्यिका श्री ज्ञानमती जी बचपन की मैना ने अपने अथक प्रयास व अदभूत साहस से मात्र 18 वर्ष की आयु में गृह त्याग कर जैन धर्म व जैन आगम के प्रचार का कार्य किया''[20]। (पीठाधीश स्वामी रविन्द्रकीर्ति 2017) ऐसी महान गुरु की महान शिष्या है वात्सल्य रत्नाकर, प्रज्ञाश्रमणी आदर्श गुरु भक्त, चुम्बकीय आकर्षण से परिपूर्ण आर्यिका श्री चंदनामती जी जो अपनी गुरूमाता बताये मार्ग पर चलकर निःस्वार्थ भावना से धार्मिक शिक्षा, ज्ञान के प्रसार व जैन संस्कृति के विकास में लगी हुई है। जैन धर्म के उत्थान मे उनका अभिन्न योगदान है, वर्तमान मे उनके व्यक्तित्व को प्रस्तुत करना परमावश्यक है।

अनुसंधान का महत्व

आज जब हमारा समाज अपनी सभ्यता, संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य जीवन की ओर आकर्षित हो रहा हैं ऐसे में अपनी भावी पीढ़ी को भारतीय सभ्यता एवं जैन सस्ंकृति से परिचित कराना नितांत आवश्यक है। वर्तमान पीढ़ी को आर्यिका श्री चंदनामती जी **एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ**

---

[20] पीठाधीश स्वामी रविन्द्रकीर्ति के साक्षात्कार के आधार पर

जैनिज्म से जोड़कर इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। इस प्रकार उनके जीवन चरित्र पर अनुसंधान परम आवश्यक व भविष्य के लिये महान कार्य सिद्ध होगा इसलिये आर्यिका श्री चंदनामती जी द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित साहित्य को आत्मसात् किया जाये।

अनुसंधान के उद्देश्य

1. आर्यिका चंदनामती जी जैन धर्म की दिगम्बर परम्परा की साध्वी हैं। उनकी चर्या, जीवनयापन शैली के माध्यम से जैन धर्म की प्रभावना एवं विशिष्ट उत्थान हो रहा है, उनकी विशिष्टता उल्लेखनीय है।
2. उनके आचरण से वैराग्य की शिक्षा व प्रेरणा मिलती है।
3. उनका साहित्य जैन धर्म के सिद्धांतों को प्रसारित करने का कार्य करता है।
4. आर्यिका श्री चंदनामती जी का जैन धर्म के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान है।
5. आर्यिका श्री चंदनामती जी के साहित्यिक क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्यों को प्रस्तुत करना।
6. अहिंसा, सर्वजनहित जैसे जैन मूल्यों के विषय में वात्सल्यमयी आर्यिका श्री के व्यक्तित्व एवं कार्यों का उल्लेख करना।
7. नवीन तकनीकी के प्रयोग द्वारा जैन धर्म के उत्थान में आर्यिका चंदनामती जी का महत्वपूर्ण योगदान हैं।
8. जैन धर्म के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसार के लिये जैन साहित्य को अंग्रेजी में प्रस्तुत करने में आर्यिका चंदनामती जी की विशेष भूमिका हैं।
9. जैन तीर्थों के विकास में मार्गदर्शन प्रदान कर आर्यिका श्री धर्म के उत्थान का कार्य कर रही हैं।
10. जैन धर्म शिक्षा पर विशेष बल देता है व स्त्री शिक्षा को विशेष प्रोत्साहित करता है। भगवान ऋषभ देव की पुत्रियाँ एवं इस युग सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा लेने वाली आर्यिका ब्राह्मी एवं उनकी छोटी बहन सुन्दरी ने पिता श्री से प्राप्त ज्ञान के आधार पर ब्राह्मी लिपि व

अंक विद्या का ज्ञान विश्व में निरूपित किया उसी प्रकार जैन परम्परा के अनुसार आर्यिका श्री चंदनामती जी जैन श्राविकाओं को विभिन्न प्रकार शिक्षा प्रदान कर रही है।

अनुसंधानात्मक प्रश्न

1. आर्यिका चंदनामती जी जैन धर्म की दिगम्बर परम्परा की साध्वी हैं। उनकी चर्या, जीवन यापन शैली के माध्यम से किस प्रकार जैन धर्म की प्रभावना व विकास हो रहा है?
2. आर्यिका श्री के आचरण से किस प्रकार की शिक्षा व प्रेरणा मिलती है?
3. उनका साहित्य जैन धर्म के सिद्धांतों को करके प्रसारित करने का कार्य किस प्रकार करता हैं ?
4. आर्यिका श्री चंदनामती जी का जैन धर्म के उत्थान में क्या योगदान है?
5. आर्यिका श्री चंदनामती जी के साहित्यिक क्षेत्र में क्या महत्वपूर्ण कार्य है?
6. अहिंसा, सर्वजन हित जैसे जैन मूल्यों के विषय में वात्सल्यमयी आर्यिका श्री ने किस प्रकार के कार्य किये ?
7. नवीन तकनीकी के प्रयोग द्वारा जैन धर्म के उत्थान में आर्यिका चंदनामती जी का क्या योगदान हैं?
8. जैन धर्म के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसार के लिये जैन साहित्य को अंग्रेजी में प्रस्तुत करने में आर्यिका चंदनामती जी की क्या भूमिका हैं?
9. जैन तीर्थों के विकास में मार्गदर्शन प्रदान कर आर्यिका श्री धर्म के उत्थान का कार्य किस प्रकार कर रही हैं?
10. आर्यिका श्री जैन श्राविकायें को किस प्रकार शिक्षा प्रदान कर जैन धर्म का विकास कर रही हैं?

अनुसंधान विधि

यह शोध कार्य ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, वर्णनात्मक एवं गुणात्मक शोध के अन्तर्गत आता हैं एवं विशिष्ट रुप से यह एकल अध्ययन या इकाई अध्ययन है क्योंकि यहाँ पर शोधकर्त्री किसी विशिष्ट व्यक्ति तथा उनके साहित्य, शिक्षा सम्बन्धी विचारों का गहराई से अध्ययन करना चाहती

हैं। जैसा कि विदित ही है कि इकाई या एकल अध्ययन का अर्थ है गहराई तक अध्ययन करना।

इकाई अध्ययन किसी तथ्य का विस्तृत अध्ययन है परन्तु यह वस्तुनिष्ठ सूचनाओं के स्थान पर सैद्धान्तिक सूचनायें देता है। एक से अधिक सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति का एकल अध्ययन किया जा सकता है। यह व्यक्ति के जीवन चक्र की वह महत्वपूर्ण घटनायें होती है जिनका विश्लेषण तथा अध्ययन उस व्यक्ति से सम्बन्धित तथ्यों के विस्तार के अवलोकन से किया जा सकता है। अतः इस शोध के अन्तर्गत इकाई अध्ययन विधि प्रयुक्त की गई है।

शोध प्रक्रिया

यह शोध निम्नलिखित दो चरणों में किया गया हैं,

प्रथम चरण– सूचनाओं का संकलन

मुख्य साधन–आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित पुस्तकों, ग्रंथों व लेखों का अध्ययन, उनके प्रवचनों का श्रवण तथा उनके साथ साक्षात्कार से संकलित तथ्य।

अन्य साधन–आर्यिका श्री पर अन्य लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों का अध्ययन।

उनकी गुरू व संघ की अन्य आर्यिकाओं के साक्षात्कार के आधार पर तथ्य संकलन

द्वितीय चरण– तथ्यों एवं सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर व्याख्या एवं निष्कर्ष

अनुसधांन की सीमायें

1. यह अनुसंधान केवल आर्यिका श्री चंदनामती जी के साहित्यिक एवं शैक्षिक कार्यों द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान का ही अध्ययन कराता है।
2. इस अनुसंधान के अन्तर्गत आर्यिका श्री चंदनामती जी के ही व्यक्तिगत जीवन द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

3. इस अनुसंधान में शोधकर्त्री ने स्वयं के अध्ययन व अनुसंधान द्वारा ही समस्त सूचनाओं का उल्लेख किया है।

4. यह अनुसंधान मूलरूप से आर्यिका चंदनामती जी एवं उनके साहित्य का जैन धर्म के विकास में योगदान विषय को ही प्रकाश में लाता हैं।

अध्याय–2

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन

शोधकर्त्री ने आर्यिका चंदनामती जी तथा उनके साहित्य पर किये गये शोधकार्यों को खोजने का यथा सम्भव प्रयास किया किन्तु उसे इस सन्दर्भ में कोई भी पूर्व में किया गया शोध कार्य उपलब्ध नहीं हो सका। इस विषय पर मात्र आर्यिका चंदनामती जी व उनके साहित्य सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों व विभिन्न विचारकों द्वारा दिये गये विवरण ही प्राप्त किये जा सके तथा साथ ही आर्यिका पद का जैन धर्म के विकास में अभूतपूर्व महत्व हैं। जिसे शोधकर्त्री यहां प्रस्तुत कर रही हैं। "आर्यिका चंदनामती जी व उनके साहित्य का जैन धर्म के विकास में योगदान" विषय पर अभी तक कोई भी शोध कार्य प्रकाश में नहीं आया हैं। अतः यह शोध इस विषय पर शोधकर्त्री का प्रथम प्रयास हैं।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में समस्त साहित्यों को उनके लेखकों के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया हैं–

1. राष्ट्रीय शोध पत्र
2. अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्र

राष्ट्रीय शोध पत्र

सम्बन्धित साहित्य को शोधकर्त्री ने तीन बिन्दुओं में विभाजित करने का प्रयास किया हैं–

1. जैन धर्म में आर्यिका पद तथा आर्यिका पद का जैन धर्म में महत्व से सम्बन्धित साहित्य।

2. आर्यिका चंदनामती जी से सम्बन्धित साहित्य

3. आर्यिका चंदनामती जी के साहित्य की समीक्षा सम्बन्धित साहित्य

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में समस्त सम्बन्धित साहित्य को उनके लेखकों के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया हैं ये सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीय शोध पत्र के अन्तर्गत हैं–

(अ) जैन साधक–साध्वियों के विचारों पर आधारित शोध पत्र।

(ब) महान् विद्वानों एवं जैन विचारकों के विचारों पर आधारित शोध पत्र।

<u>प्रथम बिन्दु :–</u> जैन धर्म में आर्यिका पद तथा आर्यिका पद का जैन धर्म में महत्व

<u>साहित्याचार्य, पन्नालाल, डा0. आदि पुराण. भारतीय ज्ञानपीठ. 2010. वाॅल्यूम 24. पृष्ठ संख्या 591, 593.</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ में डा0 पन्नालाल जी ने प्राचीन जिनसेनाचार्य जी द्वारा संस्कृत में वर्णित आर्यिका पद से सम्बन्धित साहित्य की हिन्दी टीका में आर्यिका पद की प्राचीनता एवं आर्यिका पद को देवों द्वारा पूजनीय होने का वर्णन किया हैं आर्यिका पद भगवान आदिनाथ के काल से ही हैं – ''भरत की लघु भगिनी ब्राह्मी जी गुरूदेव की कृपा से दीक्षित होकर आर्यिकाओं के मध्य में गणिनी (स्वामिनी) के पद को प्राप्त हुई थी ब्राह्मी जी सर्वदेवों द्वारा पूजित हुई थी। उस समय वह राजकन्या ब्राह्मी दीक्षा रूप शरद् ऋतु की नदी के शील रूपी किनारे पर बैठी हुई और मधुर शब्द करती हुई हंसी के समान सुशोभित हो रही थी।'' वृषभदेव जी की लघु पुत्री सुन्दरी जी को भी उस समय वैराग्य उत्पन्न हो गया था जिससे उन्होंने भी ब्राह्मी जी के पश्चात् दीक्षा धारण की।

<u>ज्ञानमति, आर्यिका. जैन भारती. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान. 15 अगस्त 2000. पृष्ठ संख्या 144</u>

प्रस्तुत पत्र में आर्यिका श्री ज्ञानमति जी ने आर्यिका पद के महत्व एवं कार्यों का वर्णन किया हैं उनके अनुसार आर्यिकाओं को मुनियों के समान महाव्रतों का पालन करना चाहिये ''आर्यिकाओं के लिये वृक्षमूल आतापन आदि योग का निषेध हैं बाकी सभी क्रियायें मुनियों के समान ही हैं।''

''आर्यिकाएँ दो साडी रखती हैं और बैठकर करपात्र में आहार ग्रहण करती हैं इतना ही मुनियों में इनमें अन्तर हैं। इनके पंच महाव्रत उपचार से कहे जाते हैं इसलिये इनके संयम रूप छठा गुणस्थान नहीं होता हैं। फिर भी ऐलक की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। एक लंगोटी मात्र धारी ऐलक द्वारा भी वंदनीय हैं।''

<u>प्रमाण, सागर, मुनि. जैन तत्व विद्या. भारतीय ज्ञानपीठ. 2012. पृष्ठ संख्या 220</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ में मुनि प्रमाण सागर जी आर्यिका समाचार का वर्णन किया हैं तथा ये भी प्रदर्शित किया हैं कि किस प्रकार स्त्रियाँ आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वयं का कल्याण कर सकती हैं।

<u>आर्यिका समाचार</u>

"उत्कृष्ट संयम धारी स्त्रियाँ आर्यिका कहलाती हैं। इनके भी मुनियों की तरह यथायोग्य समाचार का विधान हैं। आर्यिकायें मुनियों की तरह निर्वस्त्र नहीं रहती, वे विकार रहित एकमात्र श्वेत साडी धारण करती हैं तथा बैठकर अपने ही करपात्र में आहार ग्रहण करती हैं आर्यिकाओं को उपचार से महाव्रत कहा गया हैं। ये पंचम गुणस्थान वर्ती होती हैं, फिर भी ऐल्लक और क्षुल्लक से श्रेष्ठ मानी गयी हैं"।

आर्यिकायें सतत ज्ञानाभ्यास में रत रहती हुई अध्ययन, अध्यापन, मनन और चिन्तन में ही अपना समय बिताती हैं।

<u>चंदनामती, आर्यिका. गणिनी आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती अभिवंदन ग्रंथ. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान. 11 अक्टूबर 1992. पृष्ठ संख्या 690.</u>

आर्यिका चंदनामती जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में आर्यिका पद की विशेषता का वर्णन किया हैं कि आर्यिका पद प्राचीन काल से हैं तथा भविष्य में इस कलिकाल में पंचम काल के अन्त तक रहेगा "आर्यिकाओं की उत्कृष्ट चर्या चतुर्थकाल में ब्राह्मी, चंदना आदि पालन करती थी तथा पंचम काल के अन्त तक भी ऐसी चर्या का पालन करने वाली आर्यिका होती रहेगी जब पंचम काल के अन्त में वीरागंज नाम के मुनिराज, सर्व श्री नाम की आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक और पुंग श्री श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ रहेगा।"

अतः भगवान महावीर के शासन में आज तक अक्षुण्ण जैन शासन चला आ रहा हैं। मुनि आर्यिकाओं की परम्परा भी इसी प्रकार चलती रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं।

शास्त्री, पं0, कैलाशचंद्र, सिद्धान्ताचार्य. जैन धर्म आचार्य शान्तिसागर 'छाणी' स्मृति ग्रन्थमाला. 2007. पृष्ठ संख्या 201

प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन धर्म व जैन संघ का वर्णन करते हुये सिद्धान्ताचार्य पं0 कैलाश चंद्र शास्त्री जी ने लिखा हैं कि मुनि, आर्यिका और श्रावक–श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ हैं। इन सभी का जैन धर्म में विशेष स्थान हैं। इनके अभाव में जैन धर्म भी लुप्त हो जायेगा तथा जैन धर्म में आर्यिका और श्राविकाओं को अत्याधिक सम्मान हैं। "मुनि आर्यिका और श्रावक–श्राविका, इनके समुदाय को जैन संघ कहते हैं। मुनि और आर्यिका गृहत्यागी वर्ग हैं और श्रावक–श्राविका गृही वर्ग हैं। जैन संघ में ये दोनों वर्ग बराबर हैं। जब ये वर्ग नहीं रहेंगे और जब जैन संघ नहीं रहेगा तब जैन धर्म भी न रहेगा।"

जैन संघ में स्त्रियों को भी आदरणीय स्थान प्राप्त हैं। जैन धर्म यद्यपि स्त्री मुक्ति नहीं मानता फिर भी आर्यिका और श्राविकाओं का बराबर सम्मान करता हैं और उन्हें बहुत ही आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता हैं।

द्वितीय बिन्दुः– आर्यिका चंदनामती जी से सम्बन्धित साहित्य

आर्यिका चंदनामती विषय पर यद्यपि पूर्व में किया गया कोई भी शोध कार्य उपलब्ध नहीं हैं तथापि आर्यिका जी की दीक्षा के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के तत्वाधान में जम्बूद्वीप हस्तिनापुर की ओर से प्रज्ञा पुज्ज नाम का ग्रन्थ समर्पण के रूप में प्रकाशित किया गया था। जिसके अन्तर्गत महान् जैन आचार्यों एवं विद्वानों ने अपने विचार प्रदान किये जिनका उल्लेख शोधकर्त्री साहित्य के पुर्नावलोकन में प्रस्तुत कर रही हैं।

<u>जैन, शिवचरनलाल, पं0(सम्पादक). प्रज्ञा पुज्ज. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान. 17 अगस्त 2013. पृष्ठ संख्या 1,2,3</u>

(अ) महान् साधक साध्वियों के विचार–

1. गुजरात केसरी आचार्य श्री भरत सागर जी के अनुसार "प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री 105 चंदनामती माताजी जो कि गत 24 वर्षों से लगातार आत्मसाधना निरन्तर करती चली आ रही हैं। विद्वान होते हुए भी विद्वता का गुमान नहीं करना, अपनी सरल सहज प्रवृति में रहकर आत्मा साधना करना ये आदर्श नारी का परिचय हैं"। जैन ही नहीं जैनेत्तर के बीच भी धर्म का प्रचार–प्रसार एवं जिन धर्म की प्रभावना करना आपका विशेष गुण हैं। ज्ञान एवं व्यक्तित्व के धनी होने के कारण तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार एवं नवीनीकरण में भी आपका कुशल मार्गदर्शन मिलता रहता हैं।

कहने का तात्पर्य हैं कि आप श्रमण संस्कृति की शान हैं।

2. आचार्य श्री रयण सागर जी के शब्दों में "सरस्वती पुत्री ज्ञान पुंज श्री ज्ञानमती माताजी के वरदहस्त ने कु0 माधुरी को सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा प्रदान कर चंदनामती बनाया। गत 44 वर्षों से प्रज्ञा श्रमणी चंदनामती ने गुरू माँ की छत्र–छाया में रहकर उनकी ढाल बनकर, उनकी बाई भुजा बनकर, उनके चरणों में रहकर गुरू भक्ति का आदर्श दर्शाया हैं। मर्यादा शिष्योत्तमा का परिचय दिया हैं।"

3. प्रज्ञाश्रमण मुनि श्री अमित सागर जी के अनुसार "जिन्होंने अपनी जन्मदातृ माँ से सुस्कार पा ज्ञानदातृ माँ गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि ज्ञानमती माताजी से दीक्षा सस्कार ग्रहण किये तथा सम्पूर्ण साधना काल लेखन, वक्तृत्व, नेतृत्व, शिक्षकत्व आदि में व्यतीत किया।

4. बालयोगिनी आर्यिका श्री सुभूषणमती माता जी के शब्दों में "आर्यिका चंदनामती जी! यह आपके अनेक जन्म के संचित पुण्योदय का फल हैं कि आप चारित्र–चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्ति सागर जी की परम्परा में दीक्षित हैं एवं गणिनी आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती जी के कर कमलों से दीक्षित होकर चारित्र रूपी सुभूषण से अपने को सुसज्जित करके आचार्य श्री शान्तिसागर जी की तीसरी पीढी होने का सौभाग्य प्राप्त किया।

(ब) <u>महान् विचारकों एवं विद्वानों के विचार</u>

1. सुरेश जैन (कुलाधिपति–तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय) के अनुसार – आर्यिका चंदनामती जी एक कुशल लेखिका, प्रभावी वक्ता एवं आशु कवियित्री हैं। आर्यिका चंदनामती जी पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के साथ तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में पधारी, इससे विश्वविद्यालय परिवार गौरवान्वित हुआ। संघ सानिध्य में ही विश्वविद्यालय परिसर में तीर्थंकर महावीर जिनालय की स्थापना 2 अप्रैल 2012 को की गयी और 8 अप्रैल 2012 को प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह में आर्यिका चंदनामती जी को पी. एच. डी. की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

2. जे. के. जैन पूर्व सांसद दिल्ली के शब्दों में "आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के मधुरिम व्यक्तित्व, तीक्ष्ण बुद्धि, ज्ञानाराधना, विशिष्ट शैली, गायन कला तथा साहित्यिक अवदान के प्रति अपनी विशिष्ट विनयांजलि प्रस्तुत करते हुए उनके मंगलमयी जीवन की कामना करता हैं।

3. डा0 अनुपम जैन (प्राध्यापक–गणित एवं नियन्त्रक– वि0 वि0 मुद्रणालय देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर) के शब्दों में "जब हम जैन परम्परा के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें यही ज्ञात होता हैं कि प्रत्येक तीर्थंकर के समवसरण में हजारों, लाखों की संख्या में मुनि

एवं आर्यिकायें रही हैं। यदि भगवान आदिनाथ के समवशरण में 3,50,000 आर्यिकायें और 84,000 मुनि थे तो भगवान महावीर के काल में 36000 आर्यिकायें और 14,000 मुनि थे, किन्तु राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के कारण यह संख्या निरन्तर घटती चली गयी तथा 10वी–11वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक मुनि परम्परा छिन्न–भिन्न हो गई, 20वीं सदी में चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागर जी महाराज ने विलुप्त होती मुनि परम्परा को पुर्नजीवित किया। इन्हीं युग प्रधान आचार्य की शिष्या, किन्तु स्वयं के समाधि का संकल्प ले लेने के कारण उनके ही निर्देश पर पट्टाधीश आचार्य श्री वीर सागर जी महाराज से दीक्षित, कुमारी अवस्था से आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने वाली इस युग की प्रथम आर्यिका हैं गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी जिन्होंने कुमारी अवस्था में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर एक अभिनव परम्परा का सूत्रपात्र किया। गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माता जी की प्रथम आर्यिका शिष्या होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ कु0 माधुरी जैन को, जो आज प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माता जी के रूप में अपनी ज्ञान रश्मियों से दिग्दिगन्त को आलोकित कर रही हैं।

<u>श्रेयांस मति, आर्यिका. श्री मांगीतुंगी जी का इतिहास. आचार्य शिव श्रेयांस ग्रन्थमाला प्रकाशन, मांगीतुंगी जी. 2006. पृष्ठ संख्या–57.</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ में मांगीतुंगी जी के इतिहास का वर्णन अत्यन्त विस्तार एवं प्रमाणिता के आधार पर किया गया हैं। ग्रन्थ के अध्यक्षीय उद्बोधन में हुकुमचंद गुलाबचंद गंगवाल जी ने सन् 1996 के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का वर्णन करते हुये लिखा कि "पं0 पू0 108 मुनिवर्य रयण सागर महाराज जी ने मूर्तियों की सूर्य मंत्र दिया। आचार्य श्री के साथ आर्यिका ज्ञानमती माताजी एवं पं0 पू0 आर्यिका रत्न श्रेयांसमती माता जी का भी सानिध्य रहा। सम्पूर्ण कार्यक्रम में प0 पू0 105 आर्यिका चंदनामती माता जी का मार्गदर्शन रहा।" इस प्रकार गत् बीस वर्षों से धार्मिक कियाकलापों में आर्यिका चंदनामती जी मार्गदर्शन प्रदान कर रही हैं।

<u>अभयमती, आर्यिका. आत्मानुशासन. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला. 15 अप्रैल 2006. पृष्ठ संख्या 12</u>

आत्मानुशासन ग्रन्थ की टीकाकारिणी स्व0 आर्यिका अभयमती माता जी थी। जिन्होंने अपनी लेखनी से अनेकों ग्रन्थों की टीका की हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्राक्कथन में प्रतिष्ठाचार्य श्री नरेश चंद जैन शास्त्री जी ने अभयमती माता जी के गृहस्थ जीवन का परिचय देते हुये बताया कि एक ही परिवार के पाँच महान् व्यक्तित्व गृहस्थ जीवन का त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर जिन धर्म की प्रभावना में लगे हैं। आर्यिका रत्नमती जी जन्मदायित्री माँ, आर्यिका ज्ञानमती जी उनकी ज्येष्ठ भागिनी, रविन्द्र कीर्ति जी भ्राता एवं आर्यिका चंदनामती जी उनकी लघु भगिनी हैं।

<u>स्वर्णमती, आर्यिका. सम्यग्ज्ञान पत्रिका. दिगम्बर जैन त्रिलोक. शोध संस्थान. मार्च 2015. पृष्ठ संख्या 24</u>

सम्यग्ज्ञान त्रिलोक शोध संस्थान से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका हैं जिसके अन्तर्गत आर्यिका स्वर्णमती जी ने आर्यिका चंदनामती जी की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया आर्यिका स्वर्णमती जी के अनुसार आर्यिका चंदनामती जी उदार, प्रत्येक कार्य को निष्ठा से पूर्ण करने वाली, आदर्श गुरूभक्त अनुशासन प्रिय वात्सल्यपूर्ण व्यक्तित्व की धनी हैं और प्रत्येक कार्य को समय से पूर्ण करना तथा नवीन विचारों को उत्थान में प्रयुक्त करने वाली हैं।

<u>तृतीय बिन्दुः—</u> आर्यिका चंदनामती जी के साहित्य की समीक्षा सम्बन्धित साहित्य

आर्यिका चंदनामती जी ने अपने दीक्षा काल में लगभग (200) ग्रन्थों की रचनायें एवं टीकाएँ की हैं जिनमें से (115) वर्तमान में प्रकाशित हो चुके हैं। वे ग्रन्थ वर्तमान में जन कल्याण में व धर्म के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका हैं उनमें से कुछ ग्रन्थों की समीक्षा शोधकर्त्री प्रस्तुत कर रही हैं :—

<u>चंदनामती, आर्यिका. चारित्र चन्द्रिका. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला. 15 अप्रैल 2006. पृष्ठ 9.</u>

आर्यिका चंदनामती जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में अपनी गुरू ज्ञानमती जी के जीवन चरित्र को लिपिबद्ध किया हैं। ग्रन्थ की समीक्षा करते हुये भूतपूर्व पीठाधीश क्षुल्लक मोती सागर जी ने लिखा था कि

आर्यिका चंदनामती जी ने प्रस्तुत पुस्तक में आर्यिका ज्ञानमती जी के जीवन के खट्टे–मीठे पलों को लिपिबद्ध किया हैं यह एक असाधारण कार्य था। "हीरे की महत्ता तिजारी में रखने के बजाय आभूषण में जडकर किसी के गले, मस्तक, कान आदि की शोभा बढाना भी कुशल शिल्पी की ही कुशलता का प्रतिफल होता हैं। खाद्य पदार्थ तो सबमें समान होते हैं किन्तु सुन्दर सुस्वादु व्यंजन बनाना और उन्हें उनसे भी ज्यादा परोसने में कुशलता का परिचय देना एक से एक दुरूह हैं। पूज्य चंदनामती जी ने गणिनी ज्ञानमती जी के विशाल व्यक्तित्व को न केवल उजागर किया हैं। अपितु उसे अत्यन्त रोचक एवं प्रभावपूर्ण शब्दों में गुंफित किया हैं।"

<u>चंदनामती, आर्यिका. दशलक्षण विधान. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला. 4 जुलाई 2012.</u>

आर्यिका चंदनामती द्वारा कृत दशलक्षण विधान जैन साहित्य की अनुपम कृति हैं आर्यिका श्री ने प्रस्तुत ग्रन्थ में उत्तम क्षमा, उत्तम मदिव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य रूप दस धर्म की पूजा करते हुये लिखा हैंः– उत्तम क्षमा से क्रोध कम होता हैं और धैर्य बढता हैं। मार्दव गुणों से जीव कोमल भाव करता हैं। आर्जव धरम ऋजुता (सरलता) को सिखाता हैं सच बोलकर संसार को सत्यपथ दिखाता हैं।

इस प्रकार अट्ठासी पृष्ठों में सम्पूर्ण विधान को पद्य रूप में आर्यिका श्री ने अपनी लेखनी के माध्यम साहित्य के रूप परिणित किया हैं।

<u>चंदनामती, आर्यिका. पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के अमूल्य प्रवचन. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प न0 282. 12 फरवरी 2014. पृष्ठ–19</u>

आर्यिका चंदनामती जी की यह अमूल्य कृति उनकी गुरू आर्यिका ज्ञानमती के प्रवचनों पर आधारित हैं प्रस्तुत ग्रन्थ में चंदनामती ने 86 प्रवचनों को 467 पृष्ठों में अंकित किया हैं। उन्होंने गणिनी ज्ञानमती के द्वारा प्रतिपादित गूढतम विषयों को अपनी लेखनी के माध्यम से सरलतम रूप में जैन श्रावक–श्राविकाओं के लिये उपलब्ध कराया। समयसार ग्रन्थ की गाथा में जीवन

तत्व का निरूपण करते हुए लिखा हैं अहमिक्कों खलु शुद्धों, दसंणणाण मइयो सदा रूवी णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणु मित्तपि।

आर्यिका चंदनामती जी ने सरल शब्दों में गाथा का अर्थ प्रदान किया– मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानदर्शन स्वरूपी हूँ, अमूर्तिक हूँ, अन्य परमाणु मात्र भी मेरा नहीं हैं।

<u>चंदनामती, आर्यिका. समयसार मण्डल विधान. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुञज नं0. 333. 9 अगस्त 2011.</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ में आर्यिका चंदनामती जी आचार्य कुन्द–कुन्द द्वारा रचित समसार ग्रन्थ की गाथा को बहुत ही सरल शब्दों मं पद्यानुवाद रूप में प्रस्तुत किया हैं। समुच्चय पूजन की स्थापना करते हुये आर्यिका चंदनामती जी लिखती हैं–

श्री कुन्द–कुन्द आचार्य रचित, चौरासी पाहुड ग्रन्थों में।

हैं समयसार इक मुख्य ग्रन्थ, जो हैं विभक्त नवतत्वों में।।

शुद्धात्म तत्व का सार इसे, पढकर जाना जा सकता हैं।

जो नग्न दिगम्बर मुनियों द्वारा, ही पाला जा सकता हैं।।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 84 पाहुड ग्रन्थ लिखें। किन्तु आज उनके लिखे 9 ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं–

दशभक्ति, अष्टपाहुड, रयणसार, मूलाचार, द्वादशानुप्रेक्षा, नियमसार, पंचास्ति काय, प्रवचनसार, समयसार

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती जी ने इस समयसार मण्डल विधान में 6 पूजाएँ लिखी हैं।

इस विधान में 6 जयमाला हैं और एक बडी जयमाला हैं। कुल 444 अर्ध्य में ये सम्पूर्ण विधान आर्यिका चंदनामती जी ने पूर्ण किया हैं।

चंदनामती, आर्यिका. षट्खण्डागम. सिद्धान्तचिंतामणि टीका 1. वीरज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं0 181

आर्यिका ज्ञानमती जी ने षट्खण्डागम ग्रन्थ की संस्कृत टीका की जिसे आर्यिका चंदनामती जी ने टीका का हिन्दी अनुवाद करके जैन धर्म के पुरातन एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ को जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। आर्यिका चंदनामती जी ने सम्पूर्ण षट्खण्डागम ग्रन्थ को सोलह पुस्तकों में विभाजित कर पाँच खण्ड पूर्ण किये गये हैं। उनमें प्रयुक्त सूत्रों की गणना छह हजार आठ सौ इकतालीस हैं (6841)। प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पचहत्तर सूत्र हैं (2375)। दूसरे खण्ड में पंद्रह सौ चौरानवे (1594)। तृतीय खण्ड में तीन सौ चौबीस (324)। चतुर्थ खण्ड में पन्द्रह सौ पच्चीस (1525)। पाँचवे खण्ड में एक हजार तेईस (1023)। सूत्र हैं। प्रथम से लेकर छह पुस्तकों तक प्रथम खण्ड हैं। सातवीं पुस्तक में द्वितीय खण्ड हैं। आठवीं पुस्तक में तृतीय खण्ड हैं। नवमीं से लेकर बारहवीं पुस्तकों तक चार पुस्तकों में चतुर्थ खण्ड हैं और तेरहवीं पुस्तक से लेकर सोलहवीं तक चार पुस्तकों में पाँचवा खण्ड हैं। षट्खण्डागम ग्रन्थ की टीका करते हुए आर्यिका चंदनामती ने लिखती हैं– कि षट्खण्डागम वह ग्रन्थ हैं, जिसमें णमोकार मंत्र को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया था। षट्खण्डागम आचार्य धरसेन की प्रेरणा से पुष्पदंत व भूतबली मुनिराज ने षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना पूरी की और ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन इस ग्रंथ की चतुर्विध संघ ने की थी तभी से श्रुत पंचमी पर्व चला आ रहा हैं। सर्वप्रथम षट्खण्डागम की हिन्दी टीका करके जैन साहित्य उत्थान में अभूतपूर्व योगदान दिया।

चंदनामती जी, आर्यिका. श्रावक संस्कार निर्देशिका. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थ माला. पृष्ठ संख्या 2,3,4

प्रस्तुत ग्रन्थ के आर्यिका चंदनामती जी जैन धर्म के विशेष मूलगुणों का वर्णन किया हैं।

श्रावक के मूलगुण साधु के मूलगुण– साधु अर्थात् मुनि तथा आर्यिकायें 28 मूलगुणों का पालन करते हैं परन्तु श्रावकों के 8 मूलगुण हैं। आठ मूलगुणों में आर्यिका जी ने तीन प्रकार से वर्णित किया हैं–

प्रथम प्रकार आचार्य अमृतचंद्र के पुरूषार्थ सिद्धि उपाय के अनुसार – तीन मकार– मद्य, मांस, मधु, के सेवन –बड, पीपल, पाकर, कठूमर और गूलरादि पाँच उदम्बर फलों का त्याग श्रावक के अष्ट मूलगुण हैं।

द्वितीय प्रकार– पं0 श्री आशाधर जी के सागर धर्मामृत के अनुसार–

(1) मद्य त्याग (2) मांस त्याग (3) मधु त्याग (4) रात्रि भोजन त्याग (5) पंच उदम्बर फलों का त्याग (6) जीवदया पालन (7) जल छानकर पीना (8) पंच परमेष्ठी को नमस्कार

इस प्रकार अष्ट मूल गुण हैं।

तृतीय प्रकार – आचार्य संमतभद्र के रत्नरण्ड श्रावकाचार के अनुसार–

(1) मद्य त्याग (2) मांस त्याग (3) मधु त्याग (4) अहिंसाणुव्रत (5) सत्याणुव्रत (6) अचौर्याणुव्रत (7) ब्रह्मचर्याणुव्रत (8) परिग्रहपरिमाण अणुव्रत

इस प्रकार अष्टगुण वर्णित है।

<u>अंतर्राष्ट्रीय शोध</u>

शोधकर्त्री ने अन्तर्राष्ट्रीय शोध को दो बिन्दुओं पर विभाजित किया हैं–

1. लौकिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर आधारित साहित्य पुर्नावलोकन
2. जैन धर्म व जैन साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता पर आधारित शोध

<u>लौकिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर आधारित साहित्य पुर्नावलोकन</u>

मान्ट गोमरी, केन्. रेशियलाईज्ड, हेगेमॉनी एण्ड नेश्नलिस्ट माइथोलॉजीज् : रीप्रेजैन्टेशनस ऑफ वॉर एण्ड पीस इन हाईस्कूल हिस्ट्री टैक्स्ट बुक्स, 1945–2005 जनरल ऑफ पीस एजुकेशन वॉल्यूम–3, मार्च 2006, पृष्ठ 19–37.

इस पत्र में मान्ट गोमरी ने यह जानने का प्रयास किया कि वह कौन से साधन हैं जिनके द्वारा हाईस्कूल में प्रयोग की जाने वाली, कैनेडा की इतिहास सम्बन्धी पुस्तके अपने राष्ट्र के युद्ध एवं शान्ति व्यवस्था बनाये रखने वाले कार्यों को प्रदर्शित करती हैं। अपनी खोज में उन्होंने यह भी पाया कि कैनेडा की धर्मकथायें हिंसात्मक प्रवृति का बनाने में योगदान देती हैं।

मर्चेन्ट, ए. के. एजुकेशन फॉर ए केयरिंग एण्ड पीस फुल वर्ल्ड : ए बहाई व्यू प्वांइट. जनरल ऑफ वैल्यू ऐजुकेशन वॉल्यूम– 01 जुलाई 2001

इस पत्र में मर्चेन्ट ने पाया कि बहाई समुदाय के लोग पारलौकिक मूल्यों तथा नैतिक शिक्षण को सच्ची शिक्षा का आधार मानते हैं। उनका मानना हैं कि शैक्षिक संस्थानों में ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिये जहाँ विद्यार्थी एक साथ मिल–जुलकर अधिगम कार्य करें तथा दूसरों की मदद करना उनके जीवन का अभिन्न अंग बन जाये।

जैन धर्म व जैन साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता पर आधारित शोध

बोले, वी, डब्ल्यू. रिव्यू ऑफ अरलियर एससीटीजम इन इण्डिया. इन्टरनेशनल जरनल ऑफ जैन स्टडीज. वॉल्यूम 12 न0 2. 2016

इस पत्र में बोले ने जैन धर्म की मूल अवधारणा एवं चर्या आदि के विषय में उल्लेख करते हुये सल्लेखना, स्याद्वाद अनेकान्तवाद तथा जीव आदि तत्वों के विषयों का वर्णन किया हैं।

माइकल, टी. दा वर्ल्ड ऑफ जैनिज्म. बरकैली. कैलिफ : ऐशियन हयूमिनिटिस प्रेस (1991) पृष्ठ – 117

माइकल टोबास ने अपनी पुस्तक दी वर्ड ऑफ जैनिज्म में जैन धर्म सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुये 'जिन' शब्द की उत्पत्ति, अहिंसा, अपरिग्रह, केवल ज्ञान तीर्थंकर आदि के विषय में जैन साहित्य का प्रतिपादन किया हैं। जैन धर्म अहिंसा प्रधान है इसलिए शाकाहार परम आवश्यक है।

जिन धर्म, जिन मार्ग, जिन आगम का निरूपण करते हुये जैन धर्म की महानता का परिचय दिया हैं। पुस्तक में उन्होंने जैन धर्म को एक वैज्ञानिक धर्म माना हैं।

जैनी : पी. एस. दी जैन पथ ऑफ प्यूरिफिकेशन. बरकैली. यूलिवर्सिटी ऑफ कैलीर्फोनिया प्रेस (1979)

जैनी ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भ में भगवान महावीर के विषय में बताते हुये जैन धर्म की परलौकिकता एवं दर्शन के विषय में बताया हैं। इसके साथ–साथ शुद्धिकरण के विषय में बताते हुए कर्मों से बचने तथा मुक्ति प्राप्त करने के रास्ते पर प्रकाश डाला हैं।

उपर्युक्त साहित्यों का अवलोकन करने के उपरान्त शोधकर्त्री को अपने शोधकार्य को उचित दिशा में अग्रसित करने हेतु प्रोत्साहन एवं दिशा निर्देश मिला।

अध्याय –3

जैन धर्म व जैन धर्म में आर्यिका पद का महत्व

प्रस्तुत शोध जैन धर्म के विकास एवं जैन आर्यिका चंदनामती जी के जीवन व कार्यों पर आधारित है इसलिये यहाँ यह जानना परमावश्यक है कि

- मानव जीवन में धर्म की क्या आवश्यकता है?
- जैन धर्म क्या है?
- जैन धर्म में साधक वर्ग का परम्परा कहां से उत्पन्न हुई?
- साधिका पद का जैन धर्म में क्या महत्व है?

धर्म की आवश्यकता

भारत एक धर्म प्रधान देश है। धर्म वास्तव में मानव को उन्नति, प्रेम, वात्सल्य की शिक्षा देता है। धर्म मानसिक उन्नति एवं बौद्धिक विकास के लिए परमावश्यक हैं। भारत भूमि पर समय–समय पर अनेक विचारकों एवं बुद्धिजीवियों ने जन्म लिया। उन्होंने जीवन रहस्य को समझा व व्यक्ति के सुख–दुख, लाभ–हानि, जीवन–मरण, संयोग–वियोग के कारणों का अध्ययन किया। उन्होंने व्यक्ति के रागद्वेषादिक भावों तथा जीव के जन्म और मृत्यु के चक्र से बचने के लिये नवीन तथ्यों की खोज की। जिस प्रकार अपने दीर्घकालीन जीवन में अनेक प्रयोगों के बाद कोई निष्कर्ष वैज्ञानिकों द्वारा निकाले जाते हैं वे वस्तु की वास्तविकता को जानकर सत्य की खोज करते है, उसी तरह चिन्ताओं से मुक्ति के लिये तत्व चिन्तकों ने अपनी आत्मा के अर्न्तमन्थन से जो नवनीत प्राप्त किया है, धर्म उसकी ही अभिव्यक्ति हैं। ''ऐतिहासिक

दृष्टि से धर्म–दर्शन की उत्पत्ति का पता लगाना असम्भव हैं''[21]। (डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, 1992) आत्मा, परलोक, विश्व ईश्वर आदि के विषय में उत्पन्न जिज्ञासाओं को शान्त दर्शन से ही किया जाता है दर्शन के ही माध्यम से जीवात्मा अपनी अनन्त शक्ति को पहचानकर परमात्म दशा को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

व्यक्ति के आचार और विचारों को हितकारी बनाकर उनका उचित प्रकार से समायोजन ही धर्म का परम ध्येय है। वर्तमान में प्रचलित अनेकों धर्म है सभी धर्मों के अपने सिद्वान्त हैं, उनका अपना इतिहास है तथा अपनी परम्पराएं है। उन्हीं अनेकों तारें रूपी धर्मों के मध्य चमचमाते चंद्रमा की भांति जैन धर्म है। इस परम पवित्र जैन धर्म के उद्भव, विकास, सिद्वान्तों, इतिहास परम्पराओं के विषय में जानना यहाँ परमावश्यक हैं।

जैन धर्म

जैन धर्म से तात्पर्य हैं जिनेन्द्र भगवान का धर्म। जिनेन्द्र अर्थात् जो इन्द्रियों को जीतने वाले हैं। जैन धर्म में ईश्वरीय अवतार की मान्यता नही हैं अपितु जिन्होंने अपने पुरूषार्थ व तप की अग्नि में अपनी आत्मा को तपाकर कुन्दन बनाया व नश्वर संसार का त्याग कर मोक्ष लक्ष्मी का वरण किया अर्थात् सिद्धशिला पर विराजमान हुये वही जिनेन्द्र हैं। जिनेन्द्र भगवान के अनुयायी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के बताये मार्ग पर चलने वाले जैन कहलाते हैं।

''जिस प्रकार बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म, ईसा द्वारा उपदिष्ट धर्म ईसाई धर्म कहलाता हैं। उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवंतों द्वारा प्ररूपित धर्म जैन धर्म हैं। शिव तथा विष्णु को इष्ट मानकर चलने वाले शैव और वैष्णव कहलाते हैं। उसी प्रकार जिन को इष्ट मानकर चलने वाले जिनेन्द्र भगवान के उपासक जैन कहलाते हैं''[22] (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014) जिनेन्द्र भगवान विष्णु, शिव की तरह कोई ईश्वरीय अवतार नहीं हैं अपितु जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया हैं, वही जिनेन्द्र हैं। जैन धर्म में व्यक्ति पूजा का कोई महत्व नहीं हैं, अपितु जैन धर्म में गुणों की पूजा

---

[21] डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, प्रथम भाग, पृष्ठ संख्या 3
[22] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 16

की जाती हैं। जैन धर्म का मूल मंत्र–पंच परमेष्ठी मंत्र हैं। जिसमें अरिहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी अर्थात् जो जैन धर्म के मूल अर्थात् प्राण उन्हें नमस्कार किया गया हैं। जिनेन्द्र बनने के लिये सर्वप्रथम साधु परमेष्ठी बनना परमावश्यक हैं। आचार्य तथा उपाध्याय, साधु परमेष्ठी के ही रूप हैं। इस प्रकार साधु (निर्ग्रन्थ मुनि) बनकर ही अरिहंत अवस्था की प्राप्ति होती हैं। तत्पश्चात् आत्मा से सर्व कर्मों का नाश होने पर सिद्ध दशा की प्राप्ति ही जैन धर्म का ध्येय हैं। इस प्रकार इन पंच परमेष्ठी पद पर आरूढ प्रत्येक भव्यात्मा वन्दनीय हैं, प्रणम्य हैं। परमेष्ठी मंत्र के माध्यम से हम अर्हता, सिद्धता, आचार सम्पन्नता, ज्ञान सम्पन्नता और साधुता की वन्दना करते हैं।

जैन धर्म की उत्पत्ति एवं प्राचीनता

जैन धर्म अनादिनिधन धर्म हैं। जिसमें समय समय पर विभिन्न तीर्थंकरों ने जन्म लेकर कठिन तपस्या करके आत्मकल्याण किया साथ ही अपने उपदेश के माध्यम से धर्म के प्रचार प्रसार व संरक्षण का कार्य भी किया। वर्तमान युग में जैन धर्म का प्रर्वतन प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने किया। तीर्थंकर ऋषभदेव का काल बहुत प्राचीन हैं। पं0 कैलाश चंद्र जी सिद्धांताचार्य शास्त्री जी अपनी पुस्तक जैन धर्म में लिखते हैं: ''इस युग के 24 तीर्थंकरों में से भगवान ऋषभ देव प्रथम तीर्थंकर थे और भगवान महावीर अन्तिम तीर्थंकर थे। तीसरे काल विभागों में जब तीन वर्ष आठ माह शेष रहे तब ऋषभदेव का निर्वाण हुआ और चौथे काल विभाग में जब उतना ही काल शेष रहा तब महावीर का निर्वाण हुआ। दोनों का अन्तर काल एक कोटा–कोटी सागर बताया जाता है''[23] (सिद्धांताचार्य पं0 कैलाश चंद्र शास्त्री, 2008) जैन ग्रंथों के अनुसार भगवान ऋषभ देव के काल के विषय में गणना वर्तमान संख्या में नही की जा सकती हैं। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में ऋषभदेव का सम्मान पूर्वक स्मरण किया गया हैं। ''भागवत् पुराण 5/2/6 में भी जैन धर्म के संस्थापक ऋषभदेव का उल्लेख हैं। पुराण साहित्य में भी ऋषभदेव का उल्लेख हैं। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में भी ऋषभदेव को जैन धर्म का प्रचारक

[23] सिद्धांताचार्य पं0 कैलाश चंद्र शास्त्री, जैन धर्म, पृष्ठ संख्या 3

कहा गया हैं। इसके अतिरिक्त हडप्पा, मोहनजोहड़ो की खुदाई से प्राप्त सीलों मुहरों पर भी तीर्थंकर ऋषभदेव कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्ण हैं''[24]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

इतिहासकार पंडित सुन्दरलाल जी ने **जरत ईसा** नामक अपनी पुस्तक के 172 पूर्व में बताया हैं कि ''ईसा जैन साधु संघ में रहे''[25]। (आचार्य श्री विद्यानंद मुनिराज, 2007) फरग्यूसर शिल्प शास्त्री ने **विश्व दृष्टि** नामक पुस्तक के पृष्ठ 27 पर लिखा हैं कि ''मक्का में मुहम्मद से पहले जैन धर्म था''[26]। (आचार्य धर्म भूषण जी,) अतः जैन धर्म की प्राचीनता निर्विवाद हैं। भगवान ऋषभदेव के पश्चात् क्रमशः तेईस तीर्थंकर हुये जिनमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर थे। ऋषभदेव सहित जैन धर्म के 21 तीर्थंकर, प्रागैतिहासिक काल में हुये।

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋ़षभदेव जी का जीवन चरित्र

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव चौदहवें कुलकर नाभिराय और पत्नी मरूदेवी के पुत्र थे। चौबीस तीर्थंकर में आदिम (प्रथम) तीर्थंकर होने के कारण उन्हें आदिनाथ भी कहा जाता हैं। जब तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष साढे आठ मास प्रमाण काल शेष रह गया तब प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ जी का जन्म हुआ था। जब ऋ़षभदेव युवा हुये तब उनका विवाह यशस्वती और सुनन्दा नाम की कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ। ऋषभदेव के भरत बाहुबली आदि एक सौ एक पुत्र और ब्राह्मी, सुन्दरी नाम की दो कन्यायें हुई। उन्होंने सभी पुत्रों को सम्पूर्ण विद्याओं, शास्त्रों और शस्त्र कलाओं का ज्ञान प्रदान किय। उन्होंने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प आजीविका के साधनभूत इन छह कर्मों की विशेष रूप से व्यवस्था की इसलिये इन्हें प्रजापति कहा गया। इन्होंने क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नाम से तीन वर्णों की स्थापना की। विवाह विधि आदि भी प्रचलित की इसलिये भगवान ऋषभदेव आदि–ब्रह्मा, युगादि पुरूष, विधाता आदि कहलाने लगे।

---

[24] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 17

[25] आचार्य श्री विद्यानंद मुनिराज, (अमर उजाला, 25/12/07)

[26] आचार्य धर्म भूषण जी, जैन दर्शन गणित, पृष्ठ संख्या 131

तत्पश्चात् मोक्ष मार्ग की स्थिति प्रकट करने के लिये दिगम्बर मुनि हो गये। मुनि ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक कठोर तपस्या, आत्मसाधना की। परिणाम स्वरूप उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया व समस्त भारत भूमि को अपने धर्मोपदेश से उपकृत किया। उन्होंने समस्त विकारों को जीत लिया था, इसलिये जिनेन्द्र कहलाये। अपने जीवन के अन्त में उन्होंने कैलाश पर्वत से मोक्ष/निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ जी के समय जैन धर्म का प्रर्वतन प्रारम्भ हो गया और उसी समय से जैन धर्म सम्पूर्ण मानवता का धर्म बन गया।

भगवान ऋषभदेव की प्राचीनता के सन्दर्भ में जैनेत्तर साहित्य एवं पुरातात्विक साक्ष्य।

वैदिक साहित्य में ऋषभदेव

ऋग्वेद की रचनाओं/मन्त्रों में स्थान–स्थान पर भगवान ऋषभदेव के विषय में वर्णन मिलता हैं।

ऋषभदेव को प्रमुख सिद्धान्त था – आत्मा में ही परमात्मा का अधिष्ठान हैं। उसे प्राप्त करने का उपाय करो। इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुये वेदों में उनका नामोल्लेख पूर्वक कहा गया हैं–

1. ''त्रिधावद्धो वृषभों रोरवीति महादेवो मर्त्याआविवेश''[27]। (ऋग्वेद 3/38/5) (मुनि प्रमाण सागर, 2014)

अर्थात् मन वचन काय से संयमी ऋषभदेव ने घोषणा की महादेव मत्यों में निवास करता हैं।

उन्होंने अपनी साधना व तपस्या से मनुष्य शरीर में रहते हुये उसे प्रमाणित भी कर दिखाया। ऐसा उल्लेख भी वेदों में हैं–

2. ''तनमर्त्सस्य देवत्वमजामग्रे''[28]। (ऋग्वेद 39/17)(मुनि प्रमाण सागर, 2014)

ऋषभदेव स्वयं आदि पुरूष थे। जिन्होंने सबसे पहले मर्त्यदशा में देवत्व प्राप्त किया था। यहाँ शोध कर्त्री का आशय जैन धर्म की प्राचीनता स्पष्ट करने से हैं।

---

[27] मुनि प्रमाण सागर, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 29
[28] मुनि प्रमाण सागर, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 29

पुराणों और स्मृतियों में ऋषभदेव

श्री कैलाश चंद्र शास्त्री जी की पुस्तक जैन धर्म के अनुसार मार्कण्डय पुराण, कर्मपुराण, वायुपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वराहपुराण, विष्णुपुराण एवं स्कंधपुराण आदि में ऋषभदेव का वर्णन आता हैं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता एवं जैन धर्म

पुरातात्त्विक साक्ष्य भी इस वक्तव्य के प्रमाण हैं कि वैदिक आर्यों से पूर्व भारत की जो सभ्यता थी, वह अत्यन्त समृद्ध; और उन्नतिशील थी। जिसे विद्वानों ने श्रमण संस्कृति नाम प्रदान किया। इस उन्नत एवं कर्मकाण्डो से रहित श्रमण संस्कृति का इतिहास अत्याधिक प्राचीन एवं समृद्ध हैं। इसे प्रमाणित करने के लिये अनेक विद्वानों की पुस्तकें एवं व्यक्तव्य उपलब्ध है। ''सन् 1922 से 1927 के मध्य सिन्धु घाटी के हडप्पा और मोहनजोदडों की खुदाई से कई नये तथ्य प्रकाश में आये हैं, जिनसे जैन धर्म की प्राचीनता के साथ–साथ उसकी प्राग्वैदिकता भी सिद्ध होती हैं। विद्वानों के अनुसार सिन्धु घाटी सभ्यता 5000 वर्ष पुरानी संस्कृति हैं''[29]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

मोहनजोदडो से कुछ नग्न कायोत्सर्ग योगी मुद्रायें मिली हैं, जिनका सम्बन्ध जैन संस्कृति से माना गया हैं। इसे प्रमाणित करते हुये स्व. रायबहादुर प्रो रामप्रसाद चंद्रा ने मार्डन रिव्यू, जून 1932 में अपने शोधपूर्ण लेख में प्रकाशित किया था–''सिन्धु मुहरों में से कुछ मुहरों पर उत्कीर्ण देव मूर्तियाँ न केवल योग मुद्रा में अवस्थित हैं, वरन् उस प्राचीन युग में सिन्धु घाटी में प्रचलित योग पर प्रकाश डालती हैं। उन मुहरों में खड़े हुए देवता योग की खड़ी मुद्रा भी प्रकट करते हैं और यह भी कि कायोत्सर्ग मुद्रा आश्चर्यजनक रूप से जैनों से सम्बद्ध हैं। यह मुद्रा बैठकर ध्यान करने की न होकर खड़े होकर ध्यान करने की हैं''[30]। (सिद्धांताचार्य पं0 कैलाश चंद्र शास्त्री, 2008) इसके अतिरिक्त डॉ. नेमिचंद शास्त्री ज्योतिषाचार्य जी अपनी पुस्तक तीर्थंकर

---

[29]मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 33

[30] सिद्धांताचार्य पं0 कैलाश चंद्र शास्त्री, जैन धर्म, पृष्ठ संख्या 12

महावीर और उनकी आचार्य परम्परा में लिखते हैं ''मोहन–जो–दड़ों के खंडहरों से प्राप्त योगीश्वर ऋषभ की कायोत्सर्ग मुद्रा इसका जीवन्त प्रमाण है। यहाँ से उपलब्ध अन्य पुरातत्व–सम्बन्धी सामग्री भी तीर्थंकर परम्परा की पुष्टि करती है''[31]। (नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, 1992) ''मथुरा के कर्जन पुरातत्व संग्रहालय में एक शिला फलक पर जैन वृषभ की कायोत्सर्ग मुद्रा में खडी हुई चार प्रतिमायें विद्यमान हैं, जो ईसा की द्वितीय शताब्दी की निश्चित की गई हैं। मथुरा की यह मुद्रा मूर्ति संख्या 12 में प्रतिबिम्बित हैं। प्राचीन राजवंशों के काल की मिस्त्री स्थापत्य में कुछ ऐसी प्रतिमायें विद्यमान हैं जिनकी भुजायें दोनों ओर लटकी हुई हैं। यद्यपि ये मिस्त्री मूर्तियाँ या ग्रीक कुरो प्रायः उसी मुद्रा में मिलते हैं, किन्तु उनमें वैराग्य की वह झलक नहीं हैं जो सिन्धु घाटी की इन खड़ी मूर्तियों या जैनों की कायोत्सर्ग प्रतिमाओं में मिलती हैं। ऋषभ का अर्थ होता हैं वृषभ (बैल) और वृषभ, जिन ऋषभ का चिन्ह हैं''[32]। (मार्डन रिव्यू अगस्त 1932)

इसी प्रकार जैनाचार्य विद्यानन्द जी द्वारा लिखित **मोहनजोदडो, जैन परम्परा और प्रमाण** नामक शोधात्मक लेख प्रकाशित हुआ। उन्होंने अनेक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध करते हुये लिखा हैं– "जैन धर्म की प्राचीनता निर्विवाद हैं। प्राचीनता के इस तथ्य को हम दो साधनों से मान सकते हैं पुरातत्व और इतिहास। जैन पुरातत्व का प्रथम सिरा कहाँ है? यह तय कर पाना कठिन हैं, क्योंकि मोहनजोदडों की खुदाई में कुछ ऐसी सामग्री मिली हैं जिसने जैन धर्म की प्राचीनता को कम से कम पाँच हजार वर्ष आगे धकेल दिया हैं''[33]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

इस प्रकार जैन धर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म हैं। जैन धर्म की प्राचीनता को प्रमाणित करने के लिए अनेकों साक्ष्य वर्तमान में उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक खोज, शिलालेख, पुरातात्विक साक्ष्य एवं प्राचीन साहित्य के सत्यानुशीलन से ऋषभदेव के साथ–साथ जैन धर्म की प्राचीनता दर्पणवत् स्पष्ट हो जाती हैं।

---

[31] डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, प्रथम भाग, पृष्ठ संख्या 3
[32] मार्डन रिव्यू अगस्त 1932 पृष्ठ 156–60
[33]मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 36

इसी क्रम में कुछ विद्वानों के महत्वपूर्ण निष्कर्षों को शोधकर्त्री प्रस्तुत कर रही हैं जिनसे जैन धर्म की प्राचीनता का पता चलता हैं–

''इसमें कोई भी सबूत नहीं है ंकि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानने में एकमत हैं। इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की सम्भावना हैं''[34]।

–सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान, डा. हर्मन याकोबी इंडियन (एंटीक्वेरी 46/63) (डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, 1992)

''जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति होने का कथन करती है, जो बहुत–सी शताब्दियों पूर्व हुए हैं। इस बात के प्रमाण पाये जाते है कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैन धर्म वर्धमान और पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे'''[35]। (डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, 1992)

–डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन

''विशेषतः प्राचीन भारत में किसी भी धर्मान्तर से कुछ भी ग्रहण करके नूतन धर्म चलाने की प्रथा नहीं थी। जैन धर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र धर्म हैं। यह उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं हैं''[36]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

–प्रो. मेक्सूलर, ऋषभ सौरभ

---

[34] डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, द्वितीय भाग, प्राक्कथन
[35] डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परमपरा, तृतीय भाग, प्रक्कथन
[36] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 40

''जैन धर्म तब से प्रचलित हुआ जब से सृष्टि का आरम्भ हुआ। इससे मुझे किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं हैं कि जैन दर्शन वेदान्त आदि दर्शनों से पूर्व का हैं''[37]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

–महामहोपाध्याय राम मिश्र शास्त्री, जैन इतिहास पर लोकमत

''लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास हैं कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे, किन्तु इसका प्रचार ऋषभदेव ने किया था। इसकी पुष्टि में प्रमाणों का अभाव नहीं हैं''[38]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

–वरदाकान्त मुखोपाध्याय, जैन धर्म की प्राचीनता

''जब जैन और ब्राह्मण दोनों ही ऋषभदेव को इस अल्पकाल में जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं तो इस मान्यता को अविश्वसनीय नहीं किया जा सकता''[39]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

–स्टीवेन्सन, कल्पसूत्र परिचय

''जैन और बौद्ध धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में मुकाबला करने पर जैन धर्म वास्तव में बहुत प्राचीन हैं। मानव समाज की उन्नति के लिए जैन धर्म में सदाचार का बडा मूल्य है''[40]। (मुनि प्रमाण सागर जी, 2014)

–फ्रेंच विद्वान् ए. गिरिनाट, जैन धर्म

डॉ. जिम्मर जैन धर्म का प्रागैतिहासिक, वैदिक धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र तथा प्राचीन मानते हुए लिखते हैं, "ब्राह्मण आर्यों से जैन धर्म की उत्पत्ति नहीं हैं, अपितु वह बहुत प्राचीन प्राग्आर्य, उत्तरपूर्वी भारत की उच्च श्रेणी के सृष्टि विज्ञान और मनुष्य आदि के विकास तथा रीति–रिवाजों के अध्ययन को व्यक्त करता हैं''।

---

[37] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 40
[38] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 42
[39] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 40
[40] मुनि प्रमाण सागर जी, जैन धर्म और दर्शन, पृष्ठ संख्या 42

संसार में प्रायः यह मत प्रचलित हैं कि भगवान् बुद्ध ने 2500 वर्ष पहले अहिंसा सिद्धान्त को प्रचार किया था। परन्तु महात्मा बुद्ध से करोड़ों वर्ष पूर्व एक नहीं अनेक तीर्थंकरों ने अहिंसा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया हैं। प्राचीन क्षेत्र और शिलालेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि जैन धर्म प्राचीन धर्म हैं, जिसने भारतीय संस्कृति को बहुत कुछ प्रदान किया।

जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर

तीर्थंकर नाम	चिन्ह	माता—पिता	जन्म स्थल	निर्वाण स्थल
आदिनाथ जी	बैल	मरूदेवी—नाभिराय	अयोध्या	कैलाश पर्वत
अजितनाथ जी	हाथी	विजया—जितशत्रु	अयोध्या	सम्मेद शिखर
संभवनाथ जी	घोडा	सुसेना—जितारी	श्रावस्ती	सम्मेद शिखर
अभिनन्दन नाथ जी	बन्दर	सिद्धार्था—संवर	अयोध्या	सम्मेद शिखर
सुमतिनाथ जी	चकवा	सुमंगला—मेघप्रभ	अयोध्या	सम्मेद शिखर
पद्मप्रभ जी	कमल	सुसीमा—धारणराज	कौशाम्बी	सम्मेद शिखर
सुपार्श्वनाथ जी	साथिया	पृथ्वी—सुप्रतिष्ठित	काशी	सम्मेद शिखर
चंद्रप्रभ जी	अर्ध चंद्र	लक्ष्मणा—महासेन	चंद्रपुरी	सम्मेद शिखर
पुष्पदंत (सुविधिनाथ जी)	मगर	रामा—सुग्रीव	काकन्दी	सम्मेद शिखर
शीतलनाथ जी	कल्पवृक्ष	सुनन्दा—दृढ़रथ	भद्रपुर	सम्मेद शिखर
श्रेंयासनाथ जी	गैंडा	विष्णुश्री—विष्णुराजा	सारनाथ (सिंहपुर)	सम्मेद शिखर
वासुपूज्य जी	भैंसा	जया—वसुपूज्य	चम्पापुर	चम्पापुर

विमल नाथ जी	शुकर	शर्मा—कृतवर्मा	कम्पिला	सम्मेद शिखर
अनन्त नाथ जी	सेही	सर्वयशा—सिंहसेन	अयोध्या	सम्मेद शिखर
धर्मनाथ जी	वज्रदण्ड	सुव्रता—भानुराजा	रत्नपुरी	सम्मेद शिखर
शान्तिनाथ जी	हिरण	ऐरा (ऐराणी)—विश्वसेन	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखर
कुन्थुनाथ जी	बकरा	श्रीदेवी (श्रीमति)—सूर्यराजा	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखर
अरनाथ जी	मछली	मित्रा—सुदर्शन	हस्तिनापुर	सम्मेद शिखर
मल्लिनाथ जी	कलश	रक्षिता (प्रभावती)—कुम्भ	मिथिला	सम्मेद शिखर
मुनिसुव्रत नाथ जी	कछुवा	पद्मावती—सुमित्र	राजगृही	सम्मेद शिखर
नमिनाथ जी	नील कमल	वप्रा—विजय	मिथिलापुरी	सम्मेद शिखर
नेमिनाथ जी	शंख	शिवा—समुद्रविजय	शौरीपुर	गिरिनार जी
पार्श्वनाथ जी	सर्प	वामा—अश्वसेन	काशी	सम्मेद शिखर जी
महावीर स्वामी जी (वर्धमान)	सिंह	त्रिशला—सिद्धार्थ	कुण्डलपुर	पावापुर जी

ऋषभदेव जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर थे। इनके बाद क्रमशः तेईस तीर्थंकर और हुए जिनका जीवन चरित्र जैन पुराण ग्रन्थों में सविस्तार मिलता हैं। इसके अतिरिक्त मथुरा के कंकाली टीला एवं अन्य स्थानों से प्राप्त ईस्वी सन् से शताब्दियों पूर्व की निर्मित प्रतिमाओं से भी शेष तीर्थंकरों का ऐतिहासिक अस्तित्व प्रमाणित होता हैं।

तीर्थंकर अजितनाथ जी

दूसरे तीर्थंकर भगवान अजितनाथ इक्ष्वाकुवंशीय काश्यप गोत्रीय राजा जीतशत्रु की महारानी विजया देवी की कुक्षी से माघ शुक्ला दशमी को अवतरित हुये। एक समय वे महल की छत पर विराजमान थे उस समय उन्होंने आकाश में भारी उल्कापात देखा जिससे उन्हें संसार की नश्वरता का भान हुआ और सम्पूर्ण संसारिक विषयों का त्याग कर उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। ''चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन जब कि चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र पर था, प्रातःकाल के समय प्रतिमायोग धारण करने वाले भगवान् अजितनाथ ने मुक्तिपद प्राप्त किया''[41]। (आचार्य गुणभद्र, 1996) अजितनाथ भगवान ने चैत्र शुक्ल पंचमी को सम्मेद शिखरजी के सिद्धवरकुट से मोक्ष प्राप्त किया।

तीर्थंकर संभवनाथ जी

तीसरे तीर्थंकर भगवान संभवनाथ जी द्वितीय तीर्थंकर के जन्म के 12 लाख वर्ष पूर्व और 30 लाख करोड़ सागरोपम के पश्चात् माता सुषेणा की कुक्षी से अवतरित हुए । जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के श्रावस्ती नगरी के राजा दृढ़राज इनके पिता थे। एक दिन मेद्यों का विभ्रम देखकर उन्हें संसार से वैराग्य हो गया तब उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। तप के प्रभाव से कार्तिक कृष्ण चतुर्थी के दिन चार घातिया कर्मों का नाश कर अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर अरिहंत पद पर स्थित हुये। चैत्र शुक्ल षष्ठी को सम्मेद शिखरजी के धवलकुट से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर अभिनन्दननाथ जी

अयोध्या नगरी के राजा संवर की पट्टरानी सिद्धार्था की कुक्षी से चतुर्थ तीर्थंकर अभिनन्दननाथ जी का अवतरण हुआ। मेद्यो की शोभा नष्ट होते देखकर, संसार को आसार मानकर उन्होंने नग्न दिगम्बर दीक्षा की। वैशाख शुक्ल षष्ठी को उन्होंने सम्मेद शिखरजी से मोक्ष प्राप्त किया।

तीर्थंकर सुमतिनाथ जी

[41] आचार्य गुणभद्र, उत्तर पुराण, पृष्ठ संख्या 5

अयोध्या नगरी के इक्ष्वाकु वंशीय महाराज मेघप्रभ की महारानी सुमंगला की कुक्षी से पांचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ जी का जन्म हुआ। आत्मा के स्वरूप का भान कर उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की चैत्र शुक्ल एकादशी के दिन सम्मेद शिखरजी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर पद्मप्रभ जी

छठें तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभ जी का जन्म कौशाम्बी नगरी के महाराज धारण की महारानी सुसीमा की पावन कुक्षी से हुआ। हाथी की मृत्यु के समाचार को सुनकर उन्हें पूर्व भवों का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी

तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ जी का जन्म काशी में बनारस नगरी के महाराज सुप्रतिष्ठ की महारानी पृथ्वीमती जी की पावन कुक्षी से हुआ। किसी समय ऋतु परिवर्तन देखकर उन्हें पदार्थों की नश्वरता का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर चंद्रप्रभ जी

तीर्थंकर भगवान चंद्रप्रभ जी का जन्म चंद्रपुर नगरी के महाराज महासेन की महारानी लक्ष्मणा की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस महल में दर्पण में अपना मुख कमल देखकर उन्हें शरीर की नश्वरता का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर पुष्पदंतनाथ जी

तीर्थंकर भगवान पुष्पदंतनाथ जी का जन्म काकंदी नगरी के महाराज सुग्रीव की महारानी रामा की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस दिशाओं का अवलोकन करते हुये उल्कापात देखकर उन्हें

संसार के भ्रम जाल होने का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। भाद्रपद शुक्ल अष्टमी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर शीतलनाथ जी

तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ जी का जन्म भद्रपुर नगरी के नृपति दृढ़रथ की महारानी सुनन्दा की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस वन विहार करते समय समस्त पदार्थों को ढके हुये पाले के समूह को क्षण भर में नष्ट होते देखकर उन्हें पदार्थों की नश्वरता का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। अश्विन शुक्ल अष्टमी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर श्रेयांसनाथ जी

तीर्थंकर भगवान श्रेयांस जी का जन्म सिंहपुर नगरी के महाराज विष्णुराज की महारानी विष्णुश्री की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस बसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर उन्हें संसार में परिवर्तन व पदार्थों की नश्वरता का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। श्रावण शुक्ल पूर्णमासी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर वासुपूज्य जी

तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य जी का जन्म चम्पापुर नगरी के नृपति वसुपूज्य की महारानी जयावती की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिन मन में पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का कर उन्हें संसार के दुःखों का ज्ञान हुआ और उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। भाद्रपद शुक्ला चर्तुदशी के दिन मंदारगिरीजी, चंपापुर से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर विमलनाथ जी

तीर्थंकर भगवान विमलनाथ जी का जन्म कम्पिला नगरी के महाराज कृतवर्मा की महारानी जया श्यामा की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस हेमन्त ऋतु में समस्त दिशाओं, भूमि, वृक्ष और पर्वत

बर्फ से ढके हुये कुछ ही क्षण पश्चात् बर्फ की शोभा नष्ट होते देखकर उन्हें संसार की नश्वरता का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। आषाढ़ कृष्णा अष्टमी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर अनन्तनाथ जी

तीर्थंकर भगवान अनन्तनाथ जी का जन्म अयोध्या नगरी के महाराज सिंहसेन की महारानी जयश्यामा की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस उल्कापात देखकर उन्हें यर्थाथ ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर धर्मनाथ जी

तीर्थंकर भगवान धर्मनाथ जी का जन्म रत्नपुर नगरी के महाराज भानुराज की महारानी सुप्रभा देवी की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस उल्कापात देखकर वे संसार से विरक्त हो गये। उन्होंने विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। ज्येष्ठ कृष्ण चर्तुदशी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर शांतिनाथ जी

तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ जी का जन्म हस्तिनापुर नगरी के महाराज विश्वसेन की महारानी ऐरादेवी की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस महल में दर्पण में दो प्रतिबिम्ब देखकर देखकर उन्हें संसार की क्षणिकता का ज्ञान हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। ज्येष्ठ कृष्णा चर्तुदशी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर कुन्थुनाथ जी

तीर्थंकर भगवान कुन्थुनाथ जी का जन्म हस्तिनापुर नगरी के महाराज सूर्यराजा की महारानी श्रीदेवी की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस अपने पूर्व भव का स्मरण होने से उन्होंने संसार से

विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर अरनाथ जी

तीर्थंकर भगवान अरनाथ जी का जन्म हस्तिनापुर नगरी के महाराज श्री सुदर्शन की महारानी मित्रसेना की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस शरद ऋतु के मेघों का अकस्मात् विलय होते देखकर अपने जन्म को सार्थक करने वाला आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर मल्लिनाथ जी

तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ जी का जन्म मिथिला नगरी के महाराज कुम्भराज की महारानी रक्षिता देवी की पावन कुक्षी से हुआ। विवाह के समय नगर की सजावट देखकर पूर्व जन्म के स्मरण से उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने संसार से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ जी

तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत जी का जन्म राजगृही नगरी के महाराज सुमित्र की महारानी पद्मावती की पावन कुक्षी से हुआ। हाथी के पूर्व भव का वृतांत सुनाते हुये उन्हें आत्मज्ञान हो गया। फाल्गुन कृष्ण द्वादशी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर नमिनाथ जी

तीर्थंकर भगवान नमिनाथ जी का जन्म मिथिला नगरी के महाराज विजय की महारानी वप्रा देवी की पावन कुक्षी से हुआ। एक दिवस देवों द्वारा अपने पूर्वभव का वृतांत सुनकर संसार रूपी

बंधन को त्यागकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करने की इच्छा हुई तब उन्होंने दीक्षा धारणकर बैशाख कृष्ण चर्तुदशी के दिन सम्मेद शिखर जी से निर्वाण प्राप्त किया।

तीर्थंकर नेमिनाथ

इनमें बाईसवे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ जिन्हें अरिष्ट नेमि भी कहते हैं कि ऐतिहासिकता को विद्वानों ने स्वीकार किया हैं। वे नारायण श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। यजुर्वेद आदि ग्रन्थों में भी अरिष्ट नेमि का उल्लेख हुआ हैं। पुराणों से भी स्पष्ट हैं कि श्रीकृष्ण के समकालीन एक अरिष्ट नेमि नामक ऋषि थे महाभारत में भी उनका उल्लेख हैं। इनका जन्म सौरीपुर के राजा समुद्रविजय की महारानी शिवा देवी की कुक्षी से हुआ था। इनके विवाह के समय श्री कृष्ण ने मायाचारी पूर्वक पशुओं को पकडवाया मूक पशुओं का रूदन नेमिकुमार के वैराग्य में निमित्त बना। आषाढ़ कृष्ण अष्टमी के दिन गिरिनार पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ था। ये उग्रवंशी राजा अश्वसेन और महारानी वामादेवी के पुत्र थे। 30 वर्ष की अवस्था में इनका मन वैराग्य से भर उठा और कुमार अवस्था में ही समस्त राज–पाट छोडकर इन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर तपस्या मार्ग अपना लिया। कुछ दिन तक दुर्द्धर तपस्या करने के उपरान्त इन्हें कैवल्य की उपलब्धि हुई। तदनन्तर देश–देशान्तरों में भ्रमण करते हुए इन्होंने जैन धर्म का उपदेश दिया अन्त में 100 वर्ष की अवस्था में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन बिहार प्रदेश में स्थित सम्मेद शिखर से निर्वाण लाभ किया। यह पर्वत तब से आज भी पारसनाथ हिल्स के नाम से विख्यात हैं। जैन पुराणों के अनुसार इनके और महावीर के निर्वाण काल में 250 वर्ष का अन्तर हैं। इतिहासकारों के अनुसार इनकी जन्मतिथि 877 ई0 पू0 तथा निर्वाण तिथि 777 ई0 पू0 हैं।

तीर्थंकर महावीर

अन्तिम तीर्थंकर महावीर का जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (सोमवार 27 मार्च ईस्वी पूर्व 598)के दिन कुण्ड़लपुर जिला नालंदा में हुआ। हैं। उनके पिता सिद्धार्थ वहाँ के प्रधान थे। वे ज्ञातृवंशी काश्यप गोत्रीय क्षत्रिय थे तथा माता त्रिशला वैशाली गणराज्य लिच्छवि नरेश चेटक की पुत्री थी। उन्हें प्रियकारिणी देवी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। वैशाली में भगवान् महावीर का स्मारक भी बना हुआ हैं। नाथवंशी होने के कारण महावीर को बौद्ध ग्रंथों में नात पुत्र (नाथ पुत्र) भी कहा गया हैं। महावीर के बचपन का नाम वर्धमान था, किंतु समय–समय पर घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं के कारण वीर, अतिवीर, सन्मति, महावीर आदि नाम भी उनके साथ जुड गए। महावीर पुराण के अनुसार–''जिनेन्द्र महावीर ने वैशाख शुक्ल दशमी के दिन केवल्य को प्राप्त किया। उन्होंने कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन पावापुर के पद्म सरोवर से मुक्ति प्राप्त की''। **(आदि पुराण, हरिवंश पुराण, जैन दर्शन सार, जैन धर्म का इतिहास आदि पुस्तकों के अध्ययन के आधार पर शोध कर्त्री द्वारा अपने शब्दों में तीर्थंकर परिचय प्रस्तुत किया गया हैं)।**

इस प्रकार जैन धर्म का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं विस्तृत हैं। 24 तीर्थंकरों ने धर्म तीर्थ का प्रवर्तन कर जैन धर्म अनुयायियों को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के महान् सिद्धान्तों से परिचित कराया।

चौबीस तीर्थंकरों के पश्चात् अनके मुनियों ने उनके बताये मार्ग पर चल कर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् 62 वर्ष में तीन अनुबद्ध केवली हुये।

नाम	समय
1. गौतम स्वामी	12 वर्ष
2. सुधर्माचार्य	12 वर्ष
3. जम्बू स्वामी	38 वर्ष
	62 वर्ष

इस प्रकार भगवान महावीर के पश्चात् 62 वर्ष तक कैवल्य (मोक्ष) का मार्ग खुला रहा तत्पश्चात् केवल ज्ञान का अभाव हो गया। केवल ज्ञान होने पर तीर्थंकरों द्वारा अरिहन्त अवस्था में जो ज्ञान प्रवाहित हुआ वह ज्ञान श्रुत अर्थात् जिनवाणी के रूप में आज भी विद्यमान हैं। श्रुतज्ञान अर्थात् जिनवाणी का सम्पूर्ण ज्ञान ग्यारह अंग व चौदह पूर्व रूप हैं। कैवल्य का अभाव होने पर भी जैन धर्म व जैन धर्म के ज्ञान की धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती रही। अनुबद्ध केवलियों के पश्चात् फिर अगले सौ वर्ष में पांच श्रुतकेवली हुये जिन्हें सम्पूर्ण श्रुत अर्थात् (ग्यारह अंग चौदह पूर्व का सम्पूर्ण ज्ञान रहा)

नाम	समय
1. विश्वनन्दी	14 वर्ष
2. नन्दी मित्र	16 वर्ष
3. अपराजित	22 वर्ष
4. गोवर्धन	19 वर्ष
5. भद्रबाहु	29 वर्ष
	100 वर्ष

इनके पश्चात् अगले 183 वर्षों मे ग्यारह अंग और दस पूर्व के धारी 11 मुनि हुये :—

नाम	समय
1. विशाखाचार्य	10 वर्ष
2. प्रोष्ठिलाचार्य	19 वर्ष
3. क्षत्रिय	17 वर्ष
4. जयसेन	21 वर्ष
5. नागसेन	18 वर्ष
6. सिद्धार्थ	17 वर्ष
7. धृतिषेण	18 वर्ष
8. विजय	13 वर्ष
9. बुद्धिल	20 वर्ष
10. गंगदेव	14 वर्ष
11. धर्मसेन	16 वर्ष
	183 वर्ष

प्रस्तुत तालिकायें आर्यिका ज्ञानमती जी कृत सिद्धांत चिंतामणि टीका, प्रवचन निर्देशिका (पृष्ठ 146– 147) को आधार मानकर प्रस्तुत की गयी हैं।

अगले 220 वर्षों के अन्दर ग्यारह अंग के पारगामी पाँच मुनि हुये :—

1. नक्षत्र

2. जयपाल

3. पाण्डुनाम

4. ध्रुवसेन

5. कंसाचार्य

इनके बाद अगले 118 वर्षों में एक अंग के धारी 4 मुनि हुये :—

1. सुभद्राचार्य

2. यशोभद्र

3. यशोबाहु

4. लोहाचार्य

62 वर्ष में तीन केवली।

100 वर्ष में पाँच श्रुत केवली।

183 वर्ष में ग्यारह अंग दस पूर्व के धारी ग्यारह मुनि।

220 वर्ष में एकादशांग में पारगामी पाँच मुनि।

118 वर्ष में चार मुनि प्रथम अंग धारी।

''इस प्रकार तीर्थंकर महावीर के पश्चात् 683 वर्ष तक अंगों का ज्ञान रहा। इसके पश्चात् क्षीण अंग के धारी आचार्य माघनन्दी हुये। इनके बाद गुणचंद्राचार्य, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्त, भूतबली, जिनचंद्र, कुन्दकुन्द आचार्य, उमास्वामी आदि महान् मुनि हुये। उनके पश्चात् इस भारतभूमि पर

समय–समय पर अनेकों मुनि आर्यिकाओं ने जन्म लेकर इस भूमि को ओर भी पवित्र किया''[42]। (आचार्य गुणभद्र स्वामी, 1990)

कुछ प्रसिद्ध जैनाचार्य

भगवान् महावीर के पश्चात् कितने ही प्रसिद्ध–प्रसिद्ध आचार्य और ग्रन्थाकार हुए हैं जिन्होंने अपने सदाचार और सद्विचारों से न केवल जैन धर्म को अनुप्राणित किया किन्तु अपनी अमर लेखनी के द्वारा भारतीय जैन वाङमय को भी समृद्ध बनाया। कुछ ऐसे प्रसिद्ध आचार्यों का परिचय संक्षेप में हैं **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा , जैन धर्म एवं दर्शन एवं जैन धर्म का इतिहास** पुस्तकों के प्रमाण पर आधारित जैन आचार्य परिचय शोधकर्त्री प्रस्तुत कर रही हैं।

गौतम गणधर (557 ई. पूर्व)

गौतम गणधर भगवान् महावीर के प्रधान गणधर (शिष्य) थे। मूलनाम इन्द्रभूति था, बुद्धयुपजीवि या ब्राह्मण थे। वेद वेदांग में पारंगत थे। जब केवलज्ञान हो जाने पर भी भगवान् महावीर की वाणी नहीं खिरी तो इन्द्र को चिन्ता हुई। इसका कारण जानकर इन्द्र इन्द्रभूति के पास गये और युक्ति से उन्हें भगवान् महावीर के समवसरण में ले आये। संशय दूर होते ही इन्द्रभूति ने प्रव्रज्या ले ली और भगवान् के प्रधान गणधर हुए। भगवान् का उपदेश सुनकर अवधारण करके इन्होंने द्वादशांग श्रुत की रचना की। जब कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रातः भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ उसी समय गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई उसके 12 वर्ष पश्चात् इन्हें भी निर्वाणपद प्राप्त हुआ।

आचार्य भद्रबाहु (325 ई. पूर्व)

भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली थे। इनके समय में मगध में 12 वर्ष को भंयकर दुर्भिक्ष पडा। तब यह साधुओं के बहुत बडे संघ के साथ दक्षिण देश को चले गये। प्रसिद्ध मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त भी

[42] गुणभद्र आचार्य, आत्मानुशासन, पृष्ठ संख्या 133, 135

राज्यभार पुत्र को सौंपकर इनके साथ ही दक्षिण को चले गये। वहाँ मैसूर प्रान्त के श्रवणबेलगोला स्थान पर भद्रबाहु स्वामी अपना अन्तिम समय जानकर ठहर गये और शेष संघ को आगे भेज दिया। सेवा के लिए चंद्रगुप्त अपने गुरू के पास ही ठहर गये। वहां के चंद्रगिरि पर्वत की एक गुफा में भद्रभाहु स्वामी ने देह त्याग कर समाधि मरण किया। यह गुफा भद्रबाहु स्वामी की गुफा कहलाती हैं वहाँ उनके चरण अंकित हैं जो पूज्नीय हैं। भद्रबाहु के समय में ही संघभेद का बीजारोपण हुआ अतः उनके बाद से ही जैन (दिगम्बर) आचार्यों की परम्परा से श्वेताम्बर आचार्य परम्परा पृथक हो गयी। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के उपलब्ध साहित्य के आधार से यह पता चलता है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में विशाल जैन संघ स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित हो गया और इस विभाग का मूल कारण साधुओं का वस्त्र परिधान था। जो पक्ष साधुओं की नग्नता का पक्षपाती था और नग्नता को ही तीर्थंकर महावीर का मूल आचार मानता था वह दिगम्बर कहलाया। इसको मूलसंघ नाम से भी जाना जाता है और जो पक्ष वस्त्रपात्र का समर्थन करता था वह श्वेताम्बर कहलाया।

दिगम्बर शब्द का अर्थ है– दिशा ही जिनका वस्त्र है, अर्थात् नग्न। और श्वेताम्बर शब्द का अर्थ है–सफेद वस्त्र वाला। इस तरह प्रारम्भ में यद्यपि साधुओं के वस्त्र परिधान को लेकर ही संघभेद हुआ किन्तु बाद में उनमें भेद की अन्य ओर भी सामग्री जुटती गयी और धीरे–धीरे दोनों सम्प्रदायों में भी अनेक अलग पंथ हो गये। किन्तु भेद के कारणों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जैन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में तात्विक दृष्टि से भेद नहीं हैं, बल्कि जो कुछ भेद है वह अधिकांश में व्यावहारिक दृष्टि से ही है। सभी जैन सम्प्रदाय और पन्थ अहिंसा और अनेकांतवाद के अनुयायी हैं। आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, संसार आदि के स्वरूप के विषय में उनमें कोई भेद नहीं है। सातों तत्वों का स्वरूप सभी एक–सा मानते हैं, कुछ परिभाषाओं आदि को छोड़कर कर्म सिद्धान्त में भी कोई मार्मिक भेद नहीं है। फिर भी भेद जो है वह ऐसा है जो मिटाया नहीं जा सकता।

दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु नग्न रहते हैं। वे जीव जन्तु को दूर करने के लिए मोर के पंख की एक पीछी रखते हैं और मल–मूत्र आदि की बाधा के लिए एक कमण्डलु रखते हैं, जिसमें प्रासुक जल रहता है। दिन में एक बार खड़े होकर अपने हाथ में ही भोजन कर लेते हैं इसलिए उन्हें भोजन के लिए पात्र की आवश्यकता नहीं होती।

आचार्य धरसेन (वि. सं. की दूसरी शती)

आचार्य धरसेन अंगों और पूर्वों के एक देश के ज्ञाता थे और सौराष्ट्र देश के गिरनार पर्वत की गुफा में ध्यान करते थे। उन्हें इस बात की चिन्ता हुई कि उनके पश्चात् श्रुतज्ञान का लोप हो जायेगा। अतः उन्होंने महिमानगरी के मुनि सम्मेलन को पत्र लिखा। वहां से दो मुनि उनके पास पहुंचे। आचार्य ने उनकी बुद्धि की परीक्षा करके उन्हें सिद्धान्त की शिक्षा दी।

आचार्य पुष्पदन्त और भूतबली

ये दोनों मुनि पुष्पदन्त और भूतबली थे। आषाढ़ शुक्ला एकादशी को अध्ययन पूरा होते ही धरसेनाचार्य ने उन्हें बिदा कर दिया। दोनों शिष्य वहां से चलकर अंकुलेश्वर में आये और वहीं चतुर्मास किया। पुष्पदन्त मुनि अंकुलेश्वर से चलकर बनवास देश में आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जिन पालित को दीक्षा दी और बीस प्ररूषणा ''सत्प्ररूषणा'' की रचना करके उन्हें पढ़ाया। फिर उन्हें भूतबलि के पास भेज दिया। इस तरह पुष्पदन्त को अल्पायु जानकर आगे की ग्रन्थ रचना की। इस तरह पुष्पदंत और भूतबलि ने षट्खण्डागम नाम के सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की। फिर भूतबलि ने षट्खण्ड़ागम को लिपिबद्ध करके ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उसकी पूजा की। इसी से यह तिथि जैनों में श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध हुई। (षट्खण्डागम ग्रंथ के तथ्यों पर आधारित)

आचार्य कुन्दकुन्द (वि. सं. की दूसरी शती)

आचार्य कुन्दकुन्द जैन धर्म के महान् प्रभावक आचार्य थे। इनके विषय में प्रसिद्ध हैं कि विदेह क्षेत्र में जाकर सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। इनका

प्रथम नाम पद्यनन्दि था। कोण्डकुन्दपुर के रहने वाले होने से बाद में वे कोण्डकुन्दाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। उसी का श्रुतिमधुर रूप 'कुन्दकुन्दाचार्य' बन गया। इनके प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और समयसार नाम के ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अनेक प्राभृतों की रचना की हैं जिनमें से आठ प्राभृत उपलब्ध हैं। बोधप्राभृत के अन्त की एक गाथा में इन्होंने अपने को श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य बतलाया हैं। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में इनकी बडी कीर्ति वर्णित की गयी हैं।

आचार्य उमास्वामी (वि.सं. की तीसरी शती)

यह आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे। इन्होंने जैन सिद्धान्त को संस्कृत सूत्रों में निबद्ध करके तत्वार्थसूत्र नामक सूत्र ग्रन्थकी रचना की। इनको गृद्धपिच्छाचार्य भी कहते थे। श्रवणबेलगोला के शिलालेख नं. 108 में लिखा है कि – श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पवित्र वंश में उमास्वामी मुनि हुए जो सम्पूर्ण पदार्थों के जानने वाले थे, मुनियों में श्रेष्ठ थे।

आचार्य समन्तभद्र (वि. सं. की तीसरी–चौथी शती)

जैन संस्कृति के प्रभावक आचार्यों में स्वामी समन्तभद्र का स्थान बहुत ऊंचा है। इन्हें जैन शासन का प्रणेता और भावी तीर्थंकर तक कहा जाता है। अकलंकदेव ने अष्टशती में विद्यानन्द ने अष्टसहस्री में, आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में, जिनसेन सूरि ने हरिवंशपुराण में, वादिराजसूरि ने न्यायविनिश्चय विवरण और पार्श्वनाथचरित में, वीरनन्दि ने चंद्रप्रभूचरित में, हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरव नाटक में तथा अन्य अनेक ग्रन्थकारों ने भी अपने–अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में इनका बहुत ही आदरपूर्वक स्मरण किया है। मुनि जीवन में इन्हें भस्मक व्याधि हो गयी थी, जो खाते थे वह तत्काल जीर्ण हो जाता था। उसे दूर करने के लिए इन्हें कांची या काशी के राजकीय शिवालय में पुजारी बनना पड़ा और वहां देवार्पित नैवेद्य का भक्षण करके अपना रोग दूर किया। जब रहस्य खुला तो स्वयंभू–स्तोत्र रचकर जैन शासन का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट किया।

इनकी महत्वपूर्ण कृति आप्तमीमांसा, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, युक्तानुशासन, जिनस्तुतिशतक तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार नामक ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथा गन्धहस्ति भाष्य जीवसिद्धि आदि कुछ ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। ये प्रखर तार्किक और कुशलवादी थे।

आचार्य अकलंक (ई. 620 से 680)

यह जैन न्याय के प्रतिष्ठाता थे। प्राकण्ड पण्डित, धुरन्धर शास्त्रार्थी और उत्कृष्ट विचारक थे। जैन न्याय को इन्होंने जो रूप दिया उसे ही उत्तरकालीन जैन ग्रन्थकारों ने अपनाया। बौद्धों के साथ इनका खूब संघर्ष रहा। स्वामी समंतभद्र के यह सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। इनकी रचनाएं दुरूह और गम्भीर हैं। अब तक इनके अष्टशती, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चय, लघीयस्त्रय, सिद्धिविनिश्चय और तत्त्वार्थराजवार्तिक नामक ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं।

आचार्य वीरसेन (ई. 790–825)

आचार्य वीरसेन प्रसिद्ध सिद्धांतग्रंथ षट्खण्डगम और कसायपाहुड के मर्मज्ञ थे। उन्होंने प्रथम ग्रंथ पर 62 हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत–संस्कृत मिश्रित धवला नाम की टीका लिखी है और कसायपाहुड पर 20 हजार श्लोक प्रमाण जयधवला टीका लिखकर ही स्वर्गवासी हो गये। ये टीकाएं जैन सिद्धांत की गहन चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। धवला की प्रशस्ति में उन्हें वैयाकरण का अधिपति, तार्किक चक्रवर्ती और 'प्रवादी रूपी गजों के लिए सिंह' समान बतलाया है।

जैन धर्म में आर्यिका का पद

आधुनिक परिवेश में चाहे श्रावक हो या मुनि, श्राविका हो या आर्यिका स्पष्ट रूप में उनकी चर्या का ज्ञान होना आवश्यक है। आचार्य श्री यतिवृषभ स्वामी ने कहा हैं– "पंचम काल के अंत तक मुनि– आर्यिका, श्रावक–श्राविका का चतुर्विध संघ वर्तन करेगा। अभी तो पंचम काल के मात्र 2532 वर्ष व्यतीत हुये है, शेष 18468 वर्षों तक निरन्तर ऐसी ही अक्षुण्ण परम्परा चलती

रहेगी।"[43] (आर्यिका चंदनामती, 2006) इसके फलस्वरूप वर्तमान में बारह सौ की संख्या में दिगम्बर जैन साधु–साध्वियों के दर्शन हो रहे है।

चतुर्विध संघ श्रृंखला में पुरूषों के लिए त्याग की चरम सीमा महाव्रती मुनिराज हैं वही महिलाओं के लिए त्याग की चरम सीमा आर्यिका का पद माना जाता हैं। यदि भारतीय इतिहास देखा जाये तो प्राचीन काल से ही धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आदि समस्त क्षेत्रों में नारियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं।

जिस प्रकार पुरूषों को आत्मसाधना करने का एवं जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार हैं, उसी प्रकार महिलाओं को चाहे वह कुवांरी हो, सौभाग्यवती हो या विधवा हो, सभी को आत्म कल्याण करने का अधिकार सदैव से प्राप्त है। भारतीय नारियों ने अनादि काल से ही दीक्षा लेकर आर्यिका पद अंगीकार कर आत्म कल्याण का मार्ग अपनाया।

आर्यिका पद का महत्व

आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण की टीका के अनुसार– आर्यिका सदैव प्राणिमात्र को कल्याण हेतू हित के लिए सद्उपदेश देती हैं। आचार्य रविषेण जी सती अजंना के पूर्वजन्म का वर्णन करते हुये लिखते हैं कि कनकोदरी महादेवी की पर्याय में उसने अभिमानवश सौत के प्रति क्रोध प्रकट किया और जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को घर के बाहरी भाग में फिकवा दिया। इसी बीच में संयम श्री आर्यिका ने भिक्षा के लिए उसके घर में प्रवेश किया संयम श्री अपने तप के कारण समस्त संसार में प्रसिद्ध थी। तदनन्तर जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अनादर देख उन्हें बहुत दुःख हुआ तथा इस अंजना जीव जो कनकोदरी था उसे मिथ्यात्व ग्रस्त देख उन्हें परम करूणा उत्पन्न हुई सो ठीक ही हैं क्योंकि साधुवर्ग सभी प्राणियों का कल्याण चाहता हैं। गुरूभक्ति से प्रेरित हुये साधु वर्ग बिना पूछे ही अज्ञानी प्राणियों को हित करने के लिए धर्मोपदेश देने लगते हैं। तदनन्तर शीलरूप आभूषण को धारण करने वाली संयम श्री आर्यिका अत्यन्त मधुर वाणी में कनकोदरी को समझाने लगी। आर्यिका के समझाने पर कनकोदर नरक गति के दुःख के वर्णन

[43] आर्यिका चंदनामती, चारित्र चंद्रिका, पृष्ठ संख्या 2

से भयभीत हो गई। उसने उसी समय शुद्ध हृदय से उत्तम सम्यग्दर्शन धारण किया तथा अर्हन्त भगवान् की प्रतिमा को उसने पूर्व स्थान पर विराजमान कराया। इस कर्मभूमि के प्रारम्भ में युग पुरूष ऋषभदेव जी ने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मुनि परम्परा को प्रारम्भ किया, उसी प्रकार उनकी पुत्री ब्राह्मी–सुन्दरी ने दीक्षा लेकर आर्यिका परम्परा का शुभांरभ किया हैं।

आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण की हिन्दी टीका में साहित्याचार्य डा0 पन्नालाल जी ने लिखा हैं कि "भरत की छोटी बहन ब्राह्मी भी गुरूदेव की कृपा से दीक्षित होकर आर्याओं के बीच में गणिनी (स्वामिनी) के पद को प्राप्त हुई थी। वह ब्राह्मी सब देवों के द्वारा पूजित हुई थी''[44]। (डा. पन्नालाल जैन, 2011) वृषभदेव की दूसरी पुत्री सुन्दरी को भी उस समय वैराग्य उत्पन्न हो गया था जिसमें उसने भी ब्राह्मी के बाद दीक्षा धारण कर ली।

आर्यिका दीक्षा का स्वरूप

जैन धर्म प्राणि मात्र का हित करने वाला हैं यह सोचकर हृदय में संसार समुद्र से पार होने की भावना को लेकर कोई स्त्री पहले साधु संघ में प्रवेश करती हैं पुनः उसके वैराग्य भावों में वृद्धि आरम्भ होती है। चतुर्विध संघ के नायक आचार्य उसे समुचित शिक्षाएँ प्रदान कर संघ की प्रमुख आर्यिका या गणिनी के सानिध्य में आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करते हैं क्योंकि आर्यिकाएँ ही स्त्रियों की सुरक्षा एवं पोषण कर सकती हैं। जिस प्रकार से बालक माता के प्रति पूर्ण समर्पित होता है। चाहे माता उसे समझाने के लिए उसे उच्च स्वर का प्रयोग करें फिर भी बालक को माता की गोद में ही प्रेम, शान्ति व वात्सल्य की प्राप्ति होती हैं। माता का हृदय बहुत ही उदार होता है उसकी ममतामयी आंचल में बडे से बड़ा दुःख भी सुख रूप में परिवर्तित हो जाता है। ''उसी प्रकार वैराग्य भावयुक्त स्त्री भी आर्यिका माता के शिष्यत्व को स्वीकार करके स्वयं को उनके प्रति समर्पित कर देती हैं और गुरूमाता से विनयपूर्वक निवेदन करती हैं कि हे मातः! मैं अपने अनंत संसार को समाप्त करने हेतु, स्त्रीलिंग के छेदन हेतु दीक्षा

[44]डा. पन्नालाल जैन, आदि पुराण वाॅल्यूम 24. पृष्ठ संख्या 591, 593

ग्रहण करना चाहती हूँ अतः आप मुझे हस्तावलंबन देकर मेरी आत्मा का कल्याण कीजिये''[45]।
(आर्यिका श्री ज्ञानमती 2016)

सम्पूर्ण औपचारिक क्रियाओं के पश्चात् गणिनी आर्यिका नववैराग्य शालिनी स्त्री को कुछ समय अपने समक्ष रखती हैं और उसके मन की दृढ़ता को, शारीरिक क्षमता को एवं उसमें आर्यिका दीक्षा की योग्यता देखती हैं साथ ही धार्मिक अध्ययन भी कराती हैं। साधु संघ में प्रवेश करते ही दीक्षा की प्राप्ति हो जाये, यह आवश्यक नहीं है सर्वप्रथम तो उसमें साधुओं की वैयावृत्ति करने की एवं आहारदान की भावना होना परमावश्यक हैं तथा विभिन्न प्रदेशों की, विभिन्न प्रकृति वाली संघस्थ आर्यिकाओं व ब्रह्मचारिणियों के साथ वात्सल्यपूर्वक रहने की प्रवृत्ति होनी चाहिये ताकि संघ में किसी प्रकार की अशान्ति का वातावरण न उपस्थित हो यथानुरूप ढ़ल जाना ही दीक्षार्थी श्राविका का सबसे बड़ा गुण होना चाहिये। कुमारी–बालिकायें तथा स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आर्यिकाओं के पास रहती हैं और आहार–दानादिक में भाग लेती हैं, इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण वर्तमान में भी देखे जाते हैं क्योंकि चाहे बालक हो या बालिका, स्त्रियाँ हो या पुरूष, सभी के लिये दो ही मार्ग प्रशस्त होते हैं या तो वे साधुओं को नवधाभक्ति पूर्वक आहारदान देते हैं अन्यथा स्वयं साधु परमेष्ठी के पद को धारण कर श्रावकों से आहार लेते हैं। इसके अतिरिक्त आगमानुसार तृतीय श्रेणी कोई नहीं होती संघ के मध्य एवं गणिनी आर्यिका के अनुशासन में रहकर विद्याभ्यास करने से ब्रह्मचारिणियों के जीवन में किसी भी प्रकार की मिथ्या क्रियाओं की संभावना प्रायः नहीं रहती हैं अतः आर्यिकाओं की प्रशस्त परम्परा इन्हीं से चलती हैं जब संघ संरक्षण में रहते हुए वे विद्या शिक्षा में निपुण हो जाती हैं एवं व्यवहारिक ज्ञान आदि का अनुभव भी प्राप्त कर लेती हैं, तभी वे दीक्षा के योग्य मानी जाती हैं।

वर्तमान युग में आचार्य और गणिनी दोनों के द्वारा महिलाओं की आर्यिका, क्षुल्लिका दीक्षा की परम्परा चली आ रही है अतः स्वेच्छा से वैराग्य शालिनी स्त्री जिनके श्री चरणों में दीक्षा की याचना करती हैं, वे पूर्ण निष्ठापूर्वक दीक्षा देकर अनुग्रह आदि करते हुये उसे नवजीवन में प्रवेश

[45] आर्यिका श्री ज्ञानमती से साक्षात्कार के आधार पर

कराते हैं। दीक्षा दिवस से पूर्व तक उन्हें श्राविका के समस्त कर्त्तव्य पालन करने होते हैं। जैसे–जिनेन्द्र पूजा–विधान, उत्तम पात्रों की शक्ति अनुसार चतुर्विध दान देकर अपने मन को पवित्र बनाती है।

''जैसा कि कुन्द–कुन्द स्वामी ने कहा हैं– आदहिदं कादत्वं जड़ सक्कड़ परहिदं च कादव्वं......... ......इत्यादि''।

आत्महित की प्रमुखता से ही दीक्षा लेना सर्वोत्तम कार्य है, परहित उसके साथ हो जाये तो ठीक हैं किन्तु मात्र परहित का ही लक्ष्य रखना आत्महित में बाधक हो सकता हैं। मानव जीवन का प्रत्येक क्षण अत्यन्त अमूल्य होता है अतः उन क्षणों का सदुपयोग करना मनुष्य का कर्त्तव्य हैं। देखते ही देखते बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था तीनों समयों को बिताकर काल कलवित हो जाता हैं और आत्मा की ओर दृष्टि ही नहीं जाती हैं।

गुरू की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् वे आचार्य अथवा गणिनी सौभाग्यवती महिलाओं के द्वारा पूरे गये मंगल चौक पर दीक्षार्थी महिला को पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठा देते हैं। दीक्षा प्रदान करने वाली गणिनी आर्यिका अथवा आचार्य सर्वप्रथम उस दीक्षार्थी से कहते हैं कि तुम्हें हमारे संघ की मर्यादा और अनुशासन में रहना होगा, एकाकी विहार नहीं करना एवं ख्याति लाभ, पूजा में पड़कर अपनी गुरू परम्परा को नहीं तोड़ना इत्यादि बातें मनवाकर दीक्षा वे संस्कार प्रारम्भ कर दिये जाते है। जब दीक्षार्थी गुरू की सभी बातें स्वीकार कर लेती हैं, तब गुरूवर्य अपने संघस्थ सब साधुओं से, दीक्षार्थी के कुटुम्बियों से एवं वहाँ पर उपस्थित समस्त जन समूह से पूछते है कि क्या इसे दीक्षा दे दी जाये, जब सभी साधुवर्ग धर्म वृद्धि से हर्षित मन से सहर्ष स्वीकृति दे देते हैं तत्पश्चात् शास्त्रों में वर्णित दीक्षा विधि के अनुसार गणिनी आर्यिका द्वारा दीक्षार्थी का मस्तक गरम प्रासुक जल से प्रभावित किया जाता हैं पुनः मस्तक पर बीजाक्षर लिखकर पीले तदुंल और लबंग से मंत्रों का आरोपण किया जाता है। उसके हाथ में बीजाक्षर लिखकर तथा दोनों हाथों की अंजुलि में तंदुल भरकर उसमें श्रीफल आदि मंगल द्रव्य रखकर पुनः उन्हें श्रीफल आदि मंगल द्रव्य रखकर पुनः उन्हें अट्ठाईस मूलगुण प्रदान किये जाते

हैं। तत्पश्चात् गणिनी आर्यिका स्वयं संयम का उपकरण मयूर पंख की पिच्छिका शौच के लिए उपकरण स्वरूप नारियल का कंमडलु और ज्ञान का उपकरण शास्त्र प्रदान करती हैं। शिष्या भी विनयपूर्वक दोनों हाथों से पिच्छिका को प्राप्त करती हैं, बाँए हाथ से कंमडलु को और दोनों हाथों से शास्त्र को ग्रहण करती है। इन्हीं संस्कारों के साथ ही गुरू द्वारा नवदीक्षिता का नवीन नामकरण भी किया जाता है, सम्पूर्ण वेशभूषा और क्रियाओं के परिवर्तन के साथ ही नाम भी परिवर्तित हो जाने से अब पूर्ण रूप से नवजीवन में प्रवेश हो जाता है। पुनः नवदीक्षिता आर्यिका सर्वप्रथम भक्तिपूर्वक दीक्षागुरू को ''नमोऽस्तु'', "वदामि" करके अन्य साधु–साध्वियों को "नमोऽस्तु'', "वदांमि" करके साधु श्रेणी में विराजमान हो जाती है।

दीक्षा के दिन उन दीक्षार्थी स्त्री का उपवास रहता हैं। द्वितीय दिवस पारणा के लिए गाणिनी आर्यिका के पीछे श्रावकों के गृह में आहार हेतु जाती है। वहाँ पर श्रावक विधिवत् पड़गाहन करके नवधा भक्ति से आहार दान देकर अपना जन्म सफल समझते हैं।

जिस प्रकार से मूल–जड़ के अभाव में वृक्ष नहीं ठहरता, मूल नींव के अभाव में मकान नहीं बनता, उसी प्रकार मूल–प्रधान आचरण के बिना श्रावक और साधु दोनों की सार्थकता नहीं होती हैं।

मुनि व आर्यिकाओं की चर्या को उचित प्रकार से पालने के लिए 28 मूलगुणों है, जो परमावश्यक हैं।

आर्यिकाओं के 28 मूलगुण उपचार से होते है–

अट्ठाईस मूलगुण

मूलगुण और उत्तरगुण जीव के परिणाम हैं। महाव्रतादिक मूलगुण अट्ठाईस हैं। बारह तपश्चरण और बाईस परीषह इनको उत्तरगुण कहते हैं। ये चौंतीस हैं।

अट्ठाईस मूलगुणों के नाम

''पंच महाव्रत, पंच समिति, पंच इन्द्रियों को वश करना, छह आवश्यक क्रिया, लोच, आचेलक्य, स्नान का त्याग, क्षितिशयन, दंत धावन न करना, खड़े होकर आहार करना, दिन में एक बार आहार करना, ये 28 मूलगुण हैं''[46]। (आर्यिका चंदनामती 2006)

पांच महाव्रत

मुख्य व्रतों को महाव्रत कहते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए कारणभूत हिंसादि के त्याग को व्रत कहते हैं। जिनको आचार्य, उपाध्याय मुनि आदि महापुरूष ग्रहण करते हैं अथवा जो पालन करने वाले को महान् बना देते हैं वे महाव्रत कहलाते हैं। इसके पांच भेद हैं–

अहिंसा महाव्रत

कषाय से युक्त मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को प्रमत्त योग कहते हैं, प्रमत्त योग से दस प्रकार के प्राणों का वियोग करना हिंसा है, ऐसी हिंसा का पूर्ण त्याग होना सर्व प्राणियों पर पूर्ण दया का पालन करना अहिंसा महाव्रत है।

सत्य महाव्रत

प्राणियों को जिससे पीड़ा होती है, ऐसे वचनों का पूर्ण रूप से त्याग करना।

अचौर्य महाव्रत

बिना आज्ञा के किसी की वस्तु को ग्रहण नहीं करना।

ब्रह्मचर्य महाव्रत

पूर्णतया मैथुन का व स्त्रीमात्र का त्याग कर देना।

परिग्रह त्याग महाव्रत

बाह्य–अभ्यंतर परिग्रहों का त्याग करना, मुनियों के अयोग्य समस्त वस्तुओं का त्याग करना।

---

[46]आर्यिका चंदनामती, चारित्र चन्द्रिका, पृष्ठ संख्या 12

ये पांच महाव्रत सभी प्रकार के सावध–पापों के त्याग के कारण हैं।

पांच समिति

सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति है। उसके पांच भेद हैं–

ईर्या समिति

अच्छी तरह देखकर मन को स्थिर कर गमन–आगमन करना।

भाषा समिति

आगम से अविरूद्ध, पूर्वापर सम्बन्ध से रहित, निष्ठुरता, कर्कश, मर्मच्छेदक आदि दोषों से रहित भाषण करना।

एषणा समिति

लोकनिंद्य आदि कुलों को छोड़कर और सूतक, पातक, जाति संकर आदि दोषों से रहित घरों में छियालीस दोष और बत्तीस अंतराय टालकर आहार ग्रहण करना।

आदाननिक्षेपण समिति

आँखों से देखकर और पिच्छिका से शोधन कर यत्नपूर्वक वस्तु को रखना और उठाना।

प्रतिष्ठापन समिति

जन्तु रहित प्रदेश में ठीक से देखकर मलमूत्रादि का त्याग करना।

ये पांच समितियाँ हैं।

पंच इन्द्रिय निरोध

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पंच इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को हटाना–नियन्त्रण करना इन्द्रिय निरोध हैं।

छह आवश्यक क्रियायें

अवश्य करने योग्य क्रियायें आवश्यक क्रियायें कहलाती हैं।

समता

रागद्वेष मोह से रहित होना अथवा त्रिकाल पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करना।

स्तवन

ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करना।

वन्दना

एक तीर्थंकर का दर्शन या वंदन करना अथवा पंचगुरूभक्ति दर्शन वन्दना करना।

प्रतिक्रमण

अशुभ मन, वचन और काय के द्वारा जो प्रवृत्ति हुई थी उन किये हुए दोषों का शोधन करना। इस प्रतिक्रमण के दैवसिक, रात्रिक, ऐर्यापथिक, पाक्षिक, चार्तुमासिक, वार्षिक और उत्तमार्थ ऐसे सात भेद हैं।

प्रत्याख्यान

अयोग्य द्रव्य का त्याग करना अथवा योग्य वस्तु का भी त्याग करना।

व्युत्सर्ग

देह से ममत्व रहित होकर जिनगुण चिन्तनयुक्त कायोत्सर्ग करना। ऐसे छह आवश्यक हैं।

इन्द्रिय, कषाय, राग द्वेषादि के वश में जो नहीं है वे अवश हैं, उनकी क्रियायें आवश्यक क्रियायें हैं। ये छह आवश्यक क्रियायें मुनियों को नित्य ही करनी चाहिये।

लोच

अपने हाथों से मस्तक और दाढ़ी—मूंछ के केशों को उखाड़ कर फेंक देना। यह केशलोच उत्कृष्ट दो महीने में, मध्यम तीन और जघन्य चार महीने में होता है।

आचेलक्य

चेल—वस्त्र, मुनिपने से अयोग्य सर्व परिग्रहों का त्याग कर देना। आर्यिकायें श्वेत वस्त्र धारण करती हैं।

अस्नान

स्नान का त्याग। आर्यिकायें माह में एक बार स्नान कर सकती हैं।

क्षितिशयन

घास, लकड़ी का फलक, शिला इत्यादि पर सोना।

अदंत धोवन

दांतों के लिए दन्त मंजन, काष्ठादि का उपयोग नहीं करना।

स्थिति भोजन

खड़े होकर पैरों को चार अंगुल अन्तर से रखकर भोजन करना। आर्यिकायें बैठकर आहार लेती हैं।

एकभुक्ति

दिन में एक बार आहार लेना।

इस प्रकार ये अट्ठाईस मूलगुण कहलाते हैं। (आर्यिका चंदनामती जी कृत चारित्र चन्द्रिका एवं अन्य जैन साहित्य के अवलोकन पर आधारित)

जैन धर्म की प्रमुख आर्यिकायें

जैन धर्म में समय–समय पर अनेक आर्यिकाओं ने दीक्षा लेकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। जिनमें महान् सोलह सतियाँ जैन धर्म के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

सोलह सतियाँ

1. ब्राह्मी
2. चंदनबाला
3. राजुल(राजमती)
4. कौशल्या
5. मृगावती
6. सीता
7. सुभद्रा
8. द्रौपदी
9. सोमा
10. कुन्ती
11. मनोरमा
12. मैना सुन्दरी
13. अंजना
14. प्रभावती
15. शिवा देवी

16. पद्मावती

इन सोलह सतियों ने अपने शील व संयम से जैन धर्म में महान् आदर्श प्रस्तुत किया। इनके अतिरिक्त अनेकों महान् स्त्रियों ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को ऊँचा उठाया।

महान् जैन आर्यिकायें

आर्यिका ब्राह्मी जी

ब्राह्मी अयोध्या के नरेश वृषभदेव की ज्येष्ठ पुत्री थी। माता यशस्वती से उत्पन्न हुई थी। भरत, वृषभसेन आदि भाई थे। धीरे–धीरे यौवन को प्राप्त होती हुई ब्राह्मी शील और विनयादि गुणों से परिपूर्ण थी। एक दिन राज्यसभा में ब्राह्मी–सुंदरी के साथ विनोद करते हुये वृषभदेव ने विद्या ग्रहण करने के लिए कहा।

वृषभदेव ने अपने चित में स्थित श्रुतदेवता को आदरपूर्वक स्वर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया 'सिद्ध नम्' इस मंगलाचरण रूप मंत्र का उच्चारण कर अपने दाहिने हाथ से दाईं ओर बैठी ब्राह्मी को 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ लृ ए ऐ ओ औ क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ़ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह अनुस्वार (ऊ) विसर्ग (अः) जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इन चार अयोगवाह पर्यंत समस्त स्वर व्यंजन रूप शुद्ध अक्षरावली लिखने का उपदेश दिया। वृषभदेव ब्राह्मी को वाङमय का उपदेश देते है। वृषभदेव से अक्षर विद्या सीखी इसी कारण आज वर्णमाला लिपि को ब्राह्मी लिपि कहते हैं। ब्राह्मी व्याकरण शास्त्र, छंद शास्त्र व अंलकार शास्त्र में भी पारंगत थी।

ब्राह्मी समाज में उच्च आदर्श को स्थापित करने वाली महती एवं श्रेष्ठ आर्यिका थी। वृषभदेव के दीक्षा लेने के पश्चात् कुछ समय बाद ''ब्राह्मी ने भी समवसरण में जाकर दीक्षा ले ली और सभी

आर्यिकाओं (तीन लाख पचास हजार) की प्रधान गणिनी हो गई''[47]। (आचार्य जिनसेन, भगवान आदिनाथ के समवसरण में तत्व ज्ञान प्राप्त किया।

''समवसरण में नाथ आपने सप्त तत्व उपदेश दिया।

वृषभसेन गणधर से श्रोता, भरतराज ब्राह्मी आर्या''[48]। (आर्यिका पूर्णमति, 2009)

आर्यिका सुन्दरी

वृषभदेव के दो रानियाँ थी– यशवती और सुनन्दा। सुनन्दा ने सुंदरी को जन्म दिया। वह बाल क्रीड़ाओं से सबके मन को हरती हुई यौवन को प्राप्त हुई। विद्या ग्रहण करने का उचित समय जानकर पिता ने गणित विद्या में पारंगत किया। वृषभदेव ने श्रुतदेवता को स्वर्ण पट्ट पर स्थापित कर मंगलाचरण करते हुए दाहिने हाथ से ब्राह्मी को लिपि का ज्ञान दिया और बायें हाथ से बाई तरफ बैठी हुई सुंदरी को इकाई, दहाई आदि स्थानों के क्रम से 1,2,3 आदि संख्या रूप गणित विद्या को सिखाया। सुन्दरी ने वाङमय का उपदेश भी ग्रहण किया। वाङमय व्याकरण शास्त्र, छंदशास्त्र और अंलकार शास्त्र का समूह है। वृषभदेव ने सौ से अधिक अध्याय वाले व्याकरण शास्त्र व छंदशास्त्र के उक्ता, अत्युक्ता आदि छब्बीस भेदों का उपदेश दिया वृषभदेव में प्रस्तार नष्ट–उद्दिष्ट, एक द्वि त्रि लघु क्रिया, संख्या और अध्वयोग, छंदशास्त्र के इन छह प्रत्ययों का भी निरूपण किया। अलंकार ग्रंथ में उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया। माधुर्य, ओज आदि दशप्राण का भी निरूपण किया। सुंदरी सब विद्याओं में निपुर्ण, मातृ–गरिमा से मंडित थी। कुछ ही दिनों में सुंदरी की व्याकरण रूपी दीपिका से प्रकाशित हुई समस्त विद्यायें परिपक्व अवस्था को प्राप्त हुई। अपने पिता से अनुग्रहित समस्त विद्याओं को प्राप्त कर वे इतनी अधिक ज्ञानवती हो गई थी कि साक्षात् सरस्वती भी उनमें अवतार ले सकती थी। सुंदरी ने वृषभदेव के समवसरण में ब्राह्मी के साथ दीक्षा ली थी।

---

[47]आचार्य जिनसेन, हरिवंश पुराण, पृष्ठ संख्या 183

[48]आर्यिका पूर्णमति, श्री तीर्थंकर विधान, पृष्ठ संख्या 34

आर्यिका सुलोचना

भरत क्षेत्र में काशी नामक देश में वाराणसी नामक नगर के राजा अकम्पन और रानी सुप्रभा की पुत्री सुलोचना थी। किशोरावस्था में सुलोचना में सर्व, विद्या और कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। सुलोचना ने अनेक प्रकार की रत्नमयी प्रतिमाएं बनवाई। उनकी प्रतिष्ठा करके अभिषेक पूजा की। वह अर्थपूर्ण स्तुतियों से भगवान की स्तुति करती, दान देती, महामुनियों का बार–बार चिन्तवन करते हुए उन्होंने सम्यग्दर्शन की शुद्धता प्राप्त कर ली थी। युवावस्था में स्वयंवर रचा गया जिसमें उन्होंने माला जयकुमार जो भरत के सेनापति थे उनके गले में डाल दी। बड़े उत्सव के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ। एक बार जयकुमार हाथी पर बैठकर नदी पार कर रहे थे तब मगर ने जयकुमार के हाथी का पैर पकड़ लिया और वे डुबने लगे तब सुलोचना चुतराहार त्यागकर णमोकार मंत्र का जाप कर नदी में जाने लगी। तब जयकुमार का उपसर्ग दूर हुआ और सुलोचना सती की पूजा की हुई। एक बार कॉचना देवी इनकी शील की परीक्षा लेने आई। उसने भी जयकुमार और सुलोचना के शील में दृढ़ता की प्रंशसा की।

जयकुमार भगवान आदिनाथ के समवसरण में गए और उपदेश सुनकर दीक्षा ले ली। उसी क्षण जयकुमार को मनःपर्यय ज्ञान और ऋद्धियाँ प्रगट हो गई और वे भगवान के इकहतरवें गणधर हो गए। ''पति वियोग से दुःख को प्राप्त हुई सुलोचना को चक्रवर्ती की पटरानी सुभद्रा ने समझाया तब उन्होंने भी विरक्त हो ब्राह्मी आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण की''[49]। (डा. पन्नालाल जैन, 2011) दीक्षा लेकर सुलोचना ने तप के साथ ज्ञान की भी विशेष आराधना की जिससे उन्हें ग्यारह अंगों का ज्ञान हो गया। दुष्ट संसार के स्वभाव को जानने वाली सुलोचना ने सफेद साड़ी पहनकर ब्राह्मी और सुन्दरी के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ले ली। मेघेश्वर जयकुमार शीघ्र ही द्वादशांग के पाठी होकर भगवान के गणधर हो गए और आर्यिका सुलोचना भी ग्यारह अंगों की धारक हो गई। सर्वकला निपुण, आगम प्रवीण नारी का नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है।

---

[49] आदि पुराण, द्वितीय भाग पृष्ठ संख्या 503

आर्यिका सीता

मिथिलापुरी में राजा जनक राज्य करते थे। उनकी रानी विदेहा के गर्भ से सीता उत्पन्न हुई। धीरे–धीरे वे किशोरावस्था को प्राप्त हुई। वे अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से सबके मन को प्रसन्न करती थी। जब वे विवाह योग्य हुई तो इनका स्वयंवर रचा गया। स्वयंवर में राम ने वज्रावर्त धनुष को चढ़ा कर सीता की वरमाला प्राप्त कर ली और वह विवाह करके अयोध्या लौट आये। एक समय राजा दशरथ दीक्षा लेना चाहते थे तो उनकी रानी कैकेयी ने भरत के लिए राज्य मांगा। राम को सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान हुआ तो भरत के लिए उन्होंने अयोध्या छोड़ने का फैसला किया। राम, सीता और लक्ष्मण वन को चले गए। वन में रावण की दृष्टि सीता पर पड़ी। रावण ने सीता का हरण कर लिया और आकाश मार्ग से लंका ले आया। बाद में राम ने सुग्रीव हनुमान आदि विद्याधरों की सहायता से लंका पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध हुआ और रावण मारा गया और वे सब सीता को लेकर अयोध्या लौट आए तब भारत ने दिगम्बर दीक्षा ले ली। अयोध्या लौटने पर लोकापवाद हुआ फलस्वरूप राम ने सीता को वन में भेजने की सोची। लक्ष्मण के मनाने पर भी वे नहीं माने और सेनापति को बुलाकर तीर्थवंदना के बहाने घोर जंगल में सीता को छुड़वा दिया उस समय सीता गर्मवती थी। जंगल में सीता का रूदन सुनकर पुण्डरीकपुर का राजा व्रजजंघ सीता को अपनी बहन बनाकर अपने साथ ले गया वहाँ उसने दो पुत्र हुयें। बाद में लोकापवाद दूर करने के लिए सीता ने अग्नि परीक्षा दी। अग्नि परीक्षा के पश्चात् सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका से दीक्षा लेकर 62 वर्ष तक तप किया व स्त्री पर्याय का छेदन किया।

आर्यिका मंदोदरी

रावण की मृत्यु के बाद इन्द्रजीत और मेघवाहन दोनों पुत्रों ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली तब रानी मन्दोदरी को शोक से व्याकुल देख आर्यिका शशिकांता ने उन्हें उत्तम वचनों से समझाकर सम्बोधित किया। उस समय परम संवेग को प्राप्त हुई ''रानी मन्दोदरी ने तथा रावण की बहन

चंद्रनखा ने उन्हीं शशिकांता आर्यिका के पास 48,000 स्त्रियों सहित आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी''[50]। (आर्यिका चंदनामती, 2006)

आर्यिका बन्धुमती

हनुमान ने धर्मरत्न नामक मुनि के पास दीक्षा ले ली। उनके साथ 750 विद्याधर राजाओं ने भी अपने पुत्रों को राज्य देकर मुनिपद ग्रहण किया तब हनुमान की रानियों ने तथा अन्य भी राज स्त्रियों ने गणिनी आर्यिका बन्धुमती जी के पास जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार कर उनकी उत्तम विधि से पूजा की। तदनन्तर उन्हीं के पास आर्यिका दीक्षा धारण कर ली।

आर्यिका कैकयी

भगवान देशभूषण केवली के समवसरण (गंधकुटी) में श्री भरत ने दीक्षा ग्रहण कर ली। भरत के साथ एक हजार राजाओं में भी दीक्षा ली। उस समय माता कैकयी शोक से व्याकुल हो रही थी। राम और लक्ष्मण को समझाने पर संवेग को प्राप्त हुई तब रानी कैकयी ने तीन सौ स्त्रियों के समय पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा धारण की।

आर्यिका द्रोपदी

राजा द्रुपद कांपिल्य नगर के राजा थे। उनकी रानी दृढ़रथा से द्रौपदी नाम की पुत्री हुई। द्रौपदी का विवाह अर्जुन से हुआ था। द्रौपदी ने पूर्वभव में नागश्री की पर्याय में महातपस्वी मुनिराज को विष मिला हुआ आहार दे दिया जिसके फलस्वरूप वह मरकर पांचवे नरक में उत्पन्न हुई। इस प्रकार वह त्रस स्थावर योनियों में परिभ्रमण करती रही और फिर एक बार स्त्री पर्याय में जन्म लिया। उसका नाम सुकुमारी रखा। पाप का उदय शेष रहने से उसके शरीर से बहुत दुर्गन्ध आती थी। एक दिन सुकुमारी ने सुव्रता नाम की आर्यिका को आहार दिया तो उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने कुटुम्बी जनों से आज्ञा लेकर उन्हीं आर्यिका के पास दीक्षा ले ली। किसी एक दिन वन में वसंतसेना नाम की वेश्या आई और बहुत से मनुष्य उस वेश्या को

[50]आर्यिका चंदनामती, चारित्र चंद्रिका, पृष्ठ संख्या 6

घेरकर उससे प्रार्थना कर रहे थे। सुकुमारी आर्यिका के मन में उसे देखकर ऐसा भाव आया कि मुझे भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो पश्चात् गणिनी के पास जाकर आलोचना करके प्रायश्चित ग्रहण किया। यही सुकुमारी आगे चलकर द्रौपदी हुई जिन पर पूर्वजन्म में किए गए निदान के फलस्वरूप द्रौपदी की पर्याय में पंच भर्तारी का असत्य आरोप लगा। वास्तव में द्रौपदी सती थी। युधिष्ठिर, भीम जेठ और नकुल, सहदेव देवर थे। फिर भी पूर्वकृत कर्म के उदय से उसे निंदा सहनी पड़ी। अन्त में द्रौपदी ने भगवान नेमिनाथ के समवसरण में गणिनी राजमती आर्यिका से दीक्षा लेकर स्त्री पर्याय छेदकर अच्युत स्वर्ग में देवपद को प्राप्त किया।

आर्यिका राजमती

ये आर्यिका तीर्थंकर नेमिनाथ की मुख्य गणिनी थी। महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी के तीर्थंकर नेमिनाथ उत्पन्न हुए। युवावस्था में उनका विवाह राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती के साथ तय हुआ। राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण आदि बारात लेकर जूनागढ़ आ गए। इसी मध्य श्रीकृष्ण ने सोचा कि नेमिनाथ महाशक्तिशाली है, कहीं मेरा राज्य न ले लें। पुनः सोचा ये नेमिकुमार कुछ ही वैराग्य का कारण पाकर दीक्षा ले सकते हैं। ऐसा सोचकर षड़यंत्र किया और बहुत से मृग आदि पशु इकट्ठे कराकर एक बाड़े में बन्द कराकर द्वारपाल को समझा दिया। जब नेमिकुमार उधर से निकली, बाड़े में बन्द और चिल्लाते हुए पशुओं को देखा तो उन्होंने द्वारपाल से इसका कारण पूछा। द्वारपाल ने बताया कि इन्हें विवाहोत्सव में वध के निमित्त से इकट्ठा किया गया हैं। उन्होंने उसी क्षण उन्होंने अवधिज्ञान से श्रीकृष्ण की सारी चेष्टा जान ली और विरक्त हो गए और दीक्षा के लिए वन में पहुँच गए। नेमिनाथ के दीक्षा लेने के बाद राजमती बहुत दुःखी हुई और वियोग के शोक से रोती रहती थी। भगवान के केवलज्ञान होने के बाद समवसरण में राजा वरदत्त ने दीक्षा ले ली और भगवान के प्रथम गणधर हो गए। उसी समय छः हजार रानियों के साथ दीक्षा लेकर राजमती आर्यिकाओं के समूह की गणिनी बन गई। उस काल में कुन्ती, सुमद्रा, द्रौपदी आदि ने गणिनी राजमती से ही दीक्षा ली थी।

राजमती, कुन्ती, सुभद्रा, द्रौपदी ये चारों आर्यिकाओं ने धर्मध्यान से सल्लेखना करके स्त्रीवेद का नाशकर सोलहवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया। वहॉ की 22 सागरोपम आयु को पूर्ण कर वे पुरूष पर्याय धारण कर तपश्चरण करके निर्वाण प्राप्त करेगी।

आर्यिका मैनासुन्दरी

भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड़ में उज्जयिनी नाम की नगरी में राजा पुहुपाल शासन करते थे। उनकी रानी के सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी दो कन्यायें थी। मैनासुन्दरी ने आर्यिकाओं के पास सभी विद्याओं और शास्त्रों का उत्तम अध्ययन कर लिया था। एक दिन पिता ने कहा– बेटी! तू अपनी इच्छा से अपने लिए वर का निर्णय बता दे। मैना ने इस पर मना कर दिया ओर कहा– मेरे भाग्य में जैसा होगा ठीक है। पिता ने भाग्य के नाम से चिढ़कर मैना का कोढ़ी के साथ विवाह कर दिया। रानी और मंत्रियों ने अत्यधिक मना किया पर वह नहीं माने।

चम्पापुर के राजा अरिदमन की रानी कुंदप्रभा के श्रीपाल नाम का पुत्र था। पिता के दीक्षित होने के बाद वे राज्य संचालन कर रहे थे। अकस्मात् भंयकर कुष्ट रोग होने से प्रजा को उनकी बदबू सहन नहीं हुई तब श्रीपाल ने अपने चाचा वीरदमन को राज्य सम्भलवाकर स्वयं 700 योद्धाओं के साथ देश से निकलकर वनों में विचरने लगे। राजा पुहुपाल ने मैनासुन्दरी का विवाह श्रीपाल से कर दिया। मैनासुन्दरी पति सेवा करने लगी। एक दिन उसने मंदिर में मुनिराज से पति रोग निवारण के लिए पूछा तब मुनिराज ने कहा–"हे भद्रे! तुम कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ की अष्टान्हिका में आठ–आठ दिन व्रत करके सिद्धचक्र की आराधना करो। मंदिर में जाकर मैनासुन्दरी ने विधिवत् सिद्धचक्र की पूजा की ओर गंधोदक लाकर पति के सर्वाग पर लगाया और 700 योद्धाओं पर भी छिड़का। मात्र आठ दिनों में श्रीपाल और 700 योद्धा रोग से मुक्त हो गए।अनन्तर श्रीपाल ने चाचा वीरदमन से युद्ध करके अपना राज्य वापस ले लिया और मैनासुन्दरी को पट्टरानी बना दिया। एक दिन चम्पापुर में केवली भगवान का समवसरण आया तो मैनासुन्दरी और श्रीपाल ने अपने पूर्वभव पूछे तत्पश्चात् आठ हजार रानियों के साथ दीक्षा ले ली। निर्दोष चर्या का पालन करते हुए श्रीपाल ने घोर तपश्चरण करने के बाद

केवल ज्ञान प्राप्त लिया। आर्यिका मैनासुन्दरी ने घोर तपश्चरण से कर्मों को कृश कर दिया और सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेदकर सोलहवें स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया। आगे वह देव मनुष्य भव प्राप्त कर दीक्षा लेकर मोक्ष पद प्राप्त करेगी।

तीर्थकालीन प्रमुख आर्यिकाओं ने अपने समय में समाज को सुसंस्कारों से परिपूर्ण किया। ज्ञान की ओर अग्रसर होने के लिए स्वयं अध्ययन किया, अभ्यास किया, सूत्रों एवं सिद्धांतों का पालन किया। संसार की असारता को समझा और उसे जीवन के सूत्रों से जोड़ लिया। उनके ज्ञान व संयम से अध्यात्म की क्रान्ति सम्पन्न होती गई।

इस प्रकार जैन परम्परा में अनेक आर्यिकाओं ने दीक्षा लेकर अपने जीवन को सफल बनाया वर्तमान में भी अनेक आर्यिकायें विद्यमान हैं वे धर्म के प्रचार व आत्मकल्याण में लगी हैं। जिनमें से एक हैं इस युग की प्रथम बाल सती आर्यिका ज्ञानमती जी।

आर्यिका ज्ञानमती जी

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।

जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।

श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।

जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

(आर्यिका चंदनामती जी, 2011)

ज्ञानमती जी अपने ज्ञान की प्रकाश रश्मियों से सर्वत्र ज्ञान फैला रहीं है। इनके व्यक्त्तित्व एवं कृतित्व का ज्ञान अवश्यंभावी है,

आर्यिका ज्ञानमती जी

जन्म, वैराग्य और दीक्षा

''22 अक्टूबर सन् 1934''[51] (आर्यिका चंदनामती, 2016)शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में "मैना" का जन्म परिवार में नवीन खुशियों का कारण बना। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्व भव से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण किया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में 24 घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को हृदय में रखे। ब्र. मैना ने सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षा प्राप्त की। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सानिध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर.राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **"आर्यिका ज्ञानमती"** नाम प्राप्त किया।

अध्ययन और अध्यापन

ज्ञानप्राप्ति की पिपासा आर्यिका ज्ञानमती जी के रोम–रोम में प्रारंभ से ही विद्यमान थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय–मनन–चिंतन की धारा में उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्त्रोत बना–संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य–शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से उनकी ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल–फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया।

---

[51] आर्यिका चंदनामती, मांगीतुंगी भजन संगह, पृष्ठ संख्या–7

गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को संघस्थ शिष्याओं को पढ़ा–पढ़ाकर अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से

क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। सन् 1969–70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रन्थ 'अष्टसहसी' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टिकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलाकर वर्तमान में 250 से भी अधिक हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी, संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह–रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद का अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोंक आदि का अध्ययन सभी को वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङमय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगों रूप विविध विधाओं के अतिरिक्त उनकी लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्धत हुआ हैं। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने–कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की हैं, वह अतुलनीय हैं। उनका चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है। इस प्रकार आर्यिका ज्ञानमती जी अपने साहित्य के माध्यम से जैन आगम के ज्ञान को प्रसारित कर रही हैं उन्होंने अनेक आर्यिकाओं को जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की उनकी प्रथम शिष्या आर्यिका चंदनामती जी हैं।

अध्याय–4

आर्यिका चंदनामती जी का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से जैन धर्म के विकास में योगदान

जन्म

भारत के उत्तरी भाग के बाराबंकी जनपद के ग्राम टिकैतनगर में अग्रवाल दिगम्बर जैन जाति के गौरव गोयल गौत्रिय श्रेष्ठि श्री छोटे लाल जी एवं श्रीमति मोहिनी देवी के आंगन में एक तेजस्विनी बालिका ने दिनांक ''18 मई 1958 तदानुसार ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या वीर निर्वाण संवत 2484''[52] (बीना जैन, 2016) को जन्म लिया। जन्म के समय पर किसी को आभास भी नहीं हुआ होगा कि एक भावी आर्यिका का जन्म हुआ है। धर्म के संस्कारों से परिपूर्ण परिवार में जन्मीं नन्ही बालिका का नाम माधुरी रखा गया। माधुरी बचपन से ही अत्यन्त चतुर, तेजस्वी, मधुर वाणी से युक्त थी। जैन पुराणों का निरन्तर स्वाध्याय करने वाली माता मोहिनी देवी ने आचार्य कुन्दकुन्द की माता के समान माधुरी को बालपन में ही धर्म के संस्कार दे दिये थे। बाल्यावस्था से माता–पिता के मुख से ज्येष्ठ भगिनी मैना वर्तमान की आर्यिका ज्ञानमती जी के जीवन चरित्र को सुनकर जैन धर्म के प्रति माधुरी की जिज्ञासा बढने लगी तब उन्होंने बाल्यावस्था से ही स्वाध्याय करना प्रारम्भ कर दिया। कहा जाता हैं कि पूत के पॉव पालने में ही नजर आने लगते है अल्हड मस्ती के जिन दिनों में बालिकायें खेलने कूदने व मौज मस्ती में मग्न रहती हैं उस अवस्था में माधुरी धर्म ग्रन्थों के अध्ययन से स्वयं को अध्यात्म के रंग से रंगने में लगी रहती थी। जैन ग्रन्थों के स्वाध्याय से माधुरी के मन में संसारिक जीवन से उदासीनता आने लगी तब उन्होंने मात्र 11 वर्ष की आयु में जयपुर राजस्थान में ''25 अक्टूबर 1969 को 2 वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत''[53] ले लिया। महत्वपूर्ण बात यह हैं कि इतनी कम आयु, जिस

---

[52] आर्यिका चंदनामती, ऋषभगिरि मांगीतुंगी भजन संग्रह, पृष्ठ संख्या 9

[53] आर्यिका चंदनामती, ऋषभगिरि मांगीतुंगी भजन संग्रह, पृष्ठ संख्या 9

वय में प्रायः .बालिकायें बाह्य श्रृंगार से रूप सज्जा में समय व्यतीत करती हैं उस समय में माधुरी नियमों व धार्मिक भावनाओं के प्रति जागरूक थीं। इस प्रकार बाल्यवस्था से ही माधुरी धार्मिक संस्कारों से ओत प्रोत थी।

शिक्षा

माधुरी प्रखर बुद्धि की बालिका थी। 11 वर्ष की नन्हीं वय में माधुरी को आर्यिका ज्ञानमती जी के दर्शन का सौभाग्य मिला, उनके मुख से गोम्मटसार की 34 गाथाओं को पढकर, एक दिन में याद करके उन्हें सुनाकर अपनी प्रतिभा का परिचय दे दिया था। उसी समय पूज्नीय ज्ञानमती माताजी माधुरी की प्रखर बुद्धि कों देखकर धर्म मार्ग में लगाने के लिये तत्पर हो गयी। यद्यपि माधुरी की लौकिक शिक्षा हाईस्कूल तक ही थी परन्तु 15 वर्ष की आयु में उन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की और माधुरी शास्त्री बन गई।

माधुरी शास्त्री ने अपने ज्ञान एवं क्षयोपशम के द्वारा अनेक रचनाओं का निर्माण किया उनकी सभी कृतियॉ गागर में सागर के समान हैं। हिन्दी ,अंग्रेजी ,संस्कृत भाषा में अनेक रचनायें उनकी लेखनी से प्रसूत हुई। दीक्षा के पश्चात् आर्यिका चंदनामती के रूप में ''षट्खण्डागम ग्रन्थ'' की ''सिद्धान्तचिंतामणि'' टीका का हिन्दी अनुवाद करके जैन साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य करने के कारण 8 अप्रैल 2012 को तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा पी.एच. डी की मानद् उपाधि प्रदान की गयी। इस प्रकार लौकिक शिक्षा कम होते हुए आर्यिका चंदनामती जी अपने ज्ञान व साहित्यिक कार्यों के कारण विद्यावाचस्पति की उपाधि से अलंकृत हैं।

विलक्षण व्यक्तित्व

माधुरी आरम्भ से ही विलक्षण व्यक्तित्व की धनी थी। वे सामान्यजनों से भिन्न थी। स्वार्थ तो उन्हें छू तक नहीं पाया था। बाल्यावस्था से ही उन्हें दूसरों को सुख सुविधायें देने में असीम आनन्द प्राप्त होता था। दीन– दुखियों की सेवा करना उनके स्वभाव में निहित था। स्वभाव से

माधुरी गम्भीर थी। बिना कारण हँसना और आवश्यकता से अधिक बोलना माधुरी के जीवन में इन बातों का कोई स्थान न था। भौतिक सुख सुविधाओं को सदैव क्षणभंगुर समझने वाली माधुरी को स्त्रियों के समान श्रृंगार करना कदापि नही रूचता था। सादा जीवन उच्च विचार को आदर्श मानने वाली माधुरी संसार की वस्तुओं को नश्वर मानकर त्याग को ही जीवन का उत्कर्ष, वैराग्य को ही सौंदर्य एवं संयम को श्रृंगार जानकर साधना पथ पर की ओर अग्रसर थी।

लौकिक उपलब्धियॉ माधुरी को कभी संतुष्ट नहीं कर पायी थी। बाल्यावस्था में जब भी किन्ही आर्यिका के दर्शन करती तो उनके वस्त्र एवं जीवन माधुरी को अत्यन्त प्रभावित करते। धवल वस्त्रों को देखकर माधुरी सदैव विचार करती कि किसी प्रकार मेरा जीवन भी इन वस्त्रों की भांति धवल हो जाए। ''एक बार माधुरी सखियों के संग क्रीड़ा में व्यस्त थी,तभी वहाँ पर एक बिस्किट बेचने वाली स्त्री आयी। सभी बालक बिस्किट खरीद कर खाने लगे। माधुरी के परिवार में कोई भी बाजार की वस्तुओं का सेवन नहीं करता था, परिवार के संस्कारों के कारण माधुरी का मन बिस्किट के लिये नहीं ललचाया। नन्ही माधुरी ने बिस्किट नहीं खरीदें उनकी एक सखी ने उन्हें एक बिस्किट खाने के लिये दिया माधुरी ने नही लिया परन्तु माधुरी का ध्यान बिस्किट की आकृति पर गया, बिस्किट मछली के आकार के थे। ये देखकर माधुरी को अत्यन्त खेद हुआ उन्होनें अपने मित्रों को समझाया कि हमारा जन्म जैन कुल में हुआ हैं। जैन लोग मात्र शाकाहारी भोजन करते हैं। इस पर उनकी सखियों ने कहा कि ये बिस्किट भी आटे के बने हैं सो ये शाकाहारी ही हैं। तब माधुरी ने समझाया कि उन्होंने आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित **''आटे का मुर्गा''** पुस्तक का स्वाध्याय किया था जिसके अनुसार किसी जीव की आकृति की खाने की वस्तु खाने से भी मांसाहार की अनुमोदना का पाप लगता हैं''[54]। (आर्यिका चंदनामती, 2015) इस प्रकार बाल्याकाल से ही माधुरी को जैन धर्म के नियमों का गहराई तक ज्ञान था। जिव्हा का स्वाद उनके संयमी जीवन को किसी प्रकार की क्षति नही पहॅुचा सका था अर्थात् रसना इन्द्रिय पर उनका पूर्ण संयम था।

---

[54] आर्यिका चंदनामती जी से साक्षात्कार के आधार पर

माधुरी का जन्म अमावस्या के दिन हुआ था। उस अमावस्या की काली रात में जन्मी माधुरी ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से ,मधुर कोयल जैसे कंठ से, प्रभावी व्यक्तित्व एवं आकर्षक वक्तव्य शैली से अपने जीवन को चमकते तारों के समान बना लिया। बचपन से ही संगीत में अगाध रूचि रखने वाली माधुरी को सुर–ताल के विषय मे विशेष ज्ञान था। विभिन्न अवसरो पर भजन गाकर सभा में उपस्थित जन समूह को अपने भजन का मर्म समझा में कुशल थी। आर्यिका बनने के पश्चात् वे लौकिक संगीत व आत्मिक संगीत में भेद–ज्ञान कर आत्मिक संगीत को संवारने में जुट गयी। इस प्रकार संगीत भी उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग हैं।

पारिवारिक जीवन

माधुरी के दादा श्री नौबतराय जैन टिकैतनगर के सम्मानीय व्यवसायी थे। उनके तीन आज्ञाकारी पुत्रों में से मझले पुत्र छोटेलाल जी की तेरह संतान हुई। जिनमें नौ पुत्रियाँ एवं चार पुत्र हैं। उनकी नौ में से तीन पुत्रियों ने वैराग्य को जीवन का आधार बनाया व आर्यिका पद की साधना की। माधुरी छोटेलाल जी की बारहवीं संतान थी। उनके भाई–बहनों के विषय में संक्षिप्त परिचय निम्नांकित हैं

1 –कुमारी मैना (पूज्य गणिनी प्रमुख ज्ञानमती माताजी)

2 –श्रीमती शान्ति देवी, लखनऊ

3 –श्री कैलाश चंद जैन, टिकैतनगर/लखनऊ

4 – श्रीमती देवी जैन, बहराइच

. 5 – कुमारी मनोवती, आर्यिका अभयमतीजी (समाधिस्थ),

6 – स्व. श्री प्रकाश चंद जैन, टिकैतनगर/लखनऊ

7 – श्री सुभाषचंद जैन, टिकैतनगर/लखनऊ

8 – श्रीमती कुमुदनी देवी जैन, कानपुर

9 –श्री रविन्द्र कुमार जैन (बाल ब्रह्मचारी), स्वस्ति श्री पीठाधीश रविन्द्रकीर्ति जी

10 – श्रीमती मालती जैन, दिल्ली

11 – श्रीमती कामिनी देवी जैन, दरियाबाद

12–कुमारी माधुरी जैन – .प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती जी (बाल ब्रह्मचारिणी),

13 – श्रीमती त्रिशला जैन, लखनऊ

एक परिवार से तीन –तीन आर्यिकायें बनना और एक भाई का 10 प्रतिमा के व्रतों सहित पीठाधीश बनकर तीर्थों का संरक्षण एवं संचालन करते हुए कर्मयोगी की पदवी से विभूषित होना अत्यन्त गौरव का विषय हैं। माता मोहिनी देवी ने भी असार संसार को तिलांजलि देकर आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर आर्यिका ज्ञानमती जी के निर्देशन में आर्यिका रत्नमती के रूप में समाधि मरण किया।

ऐसे वैराग्यपूर्ण परिवार में जन्म लेना, माधुरी के वैराग्यमयी जीवन का आधार बना।

साधना पथ की ओर

धार्मिक संस्कारों से परिपूर्ण परिवार में जन्म लेने के कारण माधुरी का जीवन बाल्यावस्था से ही धार्मिक था। दो बडी बहनें दीक्षा लेकर आर्यिका पद के महाव्रतों का पालन कर रही थी, ऐसे में माधुरी का भी वैराग्य पथ पर कदम रखना स्वाभाविक था। परिवार के संस्कारों एवं ज्येष्ठ भगिनी आर्यिका ज्ञानमती जी के सानिध्य ने माधुरी के जीवन को साधना के उत्कृष्ट पद पर पहॅुचने में सहायता दी। मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में शरद पूर्णिमा के दिन (25अक्टूबर,1969) आर्यिका ज्ञानमती जी की पारखी दृष्टि माधुरी पर पडी तब उन्होंने उस नन्ही. बालिका को सम्बोधन दिया, माधुरी को संघ में रहने की प्रेरणा दी परन्तु उस समय माधुरी की दीक्षा लेने का

समय नहीं आया था अतः माता पिता के मोह मे माधुरी भाई के साथ वापस घर आ गयी। माधुरी के घर लौटने पर पिता छोटेलाल जी ने स्नेहिल हाथ माधुरी के मस्तक पर रखते हुए बेटी से कहा ''ज्ञानमती माताजी के पास नहीं रूकी ,सो बड़ा अच्छा रहा, वे तो सबके बाल नोच देती हैं (अर्थात् केशलोंच को वे बाल नोचना कहते थे) वे आगे और सन्तान मोह में कहते हैं–''मुझे मेरे बच्चे, बच्चियॉ बहुत प्यारे हैं, मैं इन्हें छोड़कर नहीं रह सकता जब भी कोई बालक माताजी के दर्शन के लिए जाता हैं तो मुझे बड़ी चिन्ता लगी रहती हैं कि मेरे बच्चे कही ज्ञानमती माताजी रूपी चुम्बक से चिपक न जावे। पहले वे खुद घर परिवार छोड.कर चली गई, फिर बिटिया मनोवती (आर्यिका अभयमती) को अपने पास बुला लिया, उसके बाद भी सबको धर्म की बातें बताती रहती हैं। मैं इस वियोगजन्य दुख को कैसे सहन करूँ''[55] ।(शिवचरनलाल जैन, 2013) ''छोटेलाल जी को सब बच्चे लालाजी कहा करते थे। उनके स्नेहिल शब्दों, प्यार–दुलार और दो संतानों के वियोग से दुखी हृदय की पीडा देखकर नन्हीं माधुरी को लगा कि उन्हें अपने लालाजी को छोड़कर कहीं भी नहीं जाना चाहिए। यद्यपि उस छोटी सी वय में माधुरी को अधिक समझ तो नहीं थीं फिर भी वह अधिक समय पिता सेवा (हाथ, माथा दबाना और पास में बैठकर बातें करना, सुनना, उनसे बाल सुलभ चेष्टा रूप पैसे लेना आदि) में बिताती थी। एक दिन शाम को माता मोहिनी देवी के साथ माधुरी मन्दिर जाने लगी तब पिता छोटेलाल जी ने उन्हें बड़े ध्यान से देखा और माता से कहा –''मुझे लगता हैं कि माधुरी बिटिया तुम्हारी जिन्दगी भर सेवा करेगी। पिता के ये शब्द माधुरी के जीवन के आधार बिन्दु बन गये और दूरदर्शी पिता के वाक्यों को भली भॉति सार्थक करके वे अपनी जन्मदात्री माता मोहिनी की और आर्यिका पद में आर्यिका रत्नमती माताजी की वैय्यावृत्ति का पुण्य लाभ प्राप्त कर सकी''। (आर्यिका चंदनामती जी के संस्मरण प्रज्ञा पुंज 2013)

पिता छोटेलाल जी का स्वर्गवास

---

[55] पं. शिवचरन लाल जैन, प्रज्ञा पुज्ज, पृष्ठ संख्या 350–351

25 दिसम्बर 1969 को श्री छोटेलाल जी का णमोकार मंत्र का श्रवण करते –करते समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास हो गया।

माधुरी को संसार की असारता का भान

छोटी सी आयु में पिता जी की मृत्यु देखकर माधुरी के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा वे यह समझने का प्रयास कर रही थी कि पिताजी यही हैं परन्तु वहाँ उपस्थित जन कह रहे हैं कि पिताजी की मृत्यु हो चुकी हैं अब वे कभी वापस नहीं आयेगें। पिताजी की अन्तिम क्रिया होने के पश्चात् उनके मन में अनेक प्रश्न उत्पन्न होने लगे। एक दिन उचित समय देखकर माधुरी ने मन में उत्पन्न प्रश्नों को माता मोहिनी के समक्ष रखा। ''तब माता ने उन्हें समझाया कि इस संसार में कुछ भी शाश्वत नही हैं, जिसका जन्म होता हैं उसकी मृत्यु निश्चित हैं''[56]। (आर्यिका चंदनामती, 2016) परिवर्तन प्रकृति का नियम हैं, संसारी प्राणी को कभी भी इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोग हो सकता हैं। प्राणी जैसे कर्म करता हैं वैसे ही फल प्राप्त करता है। इस संसार से मुक्ति का एकमात्र उपाय हैं जैनेश्वरी दीक्षा। माता द्वारा दिये गये उपदेश ने माधुरी को संसार की असारता का ज्ञान कराया। कुछ समय पश्चात् मोहिनी देवी ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। माता की दीक्षा लेने के विषय में सुनते ही माधुरी के हृदय में वैराग्य रूपी बीजों का सिंचन प्रारम्भ हो गया।

माधुरी द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना

11 वर्ष की आयु में लिया गया 2 वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण हो जाने पर 13 वर्ष की आयु में गणिनी ज्ञानमती माताजी के आशीर्वाद से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर उस दिवस को जैन धर्म के लिये ऐतिहासिक बना दिया। वहाँ उपस्थित जनसाधारण भगवान महावीर की मौसी सती चंदनबाला की छवि माधुरी में देखने लगे।

ब्रह्मचर्य व्रत का महत्व

---

[56] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों के संस्करण के आधार पर

जैन धर्म में जहाँ एक ओर साधकों के लिये पंच महाव्रत अंगीकार करके आत्म कल्याण का मार्ग हैं तो श्रावकों के बारह व्रतों का पालन श्रावकाचार का आधार माना गया हैं।

बारह व्रत

पंच अणुव्रत

1 –अहिंसा

2 –सत्य

3 –अचौर्य

4 –ब्रह्मचर्य

5 –परिग्रह परिमाण व्रत

तीन गुणव्रत

1 –दिग्व्रत

2 –देशव्रत

3 –अनर्थदण्ड़ व्रत

चार शिक्षा व्रत

1 –सामायिक

2 –प्रोषधोपवास

3 – भोगोपभोग परिमाण व्रत

4 –अतिथि संविभाग व्रत

इस प्रकार जैन श्रावक श्राविकायें इन बारह व्रतों का पालन करके श्रावकाचार की साधना करते हैं। पंच महाव्रत में हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रह, अब्रह्म इन पंच पापों का पूर्ण रूपेण त्याग होता हैं परन्तु अणुव्रत मेंपाँच पापों का अणु अर्थात् एकदेश त्याग होता हैं। गृहस्थ अवस्था में ब्रह्मचर्य अणुव्रती श्रावक स्वपत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों को माता, भगिनी की दृष्टि से देखते हैं तथा श्राविकायें स्वपति के अतिरिक्त अन्य पुरूषों को भाई मानती हैं। माधुरी ने बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य व्रत लेकर गृहस्थ जीवन का त्याग कर दिया उन्होंने मन ही मन दृढ– निश्चय कर लिया कि वे सम्पूर्ण सांसारिक भोगों का त्याग करके आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिये पुरूषार्थ करेगीं।

इसी उद्‌देश्य को पूर्ण करने के लिये माधुरी स्वाध्याय करते हुए संयम पालन करने लगी। उन्होंने 1969 से 1999 तक 20 वर्ष ब्रह्मचारिणी अवस्था में आर्यिका ज्ञानमती माताजी व उनके संघ की सेवा की। गुरूमुख से चारों अनुयोगों के ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था को बलवती करते हुए वैराग्य के भावों को पुष्ट किया।

1971 में उनकी जननी माता मोहिनी देवी ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। वृद्धावस्था में शारीरिक प्रतिकूलताएं सामने आयी ऐसे में माधुरी ने पूर्ण निष्ठा के साथ मॉ की सेवा की व उनके नियम पालन में सदा सहायक बनी। समाधि समय सम्बोधन, सेवा व वैय्यावृत्ति करके माधुरी ने अपने कर्त्तव्य पालन, सेवाभाव, वात्सल्य का अद्‌भूत परिचय दिया।

माता मोहिनी की दीक्षा एवं समाधि

माता मोहिनीदेवी सदैव जैन श्राविका के रूप में अपने सभी कर्तव्यों का निर्वाह करती थी। उन्होंने अपने आगम ज्ञान के आधार पर पति की मृत्यु पर रूदन नही किया साथ ही बच्चों को भी रोने नही दिया, सभी को धैर्यपूर्वक महामंत्र का पाठ बोलने के लिये प्रेरित किया। ''पति की समाधि के पश्चात् पति वियोग दुख को आगामी सांसारिक दुख का कारण न बनाकर शीध्र ही पूज्य ज्ञानमती माता जी के पास जाकर (सन् 1970 में) आचार्य धर्मसागर जी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कर लिए। एक साध्वी की भांति गृहस्थ में कुछ समय व्यतीत कर अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने के पश्चात् 1971 में ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से अजमेर,

(राजिस्थान) में आचार्य धर्मसागर के करकमलों से आर्यिका दीक्षा धारण कर ली और आर्यिका रत्नमती जी के नाम से निस्पृह साधिका बन गयी। उनकी 13 वर्षीय धर्म साधना अत्यन्त उच्चकोटि की थी। स्वप्रशंसा से सदैव दूर रहना उनके चरित्र का उत्तम गुण था। 15 जनवरी 1985 माघ कृष्ण नवमी के दिन जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर में आर्यिका ज्ञानमती माताजी के सानिध्य में समाधिमरण को प्राप्त कर के अपने जीवन के चरम लक्ष्य को सिद्ध कर लिया''[57]। (पं. शिवचरन लाल जैन, 2013) उनकी वैय्यावृत्ति करने का अवसर माधुरी को सदैव प्राप्त हुआ, यह माधुरी के जीवन का विशेष सौभाग्य था। माता मोहिनी देवी आर्यिका अवस्था में माधुरी को शिक्षा देती थी कि ''तुम सदैव ज्ञानमती माता जी की छाया बनकर रहना, उनकी सेवा करना और विषम परिस्थितियों में भी उनका साथ नहीं छोडना, किसी के विपरीत समझाने पर भी दिग्भ्रमित मत होना। आार्यिका रत्नमती माताजी द्वारा प्रदान किया गया सम्बोधन माधुरी के जीवन का आधार बन गया।..माँ की वृद्धावस्था में भी कठिन तपस्या व उत्कृष्ट समाधि ने माधुरी को आत्मबल प्रदान किया और उन्होंने दृढ.संकल्प लेकर आर्यिका पद के महाव्रतों को धारण करने के लिये आर्यिका ज्ञानमती माता जी से दीक्षा प्रदान करने के लिए निवेदन किया।

माधुरी की आर्यिका दीक्षा

व्रतों का कठोरता से पालन करने व कराने में देश भर में प्रसिद्ध गणिनी ज्ञानमती माता जी ने अपनी शिष्या को जॉचा परखा तथा सभी दृष्टियों से योग्य पाये जाने पर श्रावण शुक्ला ग्यारस तदानुसार ''13 अगस्त 1989 को पावन तीर्थ हस्तिनापुर''[58] (कु. बीना जैन, 2016) में आर्यिका पद के महाव्रत प्रदान किये। इस प्रकार 20 वर्षों की साधना के पश्चात् गणिनी ज्ञानमती माता जी सदृश कुशल शिल्पी के मार्गदर्शन में माधुरी शास्त्री जगत पूज्य आर्यिका चंदनामती माता जी बन गयी।

आर्यिका पद की साधना

[57] पं. शिवचरन लाल जैन, प्रज्ञा पुज्ज, पृष्ठ संख्या 351

[58] आर्यिका चंदनामती, मांगी तुंगी, भजन संग्रह, पृष्ठ संख्या 9

आर्यिका चंदनामती को अपनी चेतना पर कोई कृत्रिम बन्धन सह्य नहीं था। वे आर्यिका जीवन के दायित्व निर्देशों का पालन करते हुये संयमित जीवन की ओर अग्रसर थी। वे जैन साधिका के उत्कृष्ट पद पर आरूढ हो गयी थी। मोह, माया छोडकर उन्होंने सांसारिक जीवन से स्वयं को दूर कर लिया। उनका मानना था कि जब यह आरम्भिक उपलब्धि ही अक्षय अपरिमित आनन्द का स्त्रोत बनी तो मुक्ति का आनन्द अनुपम होगा। गृह त्याग के बाद से ही उनके मन में चरम सत्य प्राप्त करने का स्वप्न छाया रहा। वे आर्यिका पद के नियमों का दृढ़ता से पालन करने लगी।

नवीन आर्यिका चंदनामती जी के दो ही मुख्य कार्य थे स्वाध्याय और साधना, स्वाध्याय अभीक्ष्ण और साधना कठोरतम। वे एक एक पग सोच समझकर रखती थी और ज्ञान को चारित्र की जीवंतता प्रदान कर रही थी। यह मर्म वे समझ चुकी थी कि जितना भी ज्ञान प्राप्त किया जाये उसे निष्पक्ष व अनासक्त रूप से ग्रहण किया जाये और इस प्रकार अपनी आध्यात्मिक निष्ठा और उत्साह को समृद्ध किया जाये। कोई भी विषय हो वे जब तक उसे स्याद्वाद तथा अनेकान्त की कसौटी पर नहीं कस लेती थी, नय निक्षेप के द्वारा उसका अन्वेषण नहीं कर लेती थी तब तक उसे स्वीकार नहीं करती थी। स्वाध्याय एवं साधना के पथ पर चलते चलते वे स्पष्टवादी, वात्सल्यमयी एवं ज्ञानी बन गयी। तन, मन तथा जगत का कोई रहस्य उनसे छिपा नहीं रहेगा ऐसा उनका दृढ. संकल्प था। चिन्तन का कोई विषय उनसे अछूता नही रहेगा ऐसी उनकी अवधारणा थी।

आर्यिका पद के नियम

दिगम्बर जैन धर्म में साधक व श्रावक दो पद हैं। इनमें साधक अवस्था मे पुरूष मुनि पद के अधिकारी होते हैं तथा स्त्रियॉ आर्यिका पद पर आरूढ. होती हैं। मोक्षमार्ग प्रकाशक में पण्डित टोडरमल जी ने साधु स्वरूप इस प्रकार लिखा हैं ''जो विरागी होकर समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग मुनि धर्म अंगीकार करते हैं वे जैन मुनि होते हैं। जबकि जैन आर्यिका महाव्रती होते हुए भी पंचम गुणस्थानवर्ती एक देश संयम का ही पालन कर सकती हैं। दो साडी

मात्र परिग्रह रखने की अधिकारी हैं। समस्त श्रंगार, आभूषणों का परित्याग करके श्वेत वस्त्र में आंतरिक विषय कषायों का क्षय करते हुये अपनी स्त्री पर्याय के छेदन का पुरूषार्थ करती हैं। वे पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह का त्याग कर, पंच महाव्रत अंगीकार करके अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाती हैं। मन, वचन, काय की शुद्धि करके अहिंसा के महान् सिद्धांतों को जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करती हैं।

वर्तमान में आर्यिका पद के समस्त गुणों का पालन करते हुए समस्त परिषहों को समता भाव से सहते हुए आर्यिका चंदनामती माताजी ने आर्यिका पद की गरिमा को ऊँचाइयों के शिखर पर पहुॅचाया। उनकी धर्म प्रभावना, लेखनकला, काव्य रचना एवं कुशल नेतृत्व को दृष्टिगत रखकर आर्यिका ज्ञानमती जी ने आर्यिका श्री को संघ के मार्गदर्शन का भार सौंप दिया। आर्यिका श्री ज्ञानमती जी स्वयं बढ़ती आयु एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रतिकूलता के चलते अधिकांश समय स्वाध्याय व ध्यान में व्यतीत करने लगी। संघ में पठनपाठन व संघ संचालन का कार्य आर्यिका श्री चंदनामती जी के कुशल मार्ग दर्शन में हो रहा हैं।

कुशल नेतृत्व

आर्यिका ज्ञानमती माताजी का ससंघ विहार हस्तिनापुर से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र के लिये 15 मार्च 2015 को प्रारम्भ हुआ। 1500 किलोमीटर की पदयात्रा गणिनी ज्ञानमती जी का प्रतिकूल स्वास्थ्य ऐसी विषम परिस्थिति में संघ के विहार के नेतृत्व का कार्य आर्यिका चंदनामती जी ने किया। आर्यिका स्वर्णमती जी (संघस्थ) का स्वास्थ्य पद विहार के लिये अनुकूल न होते हुये भी आर्यिका चंदनामती जी ने वात्सल्य से उन्हें पद विहार के लिये अपूर्व प्रेरणा दी। वे पदविहार करते हुये सकुशल मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पहुँच गयी।

व्यक्तित्व पर प्रभाव

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालक के व्यक्तित्व का निर्माण उसके वंशानुक्रम व आस पास के वातावरण पर निर्भर करता हैं। प्रत्येक बालक अपने आस पास घटित होने वाली घटनाओं एवं

जिन व्यक्तियों के वे सम्पर्क में आते हैं उनके आचरण व व्यवहार से बहुत कुछ ग्रहण कर लेते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे व्यक्तित्व के स्वामी होते हैं उनका प्रभाव अमिट एवं गहरा होता हैं कि प्रभावित व्यक्ति की जीवनधारा ही परिवर्तित हो जाती हैं इसी प्रकार बालिका माधुरी ने बाल्याकाल से ही अपनी जन्मदात्री माँ मोहिनी देवी से सदैव ही धर्म के संस्कार ग्रहण किये। माता सदैव ही नन्हीं माधुरी को उनकी ज्येष्ठ भगिनी आर्यिका ज्ञानमती की धर्म साधना एवं त्याग के विषय बताती रहती थी वे प्रेरक प्रसंग एवं ज्ञान की चर्चा कब माधुरी को वैराग्य की ओर ले गये किसी को पता नही चला। उच्चकोटि की स्मरण शक्ति से युक्त नन्हीं बालिका जैन आम्नाय के ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने लगी यद्यपि बाल वय में वे ग्रन्थों की गाथाओं के अर्थ नही समझ पाती थी परन्तु गाथाओं के निरन्तर उच्चारण एवं स्मरण करने से एक अनूठी छाप बाल मस्तिष्क पर पडने लगी। ग्यारह वर्ष की आयु में बालक बालिकायें प्रायः ब्रह्मचर्य के अर्थ से भी परिचित नहीं होते उस अवस्था में आर्यिका ज्ञानमती ने दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कर नियम संयम की डोर से बाँध दिया। 13 वर्ष की आयु में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करके विवाह, गृहस्थ जीवन को तिलॉजलि दे दी।

आर्यिका ज्ञानमती के व्यक्तित्व का प्रभाव

आर्यिका ज्ञानमती जी इस युग की प्रथम बालसती जिन्होंने सदैव वैराग्य को ही जीवन का परमावश्यक उद्‌देश्य माना। टिकैतनगर जहाँ लड़कियों को अकेले घर से बाहर निकलने की भी स्वतन्त्रता नहीं थी, ऐसे में उन्होंने अपने अदम्य साहस व वैराग्य की प्रबल भावना के आधार पर गृह त्याग कर दिया। मात्र 18 वर्ष की आयु में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करके बाल–ब्रह्मचारिणी बन गयी। परिवारजन के सहयोग न होने पर भी दृढ़संकल्प के साथ सभी नियमों का पालन किया। सन् 1956 आर्यिका दीक्षा लेकर उनके कदम अनवरत साधना के शिखर की ओर बढते रहे। उन्होंने स्वाध्याय एवं अपने गुरूओं से प्राप्त ज्ञान द्वारा साहित्य के विकास के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। माधुरी बाल्यावस्था से ही आर्यिका ज्ञानमती जी की शौर्य गाथा सुनती रही थी, जिसके कारण वे सदैव उनके समीप रहने की इच्छुक रहती थी और जब उन्हें

आर्यिका श्री के समीप्य प्राप्त हुआ तो वे अत्याधिक प्रभावित हुई और उन्हें गुरू मानकर उन्हीं के द्वारा निर्देशित पथ का अनुसरण करने लगी।

माता मोहिनी देवी एवं उनके संस्कारों का प्रभाव

माता मोहिनी देवी एक धर्मपरायण, पतिव्रता एवं उच्च आदर्श से पूर्ण व्यक्तित्व की धनी थी विवाह के समय उनके पिताजी ने उन्हें पद्मनन्दिपंच्चविंशतिका ग्रन्थ भेट स्वरूप प्रदान किया था। विवाह के पश्चात् मोहिनी देवी निरन्तर ग्रन्थ का स्वाध्याय करती रही। गृहस्थ जीवन का निष्ठा से पालन करते हुये वे देवदर्शन, गुरूउपासना, स्वाध्याय, संयम, तप व दान रूपी श्रावक के छह आवश्यकों का पालन करती थी। एक पुरातन किवदंती के अनुसार गर्भावस्था में माता के विचारों एवं आचरण का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पडता हैं। उसी प्रकार माता मोहिनी देवी के आचरण की छाप उनके बालकों में भी दिखाई पडती थी। उनकी प्रथम संतान मैना ने मात्र 18 वर्ष की आयु में गृहत्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की थी। उनकी पांचवी संतान मनोवती ने भी ज्येष्ठ भगिनी के पथ का अनुसरण कर आत्म कल्याण का मार्ग अपनाया था। मोहिनी देवी सदैव शुद्ध भोजन बनाती थी व अपने बालकों को भोजन की शुद्धि के विषय में समझाती रहती थी। उनके अनुसार हमें भोजन के लिये नहीं जीना चाहिये, अपितु जीने के लिये भोजन करना चाहिये। वे मध्यस्थ भाव वाली व आन्तरिक वैराग्य से पूर्ण थी। नन्हीं माधुरी माता द्वारा दी जाने वाली सभी शिक्षाओं को ध्यान पूर्वक समझती एवं आचरण में लाने का हर सम्भव प्रयास करती। धीरे धीरे माता द्वारा प्रदत्त छोटी छोटी ज्ञान की धाराएँ उत्कृष्ट रूप लेने लगी परिणामस्वरूप वे एक महान् आर्यिका के रूप में विद्यमान हैं।

आचार्य कुन्द कुन्द एवं उनके साहित्य का प्रभाव

ब्रह्मचारिणी अवस्था में माधुरी ने आर्यिका ज्ञानमती जी से आचार्य कुन्द कुन्द द्वारा रचित समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय आदि महान् ग्रन्थों का अध्ययन किया था। आर्यिका श्री ने आचार्य कुन्द–कुन्द के जीवन चारित्र के विषय में अपनी शिष्याओं को बताया कि मालवदेश के वारापुर नगर में राजा कुमुदचंद्र राज्य करते थे। उनके राज्य में कुन्दश्रेष्ठी नामक एक वणिक

रहता था। उसकी पत्नी का नाम कुन्दलता था। उनके एक पुत्र था जिसका नाम कुन्द–कुन्द था। एक दिन अपने सखाओं के संग खेलते हुए उद्यान में कुन्द–कुन्द ने जिनचंद्र नामक मुनिराज के दर्शन किये। मुनिराज ने वहाँ उपस्थित जन को धर्म का उपदेश दिया। 11 वर्ष का बाल कुन्द–कुन्द उनके उपदेश से अत्याधिक प्रभावित हुआ उससे तभी दीक्षा ले ली। प्रतिभाशाली कुन्द–कुन्द को जिनचंद्राचार्य ने 33 वर्ष की अवस्था में ही आचार्य पद प्रदान कर दिया। अत्यंत गहराई से चिन्तन करने पर भी कोई ज्ञेय आचार्य कुन्द–कुन्द को स्पष्ट नहीं हो रहा था। उसी के चिन्तन में मग्न कुन्द–कुन्दाचार्य ने विदेह में विद्यमान तीर्थंकर सीमंधर भगवान को नमस्कार किया। वहाँ सीमंधर भगवान के मुख से सहज ही 'सद्धर्मवद्धिरस्तु' प्रस्फुटित हुआ। नमस्कार करने वाले के अभाव में किसको आर्शीवाद दिया? यह प्रश्न सबके हृदय में सहज ही उपस्थित हो गया था। भगवान की वाणी में समाधान आया कि भरत क्षेत्र के आचार्य कुन्द–कुन्द को यह आर्शीवाद दिया गया हैं। वहाँ कुन्द–कुन्द के पूर्वभव के दो मित्र चारण ऋद्धिधारी मुनि राज उपस्थित थे। वे कुन्द–कुन्दाचार्य को विदेह क्षेत्र ले गये। वे सात दिन वहाँ रहे भगवान के दर्शन और दिव्यध्वनि–श्रवण से उनकी समस्त शंकाओं का समाधान हो गया। आचार्य कुन्द–कुन्द के विषय में सुनकर ब्रह्मचारिणी माधुरी को जैन साधुओं की साधना पर अत्यन्त गर्व हुआ। उनके मन में कुन्द–कुन्दाचार्य की महान् छवि उभरने लगी वे उनके द्वारा बताये गये आत्मिक धर्म को अंगीकार करने का पुरूषार्थ करने लगी।

कुन्द–कुन्दाचार्य रचित समयसार की गाथा 75 के अनुसार – ''जो आत्मा क्रोधादि भाव कर्मों, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों एवं शरीरादि नोकर्मों का कर्ता नहीं होता, उन्हें मात्र जानता हैं, वही वास्तविक ज्ञानी हैं''[59]। (आचार्य कुन्द–कुन्द, 1969) उक्त गाथा को पढकर माधुरी आत्म–ज्ञान की राह पर चल पड़ी।

साहित्य सृजन

[59] आचार्य कुन्द–कुन्द, समयसार, गाथा 75

जैन साहित्य के विकास में आर्यिका चंदनामती जी की कलम ने अभूतपूर्व योगदान दिया। गद्य, पद्य व काव्य सभी क्षेत्रों में उनकी लेखनी ने नवीनता प्रदान कर साहित्य क्षेत्र में बहु–आयामी प्रतिभा का परिचय दिया। उनकी प्रत्येक रचना पाठकों पर विशेष प्रभाव छोड़ती हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने ब्रह्ममचारिणी अवस्था से लेकर आर्यिका अवस्था के 30 वर्षों में लगभग 200 ग्रन्थों की रचना की जो वर्तमान में प्रकाशित हैं। जिनमें प्राचीन जैन ग्रन्थों की टीका, नाटक साहित्य, भजन साहित्य, पद्य एवं पूजा साहित्य प्रमुख हैं।

साहित्य की समीक्षा

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित साहित्य विषय वस्तु, भाषा एवं शैली के आधार पर समीक्षा शोधकर्त्री प्रस्तुत कर रही हैं।

काव्यात्मक स्तोत्र साहित्य की समीक्षा

वर्तमान में कर्मों से निवृत्ति का उपाय देव, शास्त्र, गुरू की भक्ति हैं। जैन धर्म के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिये दो ही मार्ग हैं 1. भक्ति मार्ग 2. निवृत्ति मार्ग। आचार्य कुन्द–कुन्द जैसे महान् आध्यात्मिक संत ने भी भक्ति मार्ग को अपने जीवन में स्थान देकर पुनः निवृत्तिमार्ग को प्रशस्त किया हैं। आचार्य पूज्यपाद जी ने भगवान की भक्ति करते हुये लिखा हैं–

एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिःदुर्गतिं निवारयितुं।

पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः। (आचार्य पूज्यपाद जी)

अर्थात् जिनेन्द्र भक्ति अकेली समस्त दुर्गतियों का निवारण करने वाली हैं। पुण्य की प्रदात्री हैं व मुक्ति देने वाली हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने भी जिनेन्द्र भक्ति को आधार मानकर अनेक पूजन, भजन, आरती, चालीसा, विधान आदि की रचना की।

आर्यिका चंदनामती द्वारा रचित भजन संग्रह

आर्यिका चंदनामती जी ने लगभग 1000 भजनों की रचना की हैं जिन पर आधारित 8 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं–

1. भजन संग्रह (ब्रह्मचारिणी माधुरी शास्त्री)

2. जंबूद्वीप भजन संग्रह (ब्रह्मचारिणी माधुरी शास्त्री)

3. जिन भजन कुसुमांजलि

4. जंबूद्वीप भजन संग्रह भाग–2

5. जंबूद्वीप भजन संग्रह भाग–3

6. महावीर भजन प्रसून

7. कुंडलपुर भजन संग्रह

8. भजन संग्रह (लगभग 350 भजन)

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित भजन संग्रह का अवलोकन करने से ज्ञात होता हैं कि उनकी यह कृति भक्ति रस, वात्सल्य रस, वीर रस तथा माधुर्य व ओज से परिपूर्ण भजनों का संग्रह हैं।

सिद्ध क्षेत्र मांगीतुंगी से सम्बन्धित भजन

मुनि राम, हनुमान, सुग्रीव आदि 99 करोड़ महामुनियों की निर्वाण स्थल सिद्ध क्षेत्र मांगातुंगी में आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से 108 फीट ऊँची निर्माण कराया गया वह प्रतिमा विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा होने के गौरव को प्राप्त हैं। जब प्रतिमा जी का निर्माण कार्य चल रहा था तब आर्यिका चंदनामती जी द्वारा एक भजन की रचना की गयी। ''सबसे बड़ी मूर्ति का, मांगीतुंगी तीर्थ का, दुनिया में नाम हो रहा हैं, मूर्ति का निर्माण हो रहा हैं'' उक्त भजन जन–साधारण में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

जंबूद्वीप से सम्बंधित भजन

हस्तिनापुर भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि हैं। इस पवित्र धरा पर आर्यिका ज्ञानमती की प्रेरणा से जम्बूद्वीप की रचना की गयी थी। प्राकृतिक सौंदर्य से पूर्ण जंबूद्वीप दर्शनीय स्थल होने के साथ–साथ पर्यटन स्थल भी हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने इस अद्वितीय रचना से सम्बन्धित 75 भजनों की श्रृंखला बनायी हैं। उनके ये भजनों मे प्रभु भक्ति व अध्यात्म के अनोखे उदाहरण हैं। भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ व हस्तिनापुर की पौराणिकता के इतिहास का दिग्दर्शन करनेवाले भजन उनकी लेखनी के माध्यम से प्रकाशित हुए।

समवसरण व पंचकल्याणक से सम्बन्धित भजन

सन् 2014 में समवसरण श्रीविहार रथ प्रवर्तन के समय समवसरण की महिमा प्रदर्शित करने वाले व पंचकल्याणक की महिमा बताने वाले अर्थपूर्ण भजनों की रचना आर्यिका चंदनामती जी की लेखनी से हुई।

गणिनी ज्ञानमती जी से सम्बन्धित भजन

आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी कवित्व प्रतिभा द्वारा अपनी गुरू की भक्ति में उनके जन्मदिन, दीक्षा दिवस एवं अन्य विशेष अवसरों पर समयोचित, शब्द सौष्ठव से परिपूर्ण भजनों की रचना की ये भजन आर्यिका ज्ञानमती जी के ज्ञान, तीर्थोद्धार, इस युग की प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी होने के कथानक से सम्बन्धित हैं। उनका एक भजन शरद पूनों का ये चॉद हैं......। हृदय को आल्हादित करने वाला हैं।

9. तत्वार्थ सूत्र एवं दशधर्म भजन

दशलक्षण पर्व के दश धर्मों पर आधरित भजन प्रत्येक धर्म के महत्व को उजागर करने वाले हैं दशलक्षण पर्व को बगीचे की उपमा देते हुए आर्यिका चंदनामती जी लिखती हैं–

''दशलक्षण का ये बगीचा, कितना सुन्दर लगता हैं।

भादों शुक्ला पंचमी से, चौदस तक यह सजता हैं।। (आर्यिका चंदनामती जी, 2011)

तत्त्वार्थ सूत्र (मोक्षशास्त्र) के 10 अध्यायों पर पद्यमय रचना करके उन्होंने संक्षेप में सम्पूर्ण विषय–वस्तु को प्रस्तुत किया हैं। उनकी ये रचना लघु रूप में सारभूत हैं।

10. प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज का काव्य कथानक

बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी के महान् व्यक्तित्व से सभी परिचित हैं उनके पुरूषार्थ से ही इस बीसवी सदी में मुनि परम्परा जीवंत हैं। वर्ष 2010–11 को आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष'' के रूप में मनाया गया। तब आर्यिका चंदनामती जी ने आचार्य श्री के जीवन के महत्वपूर्ण अंशों को काव्य रूप में लिखा और पुस्तकीय रूप प्रदान किया। जिसमें 8 खण्ड़ों में उनके जन्म से लेकर समाधिमरण, अंतिम उपदेश तक का इतिहास समाहित हैं। उक्त पुस्तक के प्रारंभ में आर्यिका श्री लिखती हैं सुनो हम कथा सुनाते हैं–2, प्रथमाचार्य शांति सागर की गाथा गाते हैं।।

आर्यिका चंदनामती द्वारा रचित विधान

11. श्री षट्खण्ड़ागम विधान

षट्खण्ड़ागम ग्रन्थ जैन धर्म का सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। छह खण्डों में विभक्त यह श्रुत, ज्ञान का भण्ड़ार हैं। आर्यिका ज्ञानमती जी ने छह खण्ड़ों के 78 मंत्रों की रचना करके 'षट्खण्ड़ागम व्रत' बनाया। इन मंत्रों के आधार पर आर्यिका चंदनामती जी ने षट्खण्ड़ागम विधान की रचना की। प्रायः प्रत्येक विधान का एक निर्धारित मण्ड़ल होता हैं जिस पर विधान के अर्घ्य चढ़ाये जाते हैं। प्रस्तुत विधान में मंत्रों की संख्या 78 हैं। पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर सचित्र मण्ड़ल अंकित हैं। सात विलययुक्त मण्ड़ल मे प्रथम वलय में 9, द्वितीय वलय में 13, तृतीय वलय में 15, चतुर्थ वलय में 17, पंचम वलय में 22, षट्म वलय में 01, सप्तम वलय में 01 अर्घ्य चढ़ाने के लिये चिन्ह बनाये गये हैं। मंगलाचरण के आठ पद हैं, जिसकी रचना शेर छन्द में की गयी हैं।

मंगलाचरण में श्री धरसेनाचार्य एवं उनके शिष्य पुष्पदंत–भूतबली को श्रुत पारगामी के रूप में नमन किया हैं।

विधान की जयमाला 18 पद्य छन्द हैं। जिनमें भगवान महावीर से लेकर चल रही श्रुत परम्परा का व्याख्यान हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में 48 पृष्ठ हैं। ग्रन्थ का प्रकाशन 2009 में हुआ था।

12. कल्याण मन्दिर विधान

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित ''कल्याण मन्दिर विधान सरल हिन्दी भाषा में हैं। सम्पूर्ण विधि विधान की रूपरेखा इस कृति में हैं। विधान का मण्ड़ल सोलहवें पृष्ठ पर हैं। ग्रन्थ का मंगलाचरण प्रथम व द्वितीय पृष्ठ अंकित हैं। मंगलाचरण में अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठियों, चौबीस तीर्थंकरों एवं ऋद्धि सिद्धि प्रदाता 1008 पार्श्वनाथ भगवान की वन्दना की हैं। प्रस्तुत विधान की रचना पार्श्वनाथ स्त्रोत के आधार पर की गयी हैं। विधान में अधिकांश काव्यों की रचना शंभू–छन्द में की गई हैं। विधान के प्रथम वलय में 8 अर्घ्य हैं, द्वितीय वलय में 16 अर्घ्य है। सम्पूर्ण रचना 28 पृष्ठों में उपलब्ध हैं।

13. श्री रत्नात्रय विधान

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आत्मा के सर्वोत्कृष्ट गुण हैं इसलिये उनको रत्नात्रय कहा गया हैं। तीर्थंकरों ,आचार्यों ने जन्म–मरण की श्रृंखला से छूटने को उपाय जो भी बताया हैं उसका मुख्य आधार रत्नात्रय हैं।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित 'श्री रत्नात्रय विधान' में रत्नात्रय की महिमा आगम के परिप्रेक्ष्य से विधान रूप में सरस व सरल गेय पदों में प्रस्तुत की गयी हैं। उनकी यह कृति जिनशासन प्रभावना का अनुपम व अविस्मरणीय उदाहरण हैं। आर्यिका श्री के शब्दों में

''सम्यक् रत्नत्रय आराधन, शाश्वत सौख्य प्रदाता है''।। (आर्यिका चंदनामती जी)

आर्यिकाश्री के द्वारा 93 पद्यात्मक अर्ध्य से पूर्ण इस विधान की रचना मात्र 11 दिन में सम्पन्न की गयी।

14. मनोकामना सिद्धि विधान

''मनोकामना सिद्धि विधान'' जिनेन्द्र भक्ति की अनुपम कृति हैं। भगवान महावीर के 2600 वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आर्यिका ज्ञानमती जी ने छब्बीस सौ मंत्रों से समन्वित ''विश्वशांति महावीर विधान'' की रचना की। आर्यिका चंदनामती जी ने इसी विधान से 108 मंत्रों को लेकर 'मनोकामना सिद्धि विधान' का लेखन किया। उन्होंने विधान के मंगलाचरण में इसका उल्लेख किया हैं। विधान के प्रथम वलय में सोलह कारण भावनाओं के 16 अर्घ्य हैं, द्वितीय वलय में तीर्थंकर माता के सोलह स्वप्नों के 16 अर्घ्य हैं, तृतीय वलय की पूजा में आर्यिका श्री ने तीर्थंकर भगवान के 34 अतिशयों का शंभू छन्द में वर्णन किया हैं, चतुर्थ वलय में अष्ट प्रतिहार्यों का दोहा छन्द में 8 अर्ध्य हैं, पंचम वलय की पूजा में अनन्त चतुष्टय गुणों से विभूषित भगवान महावीर का वर्णन किया हैं इसमें 4 अर्ध्य हैं, षष्टम वलय में चार घातिया कर्म नष्ट होने पर, अरिहंत अवस्था प्रकट होने पर 18 दोष स्वतः नष्ट हो जाते हैं उन 18 दोषों से मुक्ति के 18 अर्घ्यों को समाहित किया हैं, सप्तम वलय में भगवान महावीर के विशिष्ट गुणों का वर्णन किया हैं 12 अर्घ्यों में से प्रथम चार में भगवान महावीर केपाँच नामों का वर्णन हैं शेष आठ में विशेष गुणों की आराधना की हैं, 7 पूर्णार्ध्य हैं। अन्त में जयमाला में भगवान महावीर के जन्म से निर्वाण के वर्णन के साथ भविष्यकालीन तीर्थंकरों के विषय में भी बताया हैं।

15. नवग्रह शान्ति विधान

भारतीय संस्कृति में ग्रहों का विशेष महत्व हैं। आकाश मण्ड़ल में ग्रहों की संख्या नौ हैं। ऐसा प्रचलित हैं कि ये ग्रह जीव को कुंडंली के अनुसार शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं। ज्योतिष विद्या इसी पर आधरित हैं। जैन संस्कृति में भी प्राचीन काल से ग्रहों की शांति हेतु नवग्रह स्त्रोत पढ़ने एवं जाप्य–अनुष्ठान करने की परम्परा रही हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने नवग्रह शांति के लिये विधान की रचना की। जिनेन्द्र भक्ति में बहुत शक्ति होती हैं, श्रद्धा से उनकी भक्ति करने

से जीव के पाप पुण्य रूप परिवर्तित हो जाते हैं। इस विधान में आर्यिका श्री ने अलग–अलग ग्रहों को शांत करने के लिये अलग–अलग तीर्थंकरों की पूजा की बनायी हैं। इस विधान की समुच्चय पूजा में नौ तीर्थंकरों की अर्चना की हैं। सम्पूर्ण विधान में कुल 10 पूजा, 9 अर्ध्य, 10 जयमाला हैं, अन्त में समुच्चय जयमाला हैं।

16. सप्तऋषि विधान

संसार में प्रत्येक प्रत्येक प्राणी तीन प्रकार के प्रकार के कष्टों से दुखी रहता हैं–1.शारीरिक, 2. मानसिक, 3.आगन्तुक। इन तीनों प्रकार के कष्टों के आगमन पर जीव विचलित हो कष्टों को दूर करने का उपाय खोजने का प्रयास करता हैं। कई बार उपाय खोजते–खोजते जीव मिथ्यात्व से ग्रसित हो जाता हैं, ऐसे में उचित मार्गदर्शन परमावश्यक हैं। जैन धर्म कर्म सिद्धान्त पर आधारित हैं, प्रत्येक जीव उसके द्वारा किये गये कर्म के अनुरूप ही फल प्राप्त करता हैं जैन साधक सदैव सच्चे देव, शास्त्र, गुरू की भक्ति का ही उपदेश देते हैं जिससे असाता कर्म भी साता में परिवर्तित हो जाते हैं। पद्मपुराण में घटना वर्णित हैं–''जब श्री रामचंद्र जी के सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न मथुरा के राज्य पर विजय प्राप्त कर शासन करने जाते हैं तब राजा मधुसुन्दर के दिव्यशूलरत्न के अधिष्ठाता देव के कुपित हो जाने पर मथुरा में महामारी फैल गयी। मथुरा की सम्पूर्ण जनता दुखी हो गयी उस समय सप्तऋषि महामुनियों के वहाँ आने से उनके शरीर की स्पर्शित वायु से महामारी दूर हो गयी तभी से जिनमन्दिरों में सप्तऋषि महामुनियों की प्रतिमा विराजमान कर भक्ति आराधना की जाती हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने उन सप्तऋषि मुनियों की सप्तऋषि विधान की रचना की। इस विधान में एक समुच्चय पूजा एवं सात अलग–अलग पूजाएॅ हैं जिनमें क्रम से एक–एक ऋद्धिधारी मुनिराज की वंदना की गयी हैं अतः इसमें कुल आठ पूजा, सात अर्ध्य एवं दो पूर्णार्घ्य हैं अन्त में भावपूर्ण जयमाला हैं।

17. दशलक्षण विधान

जैन धर्म में दशलक्षण पर्व का अत्याधिक महत्व हैं। यह अनादि पर्व चैत्र, भाद्रपद, माघ महीने में शुक्ल पक्ष की पंचमी से चतुर्दशी तक वर्ष में तीन बार आता हैं, इसे पर्यूषण पर्व भी कहा जाता

हैं। प्रत्येक प्राणी इन दस दिनों में त्याग–तपस्या पूजा–अनुष्ठान आदि करके अपने कर्मों की निर्जरा करते हैं। यह त्याग और तपस्या का पर्व हैं। इस पर्व में आत्मकल्याण की जो शिक्षा प्राप्त होती हैं उसे यदि निष्ठापूर्वक जीवन में उतारा जाये तो मानव का हृदय परिवर्तन व सम्यकदर्शन अवश्य हो सकता हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने मात्र 15 दिनों में इस विधान की रचना की, इसमें दश धर्मों का विस्तार सहित वर्णन हैं। इस कल्याणकारी विधान में कुल 11 पूजाएँ हैं जिसमें सर्वप्रथम समुच्चय पूजन हैं, द्वितीय पूजा उत्तम क्षमा धर्म की पूजा हैं, जिसमें 15 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, तृतीय पूजा उत्तम मादर्व धर्म की पूजा हैं, जिसमें 12 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य चतुर्थ पूजा उत्तम आर्जव धर्म की पूजा हैं, जिसमें 16 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, पंचम पूजा उत्तम सत्य धर्म की पूजा हैं, जिसमें 15 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, षष्ट्म पूजा उत्तम शौच धर्म की पूजा हैं, जिसमें 16 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, सप्तम पूजा उत्तम संयम धर्म की पूजा हैं, जिसमें 21 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, अष्टम् पूजा उत्तम तप धर्म की पूजा हैं, जिसमें में 23 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, नवम् पूजा उत्तम त्याग धर्म की पूजा हैं, जिसमें 10 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य, दशम् पूजा उत्तम अकिंचन धर्म की पूजा हैं, जिसमें 15 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य और एकादशम् पूजा उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म की पूजा हैं, जिसमें में 22 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विधान में कुल 165 अर्घ्य और 10 पूर्णार्घ्य हैं और अन्त में सारभूत जयमाला हैं। इन दश धर्मों की आराधना से प्रत्येक आत्मा भगवान आत्मा बन सकती हैं।

18. तीर्थंकर जन्मभूमि विधान

जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं वे तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण ये पाँच कल्याणक होते हैं। वास्तव में न तो कोई स्थल पूज्य होता हैं और न तो कोई भूमि पूज्य होती हैं किन्तु जिस स्थल पर तीर्थंकर भगवंतो के पंचकल्याण हुये हो वह क्षेत्र पूज्नीय हो जाता हैं, उस स्थल का कण–कण पवित्र हो जाता हैं। शास्त्रानुसार तीर्थंकरों की शाश्वत जन्मभूमि अयोध्या और शाश्वत निर्वाण भूमि सम्मेदशिखर जी गई हैं। वर्तमान में हुण्डावसर्पिणी कालदोषवश मात्र 5 तीर्थंकरों का ही अयोध्या में जन्म हुआ व शेष तीर्थंकरों का

जन्म अलग–अलग स्थानों पर हुआ। इसी प्रकार 20 तीर्थंकर सम्मेदशिखर जी से मोक्ष गये व 4 तीर्थंकर अलग–अलग स्थानों से मोक्ष गये, इसका प्रमाण उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, महापुराण आदि में मिलता हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने तीर्थंकरों के जन्म से पवित्र हुई उन भूमियों के गुणानुवाद के लिये तीर्थंकर जन्मभूमि विधान की रचना की। इस विधान में 24 तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियों की 16 पूजायें हैं और 1 समुच्चय पूजा हैं, कुल 17 पूजाओं के 113 अर्घ्य हैं साथ ही तीर्थंकरों की पंचकल्याणक भूमियों के सजीव चित्रण हैं। यह कृति जैन धर्म की अमूल्य धरोहर हैं। इस विधान को करने से भव्यजीवों को तीर्थों व तीर्थंकरों के प्रति अपूर्व श्रद्धा होती हैं।

19. सोलहकारण पूजा विधान

सोलहकारण पूजा विधान आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित अनुपम कृति हैं। 136 पृष्ठों के इस विधान में आर्यिका श्री ने आगम का सार, गागर में सागर के समान भर दिया हैं। जैनागम में सोलहकारण भावनाओं का विशिष्ट महत्व हैं। इनका उल्लेख श्री तत्त्वार्थसूत्र–मोक्षशास्त्र में विशेष रूप से हैं। सोलहकारण भावनाओं को केवलीए श्रुतकेवली भगवान के पादमूल में चिन्तन–मनन करने से तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का आस्त्रव, बन्ध होता हैं। इन महान् भावनाओं का चिन्तवन करने वाला जीव आगामी भवों में तीर्थंकर बनता हैं। सोलह कारण पर्व अनादि निधन हैं यह वर्ष में तीन बार आता हैं। इन सोलहकारण भावनाओं को आधार मानकर आर्यिका चंदनामती जी ने 17 पूजाएँ बनाई हैं प्रथम समुच्चय पूजा एवं 16 पूजाएँ सोलहकारण भावनाओं की हैं। इस कृति की भाषा अत्यन्त सरस, सरल हैं एवं यह भक्ति से भक्ति रस से ओत–प्रोत काव्य हैं। इस रचना में आर्यिका श्री ने दोहा, सोरठा, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग किया हैं।

20. आचार्य श्री धर्मसागर जी विधान

आचार्य शान्तिसागर जी की परम्परा के तृतीय पट्टाचार्य आचार्य धर्मसागर जी महाराज के जीवन से जन साधारण को परिचित कराने के लिये आर्यिका चंदनामती जी ने ''आचार्य धर्मसागर विधान'' की रचना की। यह कृति उनकी अगाध गुरूभक्ति का ही प्रतिफलन हैं। आर्यिका श्री ने

इस कृति की रचना ''आचार्य धर्मसागर जन्म शताब्दी वर्ष'' के अवसर पर सन् 2012में की थी। प्रस्तुत विधान में आचार्य परमेष्ठी के 36 मूलगुणों के 36 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य एवं शेर छंद में सुन्दर जयमाला हैं। जिसके माध्यम से भक्तजन गुरूभक्ति के द्वारा संसार सागर से तिरने का अवलम्बन प्राप्त कर सकते हैं।

21. एकीभाव स्त्रोत विधान

एकीभाव स्त्रोत के रचियता, श्री वादिराज सूरि जी ने जिन धर्म की प्रभावना के लिये भगवान की भक्ति में एकीभाव स्त्रोत की रचना करके अपने शरीर को स्वर्णमय बना लिया था। आर्यिका श्री चंदनामती जी ने ''एकीभाव स्त्रोत विधान'' की रचना की, विधान के प्रारम्भ में आर्यिका श्री ने लिखा हैं–

''तीर्थंकर प्रभु की भक्ति सदा ही, सच्चे सुख को देती हैं।

वह दुर्गति का वारण करके, भव–भव के दुख हर लेती हैं।।

श्री वादिराज मुनि ने प्रभु भक्ति से, तन का कष्ट मिटाया था।

निज काया को कर स्वस्थ स्वर्णमय, धर्मरूप दरशाया था''।। (आर्यिका चंदनामती जी)

इस एकीभाव स्त्रोत विधान में 1 पूजा, 25 अर्घ्य, 1 पूर्णार्घ्य एवं 1 जयमाला हैं। इस विधान की जयमाला में आर्यिका श्री ने एकीभाव स्त्रोत रचना का कथानक लिखा है जिसे पढ़कर भक्ति का आनन्द लेते हुए इस स्त्रोत की रचना कैसे और किस निमित्त से हुई? इसका सहज ही ज्ञान हो जाता हैं।

22. पंचकल्याणक तीर्थक्षेत्र विधान

'तीर्थंकरोति इति तीर्थंकरः' जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते वे ''तीर्थंकर'' कहलाते हैं। उन तीर्थंकर भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष ये पॉच कल्याणक होते हैं। तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य किसी महापुरूषों के पंचकल्याणक नही होते हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने

तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों से पवित्र भूमियों अर्थात् तीर्थ क्षेत्रों की महिमा का विश्लेषण करते हुये 'पंचकल्याणक तीर्थक्षेत्र विधान' की रचना की। प्रस्तुत विधान में 26 पूजा हैं, 165 अर्घ्य हैं, 18 पूर्णार्घ्य हैं और समुच्चय जयमाला हैं। इस विधान में अयोध्या, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, चंद्रपुरी, काकन्दी, भद्रिकापुर, सिंहपुर, चम्पापुरी, कम्पिलपुरी, रत्नपुरी, हस्तिनापुर, मिथिलापुरी, राजग्रही, शौरीपुर, कुण्डलपुर, प्रयाग, अहिक्षेत्र, जृम्भिक, कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनारजी, पावापुरी एवं निर्वाणक्षेत्र आदि की पूजन हैं सम्पूर्ण विधान शब्द सौष्ठव एवं लालित्य से परिपूर्ण हैं।

23. श्री भक्तामर मण्डल विधान

आर्यिका चंदनामती जी ने आचार्य मानतुंग द्वारा रचित भक्तामर स्त्रोत की महिमा एवं स्त्रोत के 48 पद्यों की विशेषताओं को आधार मानकर जनकल्याण के उद्देश्य से इस विधान की रचना की।

24. समयसार विधान

आचार्य कुन्द–कुन्द द्वारा रचित समयसार ग्रन्थ अध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। इस ग्रन्थ के अनुसार निश्चय नय से शरीर व आत्मा भिन्न–भिन्न हैं परन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से दोनो के परस्पर संयोग से ही संसारी जीव संसार में उत्पन्न होता हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने समयसार ग्रन्थ व ग्रन्थ के रचनाकार आचार्य कुन्द–कुन्द की पूजा हेतू विधान की रचना की। इस कृति के माध्यम से आर्यिका श्री ने जैन सिद्धान्त का सरल भाषा में विवेचन किया हैं।

25. गणिनी ज्ञानमती महापूजा

प्रस्तुत विधान में आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी गुरू गणिनी ज्ञानमती के प्रति भक्ति एवं सम्मान में इस महापूजा की रचना की।

26. वास्तुविधान

वर्तमान में वास्तुविधान का प्रचलन बढ़ता जा रहा हैं। जैनागम में भी वास्तु का विशेष महत्व हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने वास्तुदोष को दूर करने के उद्देश्य वास्तु विधान की रचना की।

27. मुम्बई तीर्थक्षेत्र विधान

आर्यिका ज्ञानमती जी ससंघ का सन् 2017 में मुम्बई में चातुर्मास स्थापित हुआ।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित चालीसा एवं आरती संग्रह

28. आरती संग्रह

आर्यिका चंदनामती जी ने ''आरती संग्रह'' नामक पुस्तक में प्रभु की भक्ति के लिये आरतियों की रचना की। उनकी इस रचना में चौबीस तीर्थंकरों की आरती, तीर्थंकरों की जन्म भूमियों, निर्वाण भूमियों एवं अन्य अन्य कल्याणक भूमियों की आरती संग्रहित हैं। जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक, सुदर्शन मेरू, समवसरण, ह्रीं प्रतिमा आदि अन्य विशेष आरतियॉ भी हैं। इन्द्रध्वज ,कल्पद्रुम, सर्वतोभद्रविधान, शांतिविधान, भक्तामर आदि विधानों की भी आरतियॉ हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 132 पृष्ठ हैं। यह पद्यमय रचना अत्यंत सरस हैं।

29. चालीसा संग्रह एवं रविव्रत

प्रस्तुत पुस्तक में आर्यिका चंदनामती जी ने विभिन्न चालीसा एवं स्त्रोतों का समावेश किया हैं।

1. णमोकार चालीसा

णमोकार मंत्र जैनधर्म का मूलमंत्र तथा अनादि निधन मंत्र हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने 40 लाइनों के चालीसा में गागर में सागर की तरह महामंत्र की महिमा को समाहित किया हैं।

2. आचार्य शान्तिसागर, वीरसागर चालीसा

आचार्य शान्तिसागर, वीरसागर जैसे महान् गुरूओं के चालीसा के पठन से चारित्र की अभिवृद्धि होकर तप करने की शक्ति प्राप्त होती हैं।

3. **नवग्रह शांति चालीसा**

नवग्रहों की शांति के लिये 9 तीर्थंकरों की आराधना की गई हैं।

4. वैराग्य अष्टक

वैराग्य को वृद्धिगत करने व वैराग्य को दृढ़ रखने के उद्देश्य से वैराग्य की रचना की गयी हैं।

5. नवोदित भावना

मन की चंचलता एवं पंचन्द्रिय विषयों में आसक्ति में सुख मानने वाले जीवों के लिये आध्यात्मिक सम्बोधन प्रस्तुत किया गया हैं।

6. समवसरण विंशतिका

भगवान के समवशरण के वैभव तथा समवसरण की आठ भूमियों का वर्णन, समवसरण के दर्शन का महत्व तथा समवसरण के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की गयी हैं।

सम्पूर्ण पुस्तक में विभिन्न चालीसा एवं विनती का सृजन का उद्देश्य पढ़ने वाले के जीवन में सुख, शांति व धर्मवृद्धि हो।

30. भगवान महावीर चालीसा

इस लघु रचना में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं जीवनोपयोगी रचनायें समाहित हैं।

ऊषा वंदना

दिन को मंगलीक बनाने के लिये प्रातःकाल ऊषा वंदना के स्तवन को करने से सम्पूर्ण तीर्थों की वंदना हो जाती हैं। ऊषा वंदना की रचना आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा सन् 1966 में की गई, उसी के कुछ पद्य इसमें प्रकाशित किये गये हैं अतः यह लघु ऊषा वंदना हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि तीर्थ वंदना

तीर्थ वंदना में तीर्थंकरों की जन्मभूमियों का वर्णन हैं। जिनमें प्रयाग तीर्थ वंदना, जंबूद्वीप तीर्थ वंदना, अहिच्छत्र तीर्थ वंदना, कुण्डलपुर तीर्थवंदना, पावापुरी सिद्धक्षेत्र वंदना हैं। इन वंदना पाठ से घर में होते हुये भी सम्पूर्ण जिनालयों की वंदना करने का पुण्य प्राप्त होता हैं।

सम्मेद शिखर टोंक वंदना

शाश्वत तीर्थ सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखरजी टोंक वंदना की रचना आर्यिका चंदनामती जी ने सन् 2003 में पर्वतराज की 7 वंदना करने के पश्चात् की थी। आर्यिका श्री ने इस वंदना के माध्यम से सम्मेद शिखर जी की टोंकों का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन किया हैं जिसे पढने से ऐसा प्रतीत होता हैं जैसे साक्षात् टोंक के दर्शन कर लिये हैं अर्थात् सम्पूर्ण दृश्य दृष्टिगोचर हो गया हो।

सीता की अग्नि परीक्षा

33 पद्यों के काव्य में आर्यिका चंदनामती जी ने जैन रामायण के मार्मिक कथानक का वर्णन किया हैं। लोकोपवाद के भय से राम ने गर्भवती सीता को वन में भेजा। बाद में अपने सतीत्व की सत्यता सिद्ध करने के लिये अग्नि परीक्षा देनी पड़ी और शील के प्रभाव से अग्नि कुण्ड़ जल का सरोवर बन गया। तत्पश्चात् सीता जी ने आर्यिका दीक्षा लेकर अपना नारी जीवन सकल किया। इस प्रकार इस लघु काव्य में नारी की सहनशीलता को दर्शाते हुये सतयुग में भी नारी पर अत्याचार होते थे। अंत में आर्यिका श्री ने निष्कर्ष निकलता हैं कि नारी और पुरूष दोनों को ही सृष्टि व्यवस्था में सहभागी हैं।

इस प्रकार उक्त पुस्तक में अनेक विषयों का समावेश किया गया हैं जोकि धार्मिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी हैं।

31. गणिनी ज्ञानमती बारहमासा

प्रायः जैन ग्रन्थों में मुनिराज का बारहमासा, राजुल का बारहमासा व अन्य बारहमासा पाठ पढ़ने को मिलते हैं। वर्तमान में इनका प्रचलन कम हो गया हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने सन् 1993 में गणिनी श्री ज्ञानमती बारहमासा की रचना की जिसमें हिन्दी 12 महीनों ''चै़त्र से लेकर

काल्गुन'' को गणिनी जी के जीवन में समाहित करके उनकी सम्पूर्ण जीवन चर्या को दर्शाया हैं। निर्ग्रन्थ गुरूओं की कठिन तपश्चर्या का वर्णन करने वाला यह पाठ सभी को जीवन में संयम, ज्ञान, चारित्र की अभिवृद्धि करने की प्रेरणा देता हैं।

32. विश्वशांति चालीसा

सन् 2008 में भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति प्रतिभादेवी सिंह पाटिल का ''विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन'' के अवसर पर जंबूद्वीप हस्तिनापुर में आगमन हुआ। उसी वर्ष आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित ''विश्व शांति चालीसा'' पाठ को लघु पुस्तिका में प्रकाशित किया गया। प्रस्तुत पुस्तक में एक प्रेरणास्पद लघु कथानक ''आज के मानव में कलियुग का रूप दिखाई देता हैं''–काव्य रूपक के द्वारा आर्यिका श्री ने कलियुग व सतयुग के मानवों के भावों को सुन्दर रूप में उदाहरण देकर प्रस्तुत किया हैं।

33. मातृ भक्ति

आर्यिका चंदनामती जी ने सर्वप्रथम ब्रह्मचारिणी अवस्था में सन् 1980 में ''मातृभक्ति'' नामक पुस्तक लिखी। जिसमें आर्यिका ज्ञानमती जी की पूजन, भजन आदि तथा अपनी जन्मदात्री माँ आर्यिका रत्नमती जी का परिचय अपनी लेखनी से निबद्ध किया। ''मातृभक्ति'' पुस्तिका में 51 काव्य हैं।

34. सुमेरू वंदना

तीनों लोकों में सबसे पूज्य व सबसे ऊँचे सुमेरू पर्वत ''सुदर्शन मेरू'' की आर्यिका ज्ञानमती जी के द्वारा लेखनीबद्ध हुई व अन्य भक्त विद्वानों ने भी सुमेरू वंदना का लेखन कार्य किया आर्यिका चंदनामती जी ने ब्रह्मचारिणी अवस्था में इनका संकलन किया। जिसका प्रथम संस्करण सन् 1984 में प्रकाशित हुआ।

35. कुन्दकुन्द मणिमाला का पद्यानुवाद

आचार्य कुन्दकुन्द जैन परम्परा के मूर्धन्य आचार्य हुए हैं। भगवान महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् उन्हीं का नाम स्मरण किया जाता हैं एवं सभी मुनिराज स्वयं को कुन्दकुन्द आम्नायी कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं यथा–

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।

मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोस्तु मंगलम्।।

कुन्दकुन्द आचार्य ने अनेक ग्रन्थों की रचना करके जिनागम के भण्ड़ार को समृद्ध किया हैं। कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा रचित ज्ञान से परिपूर्ण साहित्य को समझने के प्रखर बुद्धि व पर्याप्त समय की आवश्यकता पड़ती हैं परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य के पास प्रखर बुद्धि व समय दोनों की कमी हैं। ऐसे में आर्यिका ज्ञानमती जी कुन्दकुन्द देव द्वारा रचित 108 गाथाओं को चुनकर 'कुन्दकुन्द मणिमाला' की रचना की। उनका यह संकलन प्राकृत में होने के कारण सामान्य जन को उसका अर्थ समझ पाने में कठिनता का अनुभव हुआ तब आर्यिका चंदनामती जी ने 'कुन्दकुन्द मणिमाला' का हिन्दी पद्यानुवाद करके सामान्य जन को सरल भाषा शैली में उपलब्ध कराया। इस रचना भाव पक्ष व कला पक्ष दोनों ही समृद्ध व लोकोपयोगी हैं। आर्यिका श्री की यह कृति सरल, सुबोध होते हुये भी वह परिष्कृत एवं काव्यात्मक भी हैं। मोक्षपाहुड़ की मूल गाथा

''सुहेण भाविदं णाणं, दुहे जादे विणस्सदि।

तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुक्खेहिं भावए''।।

अर्थ – सुख में भाक्ति किया गया तत्वज्ञान दुख के आने पर नष्ट हो जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी केने पद्यानुवाद के माध्यम से इस प्रकार वर्णित किया हैं–

सुखिया जीवन में किया गया, जो तत्वज्ञान सुख देता हैं।

वह ही सुख थोड़ा दुःख आने पर, ज्ञान नष्ट कर देता हैं।।

इसलिये यथाशक्ति दुःखों में, आत्मा का चिन्तवन करें।

जिससे कि परिषह आने पर भी, वे समाधि में रमण करें।।(आर्यिका चंदनामती, 2004)

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी ने सरल शब्दों में प्राकृत की गाथाओं को वर्णित किया हैं। कुन्दकुन्द मणिमाला का हिन्दी पद्यानुवाद उनकी एक उत्कृष्ट कृति हैं।

इनके अतिरिक्त आर्यिका चंदनामती जी ने अनेक पूजाओं, स्त्रोत एवं वंदना की भी रचना की।

36. कुण्डलपुर तीर्थ परिचय एवं पूजा

प्रस्तुत पुस्तक भगवान महावीर की जन्मभूमि की पावनता के वर्णन पर आधारित हैं।

37. राजगृही तीर्थ परिचय एवं पूजन

इस पुस्तक में आर्यिका चंदनामती जी ने बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत भगवान की गर्भ, जन्म, तप व केवलज्ञान चार कल्याणक भूमि राजगृही का वर्णन किया हैं तथा उस पावन भूमि की पूजा भी लिखी हैं।

38. श्री अष्टापद कैलाश गिरि परिचय एवं पूजा

श्री अष्टापद प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव की निर्वाण भूमि हैं। प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से आर्यिका चंदनामती जी ने निर्वाण भूमि का परिचय देते हुये भाव सहित वंदन करते हुये पूजन किया हैं।

39. वाराणसी तीर्थ परिचय एवं पूजा

वाराणसी उत्तर भारत का स्थल हैं, जिसे बनारस भी कहा जाता हैं। उसका जैन धर्म में विशेष महत्व हैं, आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी पुस्तक के माध्यम से वाराणसी तीर्थ का परिचय देते हुये लिखा हैं कि सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ जी के गर्भ, जन्म, तप व केवलज्ञान चार

कल्याणक यही पर हुए थे व तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जी की गर्भ, जन्म व तप तीन कल्याणक भूमि भी हैं तथा उस पावन भूमि की पूजा भी की हैं।

40. काकन्दी तीर्थ परिचय एवं पूजा

काकन्दी तीर्थ तीर्थंकर भगवान पुष्पदंतनाथ जी की गर्भ, जन्म, तप व केवलज्ञान चार कल्याणक भूमि हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी पुस्तक के माध्यम से उस तीर्थ के महत्व का वर्णन करते हुये तीर्थ की पूजा की हैं।

41. ज्ञानतीर्थ (शिर्डी) तीर्थ परिचय एवं पूजा

शिर्डी महाराष्ट्र प्रान्त में स्थित हैं आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से वहाँ ज्ञान तीर्थ के नाम से एक सुन्दर रचना करायी गयी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में तीर्थ परिचय देते हुए आर्यिका चंदनामती जी तीर्थ पूजा भी लिखी हैं।

42. आर्यिका रत्नमती परिचय एवं पूजा

प्रस्तुत पुस्तक मे आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका रत्नमती जी का जीवन परिचय लिपिबद्ध किया हैं। आर्यिका रत्नमती जी का गृहस्थ अवस्था का नाम मोहिनी देवी था। उनकी तेरह संतान हुई जिनमें से तीन पुत्रियों ने आर्यिका पद धारण किया। मैना वर्तमान की आर्यिका ज्ञानमती जी उनकी ज्येष्ठ पुत्री हैं व आर्यिका चंदनामती जी की जननी भी वे ही थी। उन्होंने स्वयं भी आर्यिका पद के महाव्रत ग्रहण कर धर्म साधना करते हुए समाधि मरण किया। उनकी धर्म भावना को नमन करते हुये आर्यिका पद पर स्थित आर्यिका रत्नमती जी की पूजा भी इस पुस्तक में हैं।

43. प्रयाग तीर्थ पूजा

प्रयाग में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के तप व केवलज्ञान दो कल्याणक हुए थे। आर्यिका चंदनामती जी ने इस पुस्तक में प्रयाग तीर्थ की पूजा लिखकर तीर्थ से जन साधारण को परिचित कराया हैं।

44. पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा

पावापुर सिद्धक्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के केवलज्ञान व निर्वाण दो कल्याणक हुए प्रस्तुत पुस्तक में पावापुर तीर्थ की पूजा लिखी गयी हैं।

45. गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी की पूजन एवं भजन

इस पुस्तक में आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी दीक्षा गुरू आर्यिका ज्ञानमती जी की पूजा लिखी हैं व उनके जीवन–चरित्र से संबंधित भजन भी लिखे हैं।

46. ज्ञानमती पुष्पांजलि

इस पुस्तक में जैन धर्म से संबंधित पूजायें एवं विनती हैं।

47. सचित्र ज्ञानांजलि

विभिन्न स्तुतियॉ चित्रो के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हैं।

48. भगवान ऋषभदेव पूजन एवं चालीसा

इस पुस्तक में भगवान ऋषभदेव की विभिन्न पूजाऍ एवं चालीसा हैं।

49. श्री जिनार्चना

यह पुस्तक जिनेन्द्र भगवान की अर्चना का संग्रह हैं।

50. समवसरण पूजन व चालीसा

कैवल्य प्राप्त होने पर अरहंत परमेष्ठी की समवसरण मे दिव्यध्वनि खिरती हैं। जिससे भव्य जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता हैं। इस पुस्तक में आर्यिका चंदनामती जी ने समवसरण की पूजा व चालीसा लिपिबद्ध किया हैं।

51. आचार्य शांतिसागर पूजन

आचार्य शांतिसागर जी बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य थे। जिन्होंने जीवन पर्यंत जैनधर्म की साधना की। उपसर्ग परिषहों को सहते हुये भी महाव्रतो का निरतिचार पालन किया। आर्यिका चंदनामती ने इस पुस्तक में महान् आचार्य की पूजा लिखी हैं।

52. तीनमूर्ति पूजा

आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में तीनमूर्ति मन्दिर का निर्माण कराया गया। हस्तिनापुर शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ भगवान की चार–चार कल्याणक भूमि हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने इस लघु कृति के माध्यम से तीन मूर्ति रूप शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ भगवान की पूजा लेखन का कार्य किया हैं।

53. समयसार गाथा पद्यानुवाद

आचार्य कुन्द–कुन्द देव द्वारा रचित समयसार ग्रन्थ जैन साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने समयसार की सम्पूर्ण गाथाओं का पद्य में अनुवाद किया हैं।

54. ह्रीं बीजाक्षर पूजा

ह्रीं बीजाक्षर में चौबीस तीर्थंकर समाहित हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने ह्रीं बीजाक्षर की पूजा लिखकर जैन साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया हैं।

55. मांगीतुंगी तीर्थ परिचय एवं पूजा

प्रस्तुत पुस्तक में आर्यिका चंदनामती जी ने मांगीतुंगी तीर्थ का परिचय देते हुये लिखा हैं कि मांगीतुंगी गिरि से राम, हनुमान आदि 99 करोड़ मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया हैं।

56. वर्तमान पट्टाचार्य श्री अभिनन्दनसागर पूजा एवं परिचय

आचार्य अभिनन्दनसागर जी आचार्य शांतिसागर जी की मूल परम्परा के छठे पट्टाचार्य हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी इस पुस्तक के माध्यम से उनका परिचय प्रस्तुत किया हैं साथ ही सरल शब्दों मे उनकी पूजा की रचना भी की हैं।

57. चम्पापुर तीर्थ परिचय एवं पूजा

इस कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य की पंचकल्याणक भूमि चम्पापुर तीर्थ क्षेत्र का परिचय एवं तीर्थ क्षेत्र की पूजा प्रस्तुत की हैं।

58. समयसार कलश पद्यानुवाद

इस पुस्तिका में आर्यिका चंदनामती जी ने समयसार की टीका समयसार कलश का पद्य रूप में अनुवाद किया हैं।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित नाटक साहित्य

आर्यिका चंदनामती जी ने जैन आगम से संबंधित विषयों पर नाटकों की रचना की जिनके माध्यम से जैनागम के गूढ़तम विषयों को सरलता से दर्शाया गया हैं।

59. तीर्थंकर श्री ऋषभदेव चरितम् की हिन्दी टीका

आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका ज्ञानमती द्वारा रचित ''श्री ऋषभदेव चरितम् का हिन्दी अनुवाद किया। मंगलाचरण के श्लोकों का अर्थ करते हुये आर्यिका श्री ने लिखा हैं कि सर्व सिद्ध परमेष्ठियों को, समस्त त्रैकालिक जिनेन्द्रों को तथा भगवान आदिनाथ के चरित को हृदय में धारण करके मेरे द्वारा श्री ऋषभदेव तीर्थंकर के कुछ गुणों का वर्णन किया जा रहा हैं।

मंगलाचरण के पश्चात् आर्यिका ज्ञानमती जी ने एकाक्षर से लेकर आठ अक्षरी छंदों के द्वारा स्वरचित संस्कृत श्लोकों के द्वारा भगवान ऋषभदेव की स्तुति की हैं उसी प्रकार आर्यिका चंदनामती जी ने श्लोकों का हिन्दी अर्थ करते हुए तत्संबंधित कथाओं को उदाहरण के रूप में

प्रस्तुत किया हैं। ऋषभ देव के माता के गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही कुबेर ने रत्नवृष्टि प्रारंभ कर दी और पंद्रह माह तक प्रतिदिन निरन्तर रत्नवृष्टि होती रहती हैं। उसी समय के विषय का वर्णन करते हुये कुष्ट रोग से ग्रसित श्री वादिराज मुनिराज ने भगवान ऋषभदेव की स्तुति की। स्तुति के प्रभाव से उनके शरीर से कुष्ट रोग समाप्त हो गया तथा शरीर पूर्ण स्वस्थ, कंचन के समान दैदीप्यमान हो गया। इस प्रकार आर्यिका श्री ने यहाँ एक पौराणिक इतिहास से परिचित करा दिया। उन्होंने हिन्दी टीका का नाम ''ब्राह्मी'' टीका रखा हैं। द्वितीय अधिकार में ललितांग देव के ऐश्वर्य आदि का वर्णन किया हैं। तृतीय अधिकार में राजा वज्रजंध के इतिहास को वर्णित किया हैं। चतुर्थ अधिकार में भोगभूमि के सुखों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया हैं। पंचम् अधिकार में श्रीमती के जीव के स्त्रीपर्याय के छेदन व 'स्वयंप्रभ देव' की पर्याय प्राप्ति का वर्णन हैं। षष्टम् अधिकार में श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाओं तथा बारह व्रतों आदि का वर्णन हैं। सप्तम् अधिकार में अच्युत स्वर्ग का वर्णन हैं। अच्युत नाम की व्याख्या करते हुए आर्यिका श्री ने लिखा हैं कि जो च्युत होकर पुनः जन्म धारण नहीं करता, वही वास्तव में अच्युत हैं। अष्टम् अधिकार में चक्रवर्ती के वैभव का वर्णन हैं, इसी भव में राजा वज्रनाभि ने वैराग्यभावपूर्वक दीक्षा धारण कर वज्रसेन तीर्थंकर के निकट सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन करते हुये तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था। नवम् अधिकार में सर्वार्थसिद्धि विमान के अहमिन्द्र देवों के अनुपम सुख–ऐश्वर्य का वर्णन किया गया हैं। दशम् अधिकार में आर्यिका श्री ने दस अन्तराधिकार के माध्यम से भगवान ऋषभदेव की पर्याय के सम्पूर्ण जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया हैं इसके प्रथम अन्तराधिकार में गर्भकल्याणक का वर्णन हैं। अतिंम एकादशम् अधिकार में वर्तमान शासन नायक भगवान महावीर स्वामी के सम्पूर्ण जीवनवृत्त को दर्शाते हुए अनादिनिधन जैनधर्म की महिमा का प्रतिपादन किया हैं।

इस ब्राह्मी टीका समापन आर्यिका श्री ने भगवान ऋषभदेव के केवलज्ञान कल्याणक दिवस, फाल्गुन शुक्ल एकादशी, 7 मार्च, 2013 को भगवान ऋषभदेव की प्रथम पारणा भूमि हस्तिनापुर के जम्बूद्वीप स्थल पर निर्मित रत्नत्रय निलय वसतिका में जिनचैत्यालय के सम्मुख बैठकर किया हैं। आर्यिका चंदनामती जी के समस्त संस्कृत साहित्य की प्रमुख विशेषता यह हैं कि अत्यन्त

सरलभाषा का प्रयोग होने के कारण इन रचनाओं की आसानी से समझा जा सकता हैं। अज्ञानरूपी मलिनता को प्रक्षालित करने का प्रयास कर रहा हैं।

60. ऋषभदेव दशावतार नाटक

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित ''ऋषभदेव दशावतार नाटक'' भगवान ऋषभदेव के दश भवों पर आधारित हैं। नाटक का कथानक पौराणिक है और ये नाटक जैन पौराणिक चारित्रों की परिपाटी का निर्वाह करते हुये भगवान ऋषभदेव के चरित्र के विभिन्न पहलुओं एवं तत्कालीन, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं पर प्रकाश ड़ालता हैं। नाटक का कथानक पौराणिक एवं गम्भीर होते हुए भी सरल, सुबोध एवं भाषा शैली के प्रयोग से रोचक हो गया। नाटक का शब्द सौष्ठव अद्‌भुत हैं, उसके मध्य में नृत्य, भजन आदि के दृश्य उसे सरसता और सुन्दरता प्रदान करते हैं।

61. ऋषभदेव नृत्य नाटिका

आर्यिका चंदनामती जी ने भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव वर्ष के अर्न्तगत ऋषभदेव नृत्य नाटक की रचना की। इस कृति में भगवान ऋषभदेव के चरित्र का अत्यंत रोचक वर्णन हैं। सर्वप्रथम मंगलाचरण रूप सामूहिक प्रार्थना के बाद सूत्राधार के माध्यम दृश्य व पात्रों का परिचय कराया गया हैं तत्पश्चात् भोगभूमि में युगलिया जन्म, भगवान ऋषभदेव के पंचकल्याणक , भोगभूमि के अंत व कर्म भूमि के प्रारंभ में प्रजा को व्याकुल देख भगवान ऋषभदेव द्वारा आजीविका हेतु षट्‌क्रियाओं का उपदेश दिये जाने का सजीव चित्रण हैं । नाटक में अनेक अंलकार एवं रसों का उत्तम समन्वय हैं।

62. महासती चंदना नाटिका

महासती चंदना भगवान महावीर की मौसी थी। कर्मोदय के कारण उनके शीलव्रत को भंग करने का कई बार प्रयास किया गया परन्तु उनके सतीत्व के प्रभाव से वे प्रयास निष्फल हुए। नाटक

में आर्यिका चंदनामती जी ने करूण रस का प्रयोग किया हैं। नाटक की भाषा परिष्कृत, सरल एवं भावपूर्ण हैं।

63. माता त्रिशला के अनोखे सपने

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के गर्भ में आने से पूर्व राजा चेटक की पुत्री एवं महाराज सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला ने 16 अद्भुत स्वप्न देखे। जिसके प्रतिफल में राजा सिद्धार्थ ने बताया कि वे शीघ्र ही तीर्थंकर पुत्र को जन्म देंगी और नव माह पश्चात् रानी त्रिशला ने तीर्थंकर पुत्र को जन्म दिया जिससे वह तिथि जैन धर्म का एक ऐतिहासिक महोत्सव बन गयी। प्रस्तुत नाटिका में तीर्थंकर पद की उत्कृष्टता का विवेचन किया गया हैं। तीर्थंकर पद मानवीय क्षमता का दिग्दर्शक हैं, जो परिपूर्णता, पवित्रता, अहिंसात्मकता और कारूणिकता का संदेशवाहक हैं। नाटक के बाल महावीर की क्रीड़ा आदि का मोहक चित्रण हैं।

64. धन्य हुआ विपुलाचल पर्वत

भगवान महावीर को बिहार प्रान्त के जृम्भिक ग्राम में ऋजुकूला नदी के तट पर वैशाख शुक्ला दशमी को 12 वर्ष की तपस्या के बाद दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। किन्तु गणधर शिष्य के अभाव में महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि नहीं खिरी, भगवान विहार करते हुए राजगृही नगरी के विपुलाचल पर्वत पर पधारे वहीं इन्द्र युक्तिपूर्वक ब्राह्मणपुर नगर के इन्द्रभूति गौतम को लेकर आये। जहाँ मानस्तंभ देखते ही उनका मान गलित हो गया और सम्यक्दर्शन प्राप्त कर उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की वे भगवान के प्रथम गणधर कहलाए और 66 दिन पश्चात् उस पर्वत पर भगवान की दिव्यध्वनि खिरने से विपुलाचल पर्वत धन्य हो गया। इसी कथानक को आर्यिका चंदनामती जी सुरूचिपूर्ण भाषा शैली में लिखा हैं।

65. सच्चा वैराग्य बना इतिहास

आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी गुरू गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी की आर्यिका दीक्षा की स्वर्ण जयंती के अवसर पर इस नाटिका की रचना की। यह नाटक शब्द वैशिष्ठय की दृष्टि से

अद्‌भुत हैं इसकी शैली रोचक व प्रेरणास्पद हैं। आर्यिका ज्ञानमती जी बचपन से ही अध्यात्मिक प्रवृत्ति की थी। सदैव से ही धर्म व ज्ञान उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य रहा। वैराग्य, संयम, त्याग, जिनेन्द्र भक्ति और स्वाध्याय उनकी दिनचर्या में निहित हैं। उनके सम्पूर्ण जीवन की झलकियाँ आर्यिका चंदनामती जी ने इस नाटिका में प्रस्तुत किये हैं। नाटक को पढ़ने से ही उनके जीवन की घटनायें दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

66. जैन शासन ध्वज परम्परा

प्रस्तुत कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने जैन धर्म में ध्वज फहराने की परम्परा के विषय में लिखा हैं। जैन आम्नाय में किसी मांगलिक कार्य जैसे विधान, पंचकल्याणक को प्रारम्भ करने से पूर्व ध्वज फहाराया जाता उसके कारण, महत्व आदि का विवेचन इस पुस्तक में हैं।

67. जम्बूस्वामी चारित

इस कृति के माध्यम से अंतिम केवली जम्बूस्वामी के चरित का वर्णन किया गया हैं। जम्बूस्वामी स्वामी प्रारम्भ से सांसारिक भोग विलासमय जीवन से विरक्त थे उनके माता पिता ने सांसारिक जीवन के प्रति उनकी रूचि उत्पन्न कराने के उद्देश्य से चार रूपवान कन्याओं के साथ उनका विवाह करा दिया । विवाह की प्रथम रात्रि को जब उन्हें उन कन्याओं के समक्ष भेजा गया तभी एक चोर उनके महल में चोरी करने के उद्देश्य से घुसा। उधर उन रूपवान कन्याओं के समीप पहुँचकर भी वैरागी जम्बूस्वामी को तनिक भी राग उत्पन्न नही हुआ वे उन कन्याओं को भी संसार की असारता का उपदेश देने लगे जिससे वे भी विरक्त हो गयी। वह चोर भी उनके उपदेश से प्रभावित हुआ व संसार की असारता का ज्ञान प्राप्त कर अपने कृत्यों का प्रायश्चित करने लगा। सभी ने जम्बूस्वामी के साथ दीक्षा धारण की । उत्कृष्ट तप से जम्बूस्वामी को कैवल्य की प्राप्ति हुई और वे कालचक्र में अंतिम केवली बने। आर्यिका चंदनामती जी ने इस नाटक के माध्यम से सरल, सहज शब्दों में जम्बूस्वामी के वैराग्य व संसार की असारता का वर्णन किया हैं।

68. सज्जाति परमस्थान

यह कृति आर्यिका चंदनामती जी के अपार ज्ञान का परिचय प्रदान करती हैं। सरल व स्पष्ट शब्दों में जैन धर्म के सिद्धांतो का ज्ञान कराने वाली यह रचना अनुपम हैं।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा सम्पादित ग्रंथ

69. आर्यिका रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ

आर्यिका ज्ञानमती जी की गृहस्थावस्था की माता मोहिनी देवी जिन्होंने गृहस्थ अवस्था में रहते हुए जैन समाज को अनेक बहुमूल्य रत्न प्रदान किये एवं स्वयं भी आर्यिका दीक्षा धारण कर त्याग व तपस्या का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। निर्मल व्यक्तित्व की धनी व उज्जवल चारित्र धारण करने वाली आर्यिका रत्नमती जी के गुणानुवाद के लिये विद्वानों द्वारा यह ग्रन्थ निकाला गया जिसमें अनेक विद्वानों सहित कुमारी माधुरी (वर्तमान की आर्यिका चंदनामती जी) ने अथक परिश्रम किया। सम्पूर्ण ग्रन्थ में 5 खण्ड़ हैं। प्रथम खण्ड़ में आचार्यों आर्शीवचन, राजनयिकों की शुभकामनायें, विद्वानों की विनयांजलि, संस्मरण, कविताएं तथा प्रशस्तियॉ आदि हैं। द्वितीय खण्ड़ में आर्यिका रत्नमती जी का जीवनदर्शन, उनकी जन्मभूमि महमूदाबाद का परिचय एवं उनके गृहस्थ जीवन सम्बंधी परिवार का परिचय हैं। तृतीय खण्ड़ में उनके दीक्षा गुरू आचार्य धर्मसागर महाराजजी का परिचय, आर्यिका ज्ञानमती जी एवं संघस्थ साधुओं का परिचय हैं। चतुर्थ खण्ड़ में महापुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण के आधार से लिखित प्रमुख आर्यिकाओं का परिचय एवं तीर्थंकरों के समवसरण में चतुर्विध संघ में आर्यिकाओं का चार्ट के आधार से आगमोक्त वर्णन हैं। पंचम खण्ड़ में कतिपय सैद्धान्तिक लेख हैं बीच बीच में आर्यिका रत्नमती के चित्र भी अंकित हैं। यह एक प्रेरक ग्रन्थ हैं जिसमें गुणों से युक्त आर्यिका रत्नमती जी के परिचय के साथ–साथ जैनधर्म, दर्शन, साहित्य, भूगोल, खगोल, गणित, पुरातत्व आदि से संबंधित लेखों का संकलन हैं।

70. गणिनी आर्यिका ज्ञानमती अभिनन्दन ग्रंथ

आर्यिका चंदनामती द्वारा संपादित यह ग्रंथ आर्यिका ज्ञानमती जीके व्यक्तित्व व कृतित्व के प्रति अभिवन्दन करने हेतु किया गया उनका गुणानुवाद हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ में लगभग 750 पृष्ठ हैं। इस ग्रंथ में आर्यिका ज्ञानमती द्वारा लिखित ग्रंथों में से 56 ग्रंथों की विद्वानों द्वारा की गयी समीक्षाएं हैं। इस ग्रंथ में हस्तिनापुर व जम्बूद्वीप का हिन्दी व अंग्रेजी भाषा में परिचय हैं।

71. भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्ड़लपुर अभिनन्दन ग्रंथ

आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से आर्यिका चंदनामती जी के संयोजन में निकले इस ग्रंथ के माध्यम से भगवान महावीर विषयक भ्रामक तथ्यो का निराकरण स्वयमेव हो जाता हैं। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत उत्तरपुराण, वीरजिणिन्दचरिउ आदि महान् ग्रंथों के आधार से 11 सम्पादकों के सम्पादकत्व में निकाले गये इस ग्रंथ की विषय सामग्री शास्त्रोक्त हैं। भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक महोत्सव वर्ष में निकाले गए इस अभिनन्दन ग्रंथ में 6 खण्ड़ हैं। प्रथम खण्ड़ में आचार्यों, मुनियों, आर्यिकाओं, क्षुल्लक–क्षुल्लिकाओं एवं भट्टारकों आदि के आर्शीवचन, अनेक राजनयिकों एवं शासन, प्रशासन के अधिकारियों की शुभकामनायें व श्रावक–श्राविकाओं की पुष्पांजलि और काव्यगंगा प्रवाहित हैं। इस खण्ड़ में 224 पृष्ठ हैं। द्वितीय खण्ड़ के 184 पृष्ठों में ''भगवान महावीर एवं जैनधर्म'' विषयक लेख हैं। तृतीय खण्ड़ में कुण्ड़लपुर नगरी की ऐतिहासिकता, पुरातात्त्विक उपयोगिता आदि से समन्वित 108 पृष्ठीय शोधपूर्ण आलेख हैं। चतुर्थ खण्ड़ में 128 पृष्ठों में '' तीर्थंकर भगवंतों के पंचकल्याणक तीर्थं एवं ऐतिहासिक उल्लेख हैं। पंचम खण्ड़ के 88 पृष्ठों में मंदिर, महल आदि के निर्माण, नंद्यावर्त महल परिसर में लगाए गये शिक्षालेख आदि का वर्णन हैं अंतिम छठे खण्ड़ में ''भगवान महावीर ज्योति रथ प्रवर्तन'' का दिग्दर्शन हैं।

72. भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ

भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के त्रिवर्षीय कार्यक्रमों के समापन पर इस कृति का लेखन कार्य सम्पन्न हुआ। इसमेंपाँच खण्ड़ हैं। प्रथम खण्ड़ में संस्कृत, हिन्दी की स्तुतियॉ, कल्याण मंदिर स्त्रोत तथा अन्य काव्य कृतियॉ, भजन आदि हैं द्वितीय खण्ड़ में हिन्दी व अंग्रेजी

में पार्श्वनाथ जीवन दर्शन तथा महत्वपूर्ण आलेख हैं। तृतीय खण्ड़ में भगवान पार्श्वनाथ के पंचकल्याणक तीर्थों, प्रमुख अतिशय क्षेत्रों एवं कतिपय सातिशय प्रतिमाओं का व्यवस्थित उल्लेख किया गया हैं। ''व्रत विधि संग्रह'' नामक चतुर्थ खण्ड़ में 68 व्रतों का संग्रह हैं। पंचम खण्ड़ में विशेष लेख हैं जिनमें जैन धर्म की शाश्वत सत्ता एवं जैनधर्म के प्रमुख सिद्धांतों का विवेचन हैं। यह ग्रंथ शास्त्र रूप में हैं जिसके स्वाध्याय से भगवान पार्श्वनाथ के विषय में संपूर्ण तथ्यों एवं जिनागम के रहस्यों का ज्ञान होता हैं।

73. गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ

गणिनी ज्ञानमती जी के दीक्षित जीवन के 50 वर्षों के सम्पूर्तिपर आर्यिका चंदनामती जी के प्रधान संपादन एवं 15 अन्य संपादकों के नेतृत्व में इस गौरव ग्रंथ का निर्माण सम्पन्न हुआ। आर्यिका ज्ञानमती जी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को सात खण्ड़ों के इस ग्रन्थ में वर्णित किया गया हैं। उनके द्वारा की गयी पचास वर्षों की साधना , धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों में आर्यिका श्री की भूमिका पर यह सम्पूर्ण ग्रंथ आधारित हैं। ग्रंथ की समग्र विषय वस्तु के अध्ययन से जैन संस्कृति के संरक्षण, तीर्थोद्धार, तप त्याग, देव–शास्त्र–गुरू के प्रति अगाध श्रद्धा की भावना उत्पन्न होती हैं।

74. आचार्य वीरसागर स्मृति ग्रंथ

आचार्य वीरसागर जी आचार्य शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाचार्य थे जिन्होंने क्षुल्लिका वीरमती जी को आर्यिका दीक्षा प्रदान कर जैन परम्परा में आर्यिका ज्ञानमती जैसी महान् विभूति प्रदान की। आर्यिका ज्ञानमती जी की हार्दिक भावना साकार करने के लिये इस गुरू स्मृति ग्रंथ को आर्यिका चंदनामती जी ने सन् 1990 में सम्पादित किया। इस ग्रंथ में पांच खण्ड हैं। प्रथम खण्ड़ में अनेक आचार्यों, मुनियों, गणिनी आर्यिकाओं, आर्यिकाओं, मनीषी विद्वानों एवं कवियों की आचार्य श्री को श्रद्धांजलियां हैं। द्वितीय खण्ड़ में चतुर्विंशति स्तवनपूर्वक चौबीस तीर्थंकरों की आराधना की गयी हैं। आचार्य वीरसागर जी की 100 श्लोकों में संस्कृत स्तुति, आचार्य वीरसागर परिचय, उनके द्वारा दीक्षित त्यागियोंका परिचय, आचार्य शांतिसागर महाराज

का अंतिम दिव्य संदेश, उनके पट्ट पर विराजित आचार्यों की संस्कृत स्तुति आदि के माध्यम से गुरू गुणानुवाद किया गया हैं। तृतीय खण्ड़ में श्री गौतम स्वामी कृत गणधर वलय मंत्र के साथ दिगम्बर जैन मुनिचर्या का वर्णन करते हुये गौतम गणधर स्वामी से लेकर श्री भगवज्जिनसेनाचार्य तक आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा लिखित पूर्वाचार्यों के शास्त्रोक्त परिचय हैं चतुर्थ खण्ड़ में जैनागम में वर्णित अनेक उच्च्कोटि के विषयों का आलेख के माध्यम से वर्णन हैं। पंचम खण्ड़ में आचार्यश्री के जीवन से संबंधित चित्रावली हैं।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी साहित्य

आर्यिका चंदनामती जी ने वर्तमान परिपेक्ष्य में अंग्रेजी भाषा के बढ़ते उपयोग को दृष्टिगोचर रखते हुए जिनागम को अंग्रेजी माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। ये कृति अंग्रेजी माध्यम से लौकिक शिक्षा प्राप्त करने वाली युवा पीढ़ी के लिये अत्यंत उपयोगी हैं।

75. भगवान महावीर हिन्दी–अंग्रेजी जैन शब्दकोष (संकलन कर्त्री)

आर्यिका चंदनामती जी सन् 2004 में प्रकाशित 'भगवान महावीर हिन्दी–अंग्रेजी शब्दकोश' में 'संकलन एवं वाचना' की प्रमुख भूमिका आर्यिका चंदनामती जी द्वारा निर्वहन की गयी। जैनदर्शन के विशिष्ट शब्दों सहित लगभग 15000 शब्दों को अंग्रेजी एवं हिन्दी में व्याख्यायित करने वाला शब्दकोष हैं। भगवान महावीर जन्मभूमि–कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में शब्दकोश हेतु संकलित शब्दों की वाचना के समय आर्यिका श्री द्वारा किया गहन परिश्रम हैं। आर्यिका ज्ञानमती जी के सानिध्य में अनेकानेक शब्दों की आगमोक्त व्याख्या, पुनः अंग्रेजी रूपान्तरण इत्यादि का कार्य आर्यिका चंदनामती जी एवं शब्दकोश टीम द्वारा अत्यंत परिश्रम एवं लगन के साथ सम्पन्न किया गया इस परिश्रम के फलस्वरूप शब्दकोश रूपी निधि जैन समाज को प्राप्त हुई।

76. जैन भारती –अंग्रेजी (वाचना प्रमुख एवं सम्पादकीय)

आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा चारों अनुयोगों के आधारभूत तथ्यों से समन्वित जैनभारती ग्रंथ का अंग्रेजी संस्करण सन् 2007 में प्रकाशित किया गया। प्रकाशन से पूर्व डॉ. एन. एल. रीवा (मध्य

प्रदेश) द्वारा अनुवादित इस ग्रंथ की वाचना में आर्यिका चंदनामती जी ने 'वाचना प्रमुख एवं सम्पादकीय मार्गदर्शन' के रूप में प्रमुख भूमिका का निष्पादन किया।

डा. जैन द्वारा अनुवादित सामग्री की वाचना जब प्रारम्भ की गयी, तब ज्ञात हुआ कि proper nouns का भी अंग्रेजी रूपांतरण किया गया हैं जैसे –चंद्रनखा नाम को moon shaped nails जयधवला को victorious luminous इत्यादि, इसे देखते हुये सम्पूर्ण ग्रंथ के सम्पादन की आवश्यकता का अनुभव किया, तब आर्यिका चंदनामती जी के मार्गदर्शन में ग्रंथ की आद्योपरांत वाचना की गयी तथा सभी उचित परिवर्तन करके ही ग्रंथ का प्रकाशन किया गया। आर्यिकाश्री के अनुशासन एवं विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन के द्वारा ही अंग्रेजी संस्करण का वर्तमान रूप सुलभ हो पाया।

77- Rishabhdev Nirvan Mahotsav

सन् 2000 में 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव' के अवसर पर प्रकाशित इस अंग्रेजी पुस्तक में आदिब्रह्मा प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सम्पूर्ण जीवनवृत्त का आगमोक्त वर्णन है। ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर ही भारत देश का नाम पड़ा 'भगवान महावीर जैन धर्म के संस्थापक नहीं थे, 'भगवान ऋषभदेव की ऐतिहासिक प्रतिमायें कहाँ–कहाँ विराजमान हैं? इत्यादि तथ्यों को भी विशेष रूप से इंगित किया गया हैं। जैन धर्म की प्राचीनता एवं इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव द्वारा जैनधर्म का प्रवर्तन का वर्णन आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित इस कृति की प्रमुख विशेषता हैं।

78- Jain Dharma and Lord Rishabh deva

आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा रचित पुस्तक 'जैनधर्म और ऋषभदेव' को अंग्रेजी में लिख कर आर्यिका चंदनामती जी ने इस अंग्रेजी कृति का प्रस्तुतीकरण किया। 'भगवान ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव' के अवसर पर सन् 2000 में यह कृति प्रकाशित की गयी थी। प्रस्तुत पुस्तिका में तीन लोक के तीन भाग– अधो, मध्य, ऊर्ध्व लोकों का परिचय देते हुए विशेष रूप से मध्यलोक में

अवस्थित जम्बूद्वीप, विदेह क्षेत्र, 170 कर्मभूमियॉ, 170 तीर्थंकर, षट्काल परिवर्तन के क्षेत्र , प्रथम कर्मभूमि, भोगभूमि, कुलकरों की उत्पत्ति, अयोध्या नगरी की रचना एवं भगवान ऋषभदेव के पॉचकल्याणकों का क्रमिक विवरण प्रस्तुत किया गया हैं।

79- An Introduction of Ganini Pramukh Shri Gyanmati Mataji

प्रस्तुत पुस्तिका में आर्यिका ज्ञानमती जी के बचपन में ही वैराग्य के अंकुरण, 'पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथ' के स्वाध्याय द्वारा प्राप्त संस्कारों के आधार पर क्रमशः क्षुल्लिका दीक्षा, आर्यिका दीक्षा, आर्यिकाचर्या के 28 मूलगुणों, लेखन कार्य के प्रारंभीकरण, तीर्थ विकास की प्रेरणाएँ तथा विविध धर्मप्रभावनात्मक कार्यों का संक्षिप्त परन्तु प्रभावी विवरण अंग्रेजी भाषा में दिया गया हैं। इस पुस्तिका का लेखन आर्यिका चंदनामती जी द्वारा किया गया।

80- Bhagwan Mahaveer (A Pictorial story)

भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्ड़लपुर (जिला–नालंदा बिहार) के नव विकास के अवसर पर सन् 2004 में आर्यिका चंदनामती जी द्वारा भगवान महावीर के गर्भ, जन्म कल्याणक से लेकर निर्वाण कल्याणक तक की समस्त घटनाओं को 18 चित्रों के माध्यम से हिन्दी एवं अंग्रेजी व्याख्या सहित प्रस्तुत किया गया। वस्तुतः चित्रकथा की विधा में यह प्रस्तुतीकरण चित्र एवं अंग्रेजी भाषा होने के कारण बालकों एवं युवाओं के लिये अत्यंत उपयोगी हैं।

81- Bhagwan Parashvanath (A Pictorial story)

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा सन् 2007 में हिन्दी व अंग्रेजी में लिखित 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के दश पूर्व भवों की सचित्र झाँकी पुस्तक रूप में प्रकाशित की गयी। चित्रों के माध्यम से भगवान पार्श्वनाथ बनने से दस भव पूर्व से मरूभूति के जीव का क्रमिक उत्थान एवं कमठ के जीव का वैरभाव के निमित्त से बार–बार निम्न गतियों में परिभ्रमण इस कृति में परिलक्षित किया गया हैं। अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुतीकरण होने से वर्तमान पीढ़ी के लिये अत्यंत उपयोगी हैं।

82- Jambuswami Charitra

वर्तमान युग के अंतिम केवली 'श्री जम्बूस्वामी' के पूर्व भव के कथानक एवं जम्बू स्वामी की पर्याय में माता–पिता के अनुरोध पर विवाह, रात्रि में चार नवविवाहिता पत्नियों से वैराग्यमयी वार्तालाप, विद्युच्चोर का आगमन आदि कथानक को आर्यिका चंदनामती जी ने अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत किया, जिसका प्रकाशन 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका में सन् 2012 में किया गया। सरल अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत यह कथानक प्रेरणास्पद एवं मार्मिक हैं।

83- Jain Worship

सन् 2009 में प्रकाशित अंग्रेजी पूजाओं की यह पुस्तक आर्यिका चंदनामती जी की महत्वपूर्ण कृति हैं। आर्यिका श्री द्वारा समय–समय पर अंग्रेजी पद्यों में पूजन, भजन, बारह भावना, तीर्थंकर जन्मभूमि वंदना इत्यादि काव्यात्मक रचनाओं को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया हैं।

इस पुस्तक में पूजा प्रारम्भ करने की प्रचलित विधि का रोमन अंग्रेजी में रूपांतरण करके भगवान ऋषभदेव, भगवान महावीर स्वामी एवं तेरहद्वीप रचना की अंग्रेजी पूजाओं को प्रस्तुत किया गया हैं। यद्यपि पद्यों की पूर्णता में अंग्रेजी भाषा का कहीं स्थानों पर स्खलन भी हुआ हैं, परन्तु पंक्तियों का भाव पाठक को सहज ही उपलब्ध हो जाता हैं। jain worship पुस्तक में ओम् के ध्यान की विधि अंग्रेजी में उपलब्ध हैं।

आर्यिका चंदनामती कृत लोकप्रिय भजन की पंक्तियॉं–

I will go to pavapur, there is Temple Jalmandir

After offering Ladu I will celebrate Diwali

Be Happy Diwali, Be Happy Diwali…………

आर्यिका श्री द्वारा रचित अंग्रेजी पक्तियाँ सरस हैं, वर्तमान परिपेक्ष्य से ये जनपयोगी हैं।

84- Dashlakshan Pooja

सन् 2011 में इस लघु पुस्तिका का प्रकाशन दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप – हस्तिनापुर द्वारा किया गया। इस पुस्तिका में आर्यिका चंदनामती जी ने दशलक्षण धर्म की सरल व भाव पूर्ण पूजा प्रस्तुत की हैं। पूजा की कुछ पंक्तियाँ–

We can get piece in the world,

By worship to the God.

We can get the happiness,

By prayer to the God.

दशलक्षण पूजा के पश्चात् इस लघु पुस्तिका में हस्तिनापुर में जन्में शांतिनाथ–कुंथुनाथ–अरहनाथ स्वामी की सामूहिक पूजन Three Teerthankars Pooja के नाम से प्रस्तुत की गयी हैं। यह पूजा सरल शब्दों में लिखी गयी आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करने वाली रचना हैं, अष्ट द्रव्य से पूजन के पश्चात् जयमाला में तीनों भगवंतोंके पंचकल्याणकों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया हैं।

इस लघु पुस्तिका के अंत में आर्यिका चंदनामती द्वारा लिखित सोलहकारण पूजा समाहित की गयी हैं।

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी द्वारा लिखित अंग्रेजी कृतियॉ वर्तमान में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने वाली युवा पीढ़ी के लिये अत्यंत उपयोगी हैं।

आर्यिका चंदनामती जी कृत टीका ग्रंथ एवं पुस्तकें

85. महावीर स्त्रोत :संस्कृत–हिन्दी टीका

आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका ज्ञानमती जी कृत महावीर स्त्रोत की टीका करके जैन साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया हैं। आर्यिका श्री ने इस टीका में काव्यात्मक पद्यों में अनंत चतुष्टय धारी वीर प्रभु की अत्यंत भक्ति से स्तुति की हैं वे लिखती हैं–

'इस विधि श्री जिन वीर स्तुति को जो एकाग्रमना होकर

नित्य त्रिसंध्या में पढ़ते हैं, भक्ति से हर्षित होकर।

वे भाक्तिक जन स्वयं शीध ही, घाती कर्म नशाते है,

केवल ''ज्ञानमती'' अर्हन्त प्रभु की लक्ष्मी पाते हैं। (आर्यिका चंदनामती 2000)

टीकाकर्त्री आर्यिका श्री ने महावीर स्त्रोत की टीका के साथ भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्ड़लपुर एवं निर्वाण स्थली का भी विस्तृत विवेचन किया हैं। आर्यिका चंदनामती जी कृत संस्कृत टीका पदखण्डनारूप हैं। यह टीका सर्वथा सुस्पष्ट हैं।

86. ध्यान साधना : एक अध्ययन

ध्यान साधना वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला का 195 वाँ पुष्प हैं जिसका प्रकाशन 17 जुलाई सन् 2000, वीरशासन जयंती के अवसर पर श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा किया गया। जैन वाङग्मय में आचार्य कुन्द–कुन्द, आचार्य शुभचंद्र और आचार्य हेमाचंद्राचार्य आदि ने ध्यान पर अनेक ग्रंथों की रचना की हैं। उन्हीं सब तथ्यों को आधार बनाकर इस लघु पुस्तिका के अंदर गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया गया हैं। जैन दर्शन में आंतरिक तप के अन्तर्गत ध्यान की बड़ी महत्ता हैं। सामान्य रूप से ध्यान अर्थात् किसी भी कार्य को एकाग्रचित्त होकर अन्य सभी बाह्य पदार्थों से चित्त को मोड़ कर आत्मा के साथ जोड़ना ही ध्यान हैं। इनका उत्तम समय कम से कम 48 मिनट माना गया हैं।

आचार्यों ने ध्यान के चार प्रकार प्रस्तुत किये हैं। जिनमें आर्त और रौद्रध्यान कुध्यान हैं, जो नरकगति, पशुगति, नीचगति में ले जाने वाले हैं। जबकि उत्तम ध्यान में धर्मध्यान और शुक्ल

ध्यान कहे जाते हैं। ऐसा माना जाता हैं वर्तमान में शुक्लध्यान कठिन हैं, परन्तु धर्मध्यान सुलभ हैं। गृहस्थाश्रम में ध्यान का अभ्यास और भावना दृढ़ बनाते हैं जिससे वैराग्य भावना प्रबल बनती हैं और वही आगे धर्मध्यान में लीन बनाती हैं। गृहस्थाश्रम में ध्यान का अभ्यास और भावना दृढ़ बनाते हैं। गृहस्थ के लिये 1.पिंडस्थ, 2.पदस्थ, 3.रूपस्थ और 4.रूपातीत इन चार के धर्मध्यानों का निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ध्यान के लिये एकांत स्थान आवश्यक जैसे मंदिर जी में एकांत स्थान, किसी पार्क में, नदी किनारे पर शुद्ध आसन पर बैठकर ध्यान करना चाहिए तथा ध्यान करते समय मुख पूर्व दिशा की ओर करना चाहिये, जिससे सूर्य की तेजस्वी किरणें मन और मस्तिष्क में ऊर्जा प्रदान करें और जीवन में नवसंचार हो। ध्यान करने के लिये सर्वश्रेष्ठ मुद्रा तीर्थंकर की पद्मासन मुद्रा हैं जिसमें नासाग्र दृष्टि की प्रधानता हैं। आर्यिका श्री ने इस कृति में अनेक सूत्रों का उल्लेख किया हैं ये निम्नांकित हैं–

1. ज्ञानानन्दस्वरूपोऽहं (शक्तिरूप में मेरी आत्मा अनन्तज्ञान रूप हैं)

2.परमानन्दस्वरूपोऽहं (मेरी आत्मा में परम आनन्द का स्त्रोत प्रवाहित हो

रहा हैं)

इन उच्चारणों के साथ सर्व प्रथम पिण्डस्थ ध्यान होता हैं। पिण्डस्थ अर्थात् शरीर को शरीर को स्थित कर आत्मा का चिंतन करना। इसमें पार्थिवी, आग्नेय, श्वसना, वारूणी और तत्वरूपवती ये पाँच धारणाएँ होती हैं।

पिण्डस्थ ध्यान के पश्चात् पदस्थ ध्यान में मंत्रों के अक्षरों का आधार लेकर शुद्ध मन से शुद्ध वस्त्र धारण कर पद्मासन में बैठकर समस्त परिग्रहों का त्याग करके आत्मा में लीन होना पदस्थ ध्यान हैं।

रूपस्थ ध्यान में अरिहंत के स्वरूप का विचार करते हुए अनुभव होता हैं कि मैं जीवात्मा अरिहंत के समवसरण में बैठा हूँ, रूपस्थ ध्यान हैं।

रूपातीत ध्यान के अंतर्गत सिद्धों के गुणों का चिंतवन करना, सिद्धों के अमूर्तिक चैतन्य स्वरूप निरंजनात्मा का ध्यान करते हुए स्वयं को सिद्ध मानकर उसी में लीन हो जाना चाहिये।

इस कृति में लेखिका द्वारा ध्यान सूत्र के श्री माघनंदी आचार्य द्वारा रचित चिंतन के 101 मंत्र प्रस्तुत किये गये हैं।

87. ज्ञानज्योति की भारत यात्रा

4 जून 1982 को दिल्ली के लाल किला मैदान से ज्ञानज्योति रथ का प्रवर्तन हुआ जिसका उद्‌घाटन भारत की तात्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के करकमलों से हुआ। इस रथ का भ्रमण 1045 दिनों तक सम्पूर्ण भारत में हुआ। जैन भूगोल की रचना का दिग्दर्शन कराने वाला जम्बूद्वीप का छोटा सा मॉडल उस रथ पर रखा गया था। आर्यिका चंदनामती जी ने 'ज्ञानज्योति की भारतयात्रा' पुस्तक में विस्तार से ज्ञानज्योति रथ के भारत भ्रमण के विषय में लिखा हैं। प्रस्तुत पुस्तक की रचना आर्यिका श्री ने सन् 1993 में की थी। जिसमें उन्होंने गद्य व पद्य दोनों प्रकार से इतिहास लिखा हैं। पृष्ठ 15 शीर्षक में लिखा हैं–

'एक ज्योति से ज्योति सहस्रों जलती जाएं अखिल विश्व में,

भारतीय इतिहास का मार्मिक वर्णन करते हुए आर्यिका श्री ने लिखा हैं–

एक नहीं कितनी गाथाएँ इतिहासों में छिपी हुई हैं।

वीर शहीदों की स्मृतियॉं स्वर्णाक्षर में लिखी हुई हैं।।(आर्यिका चंदनामती, 1995)

इसी पुस्तक के दो खण्ड़ हैं– 1. जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति प्रवर्तन

2. जम्बूद्वीप प्रतिष्ठापना महोत्सव

प्रथम खण्ड़ में आर्यिका श्री ने ज्ञान ज्योति रथ के राजस्थान, बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडू ,मध्य प्रदेश, गुजरात, आसाम, उत्तर प्रदेश, नागालैण्ड़ एवं इम्फाल भ्रमण का वर्णन हैं।

द्वितीय खण्ड़ में ज्ञानज्योति के हस्तिनापुर आगमन एवं अखण्ड़ स्थापना का वर्णन हैं। 28 अप्रैल, 1985 को सम्पूर्ण भारत यात्रा करके ज्ञानज्योति रथ का आगमन हुआ।

इस प्रकार यह कृति ज्ञान ज्योति रथ की भारत यात्रा एवं धर्म रथ के प्रवर्तन पर आधारित हैं।

88. श्रावक संस्कार निर्देशिका

आर्यिका चंदनामती जी की लेखनी से प्रसूत पुस्तिका ''श्रावक संस्कार निर्देशिका'' गागर में सागर के समान हैं मात्र 48 पृष्ठों में श्रावकाचार के 8 प्रमुख विषय इस कृति में समाहित हैं।

1. अष्टमूलगुण।

2. षोडश संस्कार।

3. जैन विवाह विधि।

4. श्रावक की षट् आवश्यक क्रियाएँ।

5. रजस्वला स्त्री का अशौच।

6. अहिंसक बनने के लिये कम से कम इतना अवश्य करें।

7. जैन हर्बल्स कम्पनी—मुम्बई द्वारा उत्पादित अहिंसक प्रसाधन सामग्री

8. गर्भपात—मॉ की ममता पर कुठराघात।

मूलगुणों से सम्बंधित प्रथम भाग में तीन प्रकार के मूलगुणों का विवेचन हैं। ये मूलगुण इस प्रकार हैं— 1. पुरूषार्थ सिद्धि उपाय में आचार्य श्री अमृतचंद्र द्वारा वर्णित मूलगुण। 2. पंड़ित आशाधर जी द्वारा सागारधर्मामृत में विवेचित मूलगुण। 3. आचार्य श्री समन्तभद्र द्वारा रत्नकरण्डश्रावकाचार में उल्लेखित मूलगुण।

मूलगुण के तीनों प्रकार में विशिष्ट अन्तर नहीं हैं। तीनों की मूल संवेदना एक हैं, केवल वर्णन पार्थक्य हैं। वर्तमान के भौतिकवादी भोग प्रधान युग में मानव अपनी जिव्हा लोलुपता की संतुष्टि

के लिये मांसाहार को अपने भोजन का आवश्यक अंग माना गया हैं। द्वितीय अध्याय का शीर्षक हैं–षोडश संस्कार। व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में संस्कारों का विशेष महत्व हैं। तृतीय अध्याय में जैन विवाह विधि से सम्बन्धित हैं। जैन धर्म में विवाह को दो परिवार का मिलन माना जाता हैं। विवाह प्रथा स्त्री –पुरूष के पारिवारिक, सामाजिक व धार्मिक कर्तव्यों के निर्वाह का माध्यम हैं। चतुर्थ अध्याय का शीर्षक हैं–श्रावक की षट् आवश्यक क्रियायें–श्रावक शब्द में तीन अक्षर हैं–श्र, व और क। श्र श्रद्धा का व्यंजक है, व विवके का और क क्रिया का। जो व्यक्ति आगम में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए विवके सहित षट् क्रियाओं– देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान का पालन करता हैं। पंचम अध्याय में सूतक –पातक का संक्षिप्त वर्णन किया गया हैं। षष्टम् अध्याय में रजस्वला स्त्री के अशौच का वर्णन किया गया। वर्तमान में इस अशौच को रूढ़िमात्र माना जाता हैं। आर्यिका श्री ने इस प्रथा का शास्त्रों में उल्लेखित एवं वैज्ञानिक दोनों रूपों की विस्तृत व्याख्या की हैं। ''अहिंसक बनने के लिये कम से कम इतना अवश्य करें'' अध्याय में दैनिक व्यवहार में हिंसा माध्यम से निर्मित वस्तुओं के त्याग व उनके स्थान पर अहिंसक तरीके से तैयार वस्तुओं के प्रयोग के विषय में लिखा हैं। अंतिम अध्याय ''गर्भपात–मॉ की ममता पर कुठराघात'' सर्वाधिक मर्मस्पर्शी अध्याय हैं। प्रस्तुत पुस्तक की भाषा सरल, स्पष्ट एवं बोधगम्य हैं।

89. चारित्रचन्द्रिका

आर्यिका चंदनामती जी कृत चारित्र चन्द्रिका पुस्तक में दस अध्याय हैं। 472 पृष्ठों की इस रचना में जैनधर्म के कई सारभूत विषय निहित हैं– पुस्तक में सर्वप्रथम मंगलाचरण के माध्यम से अंनन्तानंत सिद्ध परमेष्ठियों, कृतयुग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर, अनादि निधन जैन शासन, आचार्य कुंद–कुंद स्वामी, बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य आचार्य शांतिसागरजी एवं आचार्य वीरसागर जी महाराज को नमस्कार किया गया हैं।

द्वितीय अध्यायः आर्यिका चर्या में प्राचीन आर्यिकाओं का वर्णन किया गया हैं साथ ही आर्यिका पद के नियम, पद का महत्व व आर्यिका दीक्षा का स्वरूप भी वर्णित हैं।

तृतीय अध्यायः पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी का स्वर्णिम व्यक्तित्व में आर्यिका ज्ञानमती माताजी के जन्म से लेकर सन् 2005 तक के आर्यिका जीवन का वर्णन किया गया हैं।

चतुर्थ अध्यायः शाश्वत तीर्थ अयोध्या में प्रथम तीर्थंकर श्री महामस्तकाभिषेक अध्याय में आर्यिका श्री ने लिखा हैं–''दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोला के भगवान बाहुबली महामस्तकाभिषेक की परम्परा तो एक हजार वर्षों से चली आ रही हैं किन्तु उत्तर भारत में महामस्तकाभिषेकों की प्रायः नहीं देखी जाती थी अतः पूज्य माताजी की प्रेरणा से शाश्वत तीर्थ अयोध्या में विराजमान 31 फुट उत्तुंग प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक युग–युग के लिये प्रेरणा स्त्रोत बन गया।

चतुर्थ अध्यायः मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की पर्वतीय य़ात्रा में आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका ज्ञानमती जी ससंघ की 25 नवम्बर 1995 में जम्बूद्वीप हस्तिनापुर से प्रारम्भ हुई पदयात्रा का वर्णन हैं, यह यात्रा लगभग 1400 किलोमीटर की थी। इस दूरी को पारकर मंजिल प्राप्त करने में आर्यिका संघ को पांच माह का समय लगा और 27 अप्रैल 1996 को आर्यिका संघ का मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर मंगल प्रवेश हुआ। इस सम्पूर्ण यात्रा में आर्यिका संघ ने छह प्रांतों में प्रवेश किया 1.उत्तर प्रदेश 2.दिल्ली 3.हरियाणा 4.राजस्थान 5.मध्य प्रदेश 6.महाराष्ट्र। आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभ देव की निर्माण कार्य हुआ।

पंचम् अध्यायः ऐतिहासिक कार्य कलाप एवं प्राचीन तीर्थ प्रयाग का उद्भव इस अध्याय में आर्यिका ज्ञानमती की प्रेरणा से सम्पन्न हुये मन्दिरों के नव निर्माण, ऐतिहासिक उत्सवों, धार्मिक सम्मेलनों आदि का वर्णन हैं। प्रयाग भगवान आदिनाथ की तप स्थली हैं वहाँ पर आर्यिका श्री ने भगवान ऋषभदेव जिन बिम्ब की स्थापना करायी।

षष्टम् अध्यायः भगवान महावीर 2600वॉ जन्म कल्याणक महोत्सव में 6 अप्रैल 2001, चैत्र शुक्ला तेरस को भगवान महावीर के जन्म कल्याणक को हर्षोल्लास से मनाने का वर्णन हैं।

सप्तम् अध्यायः भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर–विश्व क्षितिज पर अध्याय में आर्यिका ज्ञानमती द्वारा कराये तीर्थ क्षेत्र कुण्डलपुर में नवनिर्माण का वर्णन हैं साथ ही इस तीर्थ की विश्व स्तर पहचान बन गयी।

अष्टम् अध्यायः भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि अध्याय में आर्यिका ज्ञानमती जी के सानिध्य में भगवान पार्श्वनाथ एवं सुपार्श्वनाथ जी की जन्म भूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि उत्सव भव्यता से मनाने का वर्णन हैं उसी उत्सव में भगवान पार्श्वनाथ के 9 मंजिले धातु के महल की भी अनावरण किया गया।

नवम् अध्यायः दीर्घकालीन तपस्या से अर्जित किया हैं पुण्य ज्ञानमती माता जी ने इस अध्याय में लेखिका ने आर्यिका ज्ञानमती जी के दीक्षित जीवन में किये गये तपश्चरण एवं उपसर्गों को समता से सहन करके की शक्ति का वर्णन किया हैं।

दसम् अध्यायः ज्ञानमती माताजी की कतिपय उपलब्धियॉ अध्याय में आर्यिका ज्ञानमती जी को प्राप्त उपलब्धियों का वर्णन हैं।

इस प्रकार यह पुस्तक आर्यिका ज्ञानमती जी के जीवन, धर्मस्थलों के निर्माण की भावना, धर्म प्रचार भावना, तपश्चरण आदि पर आधारित हैं।

90. अमूल्य प्रवचन

आर्यिका चंदनामती जी कृत यह कृति आर्यिका ज्ञानमती जी के प्रवचनों पर आधारित हैं। इस पुस्तिका में लेखिका ने आर्यिका श्री द्वारा समय–समय पर दिये जाने प्रवचनों को संग्रहित कर प्रस्तुत किया हैं।

91. द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तर माला

इस कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने आचार्य नेमिचंद्राचार्य कृत द्रव्यसंग्रह की 58 गाथाओं को प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। 68 पृष्ठीय इस कृति में आर्यिका श्री ने 22 गाथाओं को संबंधित चार्ट के माध्यम से भी समझाया हैं।

92. तेरहद्वीप रचना

आर्यिका चंदनामती जी ने 20 पृष्ठ की इस लघु कृति में जैन धर्म के करूणानुयोग ग्रंथों (तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि) में वर्णित जैनभूगोल पर आधारित तेरहद्वीप रचना को प्रस्तुत किया हैं। इस पुस्तिका में तेरह द्वीपों एवं उनके चारों ओर एक–एक समुद्र हैं उन तेरह समुद्रों का भी वर्णन हैं। मनुष्य का आवागमन तेरह द्वीपों मे से ढांई द्वीप तक ही हैं। ढाई द्वीप में जम्बूद्वीप, धातकीखंड द्वीप व अर्द्ध पुष्कर द्वीप हैं। तेरहद्वीपों मे 458 अकृत्रिम जिन मंदिर हैं। जम्बूद्वीप परिसर में निर्मित यह अद्वितीय रचना 4000 वर्गफुट की गोलाई में बनायी गयी हैं। पंच मेरू के 16–16 जिनालयों की अद्वितीय रचना भी यहाँदर्शायी गयी हैं। तेरहद्वीपों के 458 अकृत्रिम जिनालय हैं। स्वर्ण कलात्मक काम वाले इस मंदिर के रूप में विराजमान हैं। इस कृति में तेरहद्वीप रचना की आरती भी हैं।

93. छहढाला (अर्थ एवं प्रश्नोत्तर)

आर्यिका चंदनामती जी ने इस कृति में पंड़ित दौलतराम जी कृत छहढाला का हिन्दी अर्थ व छहढाला से संबंधित प्रश्न– उत्तर प्रस्तुत किये हैं।

94. जैनधर्म प्रश्नोत्तर माला

इस कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने जैनधर्म से संबंधित चारों अनुयोगों पर आधारित प्रश्न उत्तर के माध्यम से जैनधर्म व साहित्य से परिचित कराया हैं।

95. स्वर्णिम व्यक्तित्व की धनी –गणिनी प्रमुख ज्ञानमती माताजी

आर्यिका चंदनामती जी कृत इस 20 पृष्ठीय रचना में आर्यिका ज्ञानमती जी का सम्पूर्ण जीवन परिचय हैं। प्रस्तुत कृति 20 बिन्दुओं में विभक्त हैं– जिसमें उनके जन्म, वैराग्य, दीक्षा, अध्ययन, विभिन्न उपाधियों, उनके सानिध्य में हुये सेमिनार, शिविर, तीर्थ विकास व संघर्षमयी जीवन के विषय में वर्णन हैं।

96. पूनों का चाँद

आर्यिका ज्ञानमती जी का जन्म आसोज सुदी 15 (शरद पूर्णिमा) को हुआ था। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन चाँद पूर्ण रूप में चमकता हैं और रात्रि का अंधकार दूर करता हैं, उसी प्रकार शरद पूर्णिमा के दिन जन्म लेने वाली मैना आर्यिका ज्ञानमती जी के रूप में अज्ञान के अंधेरे में डूबे जीवों को अपने ज्ञान के प्रकाश से धर्म की दिशा प्रदान कर रही हैं।

97. अवध की अनमोल मणि

आर्यिका ज्ञानमती जी ने तीर्थंकर भगवंतों शाश्वत जन्म भूमि अयोध्या, वर्तमानकालीन पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान की जिसके परिणाम स्वरूप प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की टोंक पर सन् 2011 में सुन्दर कलात्मक मंदिर बनाया गया इसी प्रकार अवध प्रांत के विभिन्न स्थानों पर उनकी प्रेरणा से जिन मंदिरों के निर्माण के कार्य सम्पन्न हुये। इन कार्यों के लिये उन्हें अवध की अनमोल मणि की संज्ञा प्राप्त हुई प्रस्तुत पुस्तिका में आर्यिका चंदनामती जी ने इसका विस्तृत वर्णन किया हैं।

98. ज्ञानमती माताजी की अमृतवाणी

प्रस्तुत पुस्तिका में आर्यिका ज्ञानमती जी के प्रवचनों का संकलन हैं।

99. गणिनी ज्ञानमती चरितम्

प्रस्तुत कृति में आर्यिका चंदनामती ने अपनी गुरू गणिनी ज्ञानमती जी के चरित्र का वर्णन किया हैं।

100. संस्कृत साहित्य के विकास में श्री ज्ञानमती माताजी का योगदान

प्रस्तुत कृति में आर्यिका ज्ञानमती जी के संस्कृत साहित्य के विकास में योगदान को वर्णित किया गया हैं। उन्होंने क्षुल्लिका अवस्था में सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से लेखन कार्य प्रारंभ किया तत्पश्चात् 1969–70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी विद्वत्ता को उजागर किया। उनकी लेखनी से अनेक ग्रंथों की संस्कृत टीका, कई टीकाओं के हिन्दी अनुवाद का कार्य सम्पन्न हुआ।

101. गणिनी ज्ञानमती–परिचय एवं प्रश्नोत्तरी

इस कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका ज्ञानमती जी का जीवन परिचय प्रश्न उत्तर के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं।

102. अष्टमूलगुण

प्रस्तुत कृति में श्रावक के आठ मूलगुणों का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार इन अष्ट मूलगुणों का पालन करने से ही श्रावक पद का प्रारंभीकरण होता हैं।

103. जम्बूद्वीप रचना गाईड

आर्यिका चंदनामती जी ने ब्रह्मचारिणी अवस्था में इस कृति का लेखन कार्य किया था। इस रचना में जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर प्रांगण में निर्मित जिनबिम्बों व अन्य रचनाओं की जानकारी हैं।

104. ज्ञान रश्मि

इस कृति में आर्यिका चंदनामती ने आर्यिका ज्ञानमती जी के साहित्यिक ज्ञान का वर्णन करते हुये उन्हें ज्ञानरश्मि की उपमा प्रदान की हैं।

105. ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव

इस कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने जैनधर्म की प्राचीनता व इस युग में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव द्वारा जैनधर्म का प्रर्वतन का वर्णन किया हैं।

106. महावीर जन्मभूमि कुण्ड़लपुर—वास्तविक तथ्य

जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की जन्मस्थली के विषय कुछ भ्रामक तथ्य प्रकाश में आयें, आर्यिका चंदनामती जी ने जैनागम के प्राचीन ग्रंथों के माध्यम से उन भ्रामक तथ्यों का निवारण किया व कुण्ड़लपुर के भगवान महावीर की वास्तविक जन्म भूमि होने के तथ्य को आगम से प्रमाणित किया।

107. चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी—जीवन यात्रा

प्रस्तुत कृति में आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी ज्येष्ठ भगिनी, माता मोहिनी देवी की पॉचवी संतान आर्यिका अभयमती जी के जन्म, वैराग्य, जैनेश्वरी दीक्षा, आर्यिका पद आदि का वर्णन किया हैं।

108. पंचकल्याणक निर्देशिका

आयिका चंदनामती जी ने प्रस्तुत कृति में जिनालयों के नव निर्माण के अवसर पर होने वाले तीर्थंकर भगवंतों के पंचकल्याणकों द्वारा जिनप्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठा के विषय में आवश्यक निर्देश प्रस्तुत किये हैं।

इनके साथ साथ आर्यिका चंदनामती जी ने षट्खण्ड़ागम की आर्यिका ज्ञानमती जी कृत टीका सिद्धांतचिंतामणि का हिन्दी अनुवाद किया। सम्पूर्ण कार्य को 12 पुस्तकों के माध्यम से प्रकाशित किया गया। उनकी 200 में से 120 रचनायें उल्लेखनीय हैं। आर्यिका चंदनामती जी से साक्षात्कार करने पर शोधकर्त्री को ज्ञात हुआ कि आर्यिका श्री ने इनके अतिरिक्त लगभग सत्रह पुस्तकों का लेखन कार्य किया हैं, यह कार्य शीध्र ही प्रकाशित होने वाला हैं।

आर्यिका चंदनामती जी के मंगल प्रवचनों का संकलन

आर्यिका श्री चंदनामती जी वाणी और लेखन दोनों की धनी हैं। साधारण शब्दों में असाधारण बातों को जन–साधारण तक पहुँचाने की जो कला आर्यिका चंदनामती जी में विद्यमान हैं वह कला अन्य मनुष्यों में दुर्लभ हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने प्रवचनों के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धांतों को विकसित किया। आर्यिका जी के प्रवचन के माध्यम से शान्ति, समता, वात्सल्य का संदेश श्रोताओं को सदाचार की ओर प्रेरित करता हैं। नैतिक और अनुशासन उनके प्रवचनों की श्रंखला में स्पष्ट परिलक्षित होता हैं। हजारों की संख्या में श्रोता शान्ति से उनके प्रवचन श्रवण करते हैं यह उनकी शैली की विशेषता हैं उनकी मधुर वाणी संसार में भटके हुए प्राणियों को उचित मार्ग–दर्शन देने का अद्वितीय कार्य सरलता पूर्वक सम्पादित करती हैं। उनके प्रवचनों की श्रंखला पारस चैनल के माध्यम से घर बैठे श्रावकों तक पहुँच रही हैं, जिससे जैन धर्म की विशेष प्रभावना हो रही है। उनके प्रवचनो से प्राप्त कुछ अनमोल मोती निम्नवत् हैं–

- पवित्र मन तीर्थ के समान हैं।
- सत्य मानव जीवन का श्रंगार हैं।
- मोह का क्षय ही मोक्ष का द्वार हैं।
- निर्मोही श्रावक मोही साधु से उत्तम हैं।
- सम्यक श्रद्धा जीवन की अमर सम्पदा हैं।
- अज्ञानी मित्र से ज्ञानी शत्रु अच्छा होता हैं।
- संयम ग्रहण कर मनुष्य भगवान बन सकता हैं।
- कषायों से व विकारों से मुक्त होना ही मोक्ष हैं।
- कहने की आदत छोड़ो, करने का अभ्यास करो।
- स्वाध्याय, चिन्तन की धारा का रूप निखारता हैं।
- वर्तमान का पुरूषार्थ ही भविष्य का भाग्य बनता हैं।
- शुभ–अशुभ वृत्ति से परे, शुद्ध परिणति वीतरागता हैं।
- मर्यादा का उल्लंघन करना, आत्मघात का प्रमुक्ष चिन्ह हैं।

- परनिन्दा व स्वप्रशंसा करने वाला दुर्गति का पात्र होता हैं।
- कल्याण की प्राप्ति आतुरता से नहीं निराकुलता से होती हैं।
- राग–द्वेष के कारणों से बचना कल्याण का सच्चा साधन हैं।
- पूर्वाग्रह और पक्षपात छोड़कर ही सत्य का शोध हो सकता हैं।
- अर्जित कर्मों को समता भाव से भोग लेना ही कल्याणकारी हैं।
- वृक्ष अपने पर पत्थर फैंकने वाले को भी फल व छाया देता हैं।
- तत्वज्ञानपूर्वक राग–द्वेष की निवृत्ति आत्मकल्याण का सहज साधन हैं।
- प्रतिस्पर्धा, प्रदर्शन और प्रतिष्ठा की आकांक्षा मनुष्य के दुख का कारण हैं।
- मन, वचन और कार्य के साथ जो कषाय की वृत्ति है वही अनर्थ की जड़ हैं।
- भक्ति, भक्त को भगवान बनने का साधन होना चाहिये भीख मांगने का नहीं।
- उचित भोजन, शारीरिक श्रम, विश्राम और तनाव रहित जीवन दीर्घ आयु के रहस्य हैं।
- क्रिया रहित ज्ञान व्यर्थ है और ज्ञान रहित क्रिया व्यर्थ है। साधन में दोनों का योग आवश्यक हैं।
- श्रद्धापूर्वक पर्याय के अनुकूल यथाशक्ति निवृत्ति मार्ग पर चलना ही कल्याण का मार्ग हैं।
- यदि कल्याण की इच्छा है तो प्रमाद को त्याग कर आत्मस्वरूप का मनन करना चाहिये।
- गृहस्थ जीवन में दान की पराकाष्ठा होती हैं, मुनि जीवन में त्याग की पराकाष्ठा होती हैं।
- सदाचरण का आशय है, सत्‌आचरण अर्थात् सत् स्वरूप अपनी आत्मा में ही आचरण करना।
- यह चंचल मन कहीं एक जगह स्थिर नहीं रहता यह विषयों की लालसा में इधर–उधर भटकता हैं।

- मन की इच्छाओं और आकांक्षाओं को समाप्त करना अर्थात् विषय भोगों के प्रति उदासीन होना तप हैं।
- साधक हंस के समान नीर–क्षीर को पृथक करता हैं अर्थात् शरीर और आत्मा को पृथक करता हैं।
- ज्ञानी विश्व के रंग–मंच पर होने वाले दृश्य का दर्शक मात्र होता हैं। उनका कर्ता–धर्ता नहीं बनता।
- सफलता के मोती रास्ते में कंकर–पत्थरों की तरह नहीं मिलते, उन्हें पाने के लिये परिश्रम करना पड़ता है।
- संयास बुढ़ापे की दवा नहीं, युवा अवस्था का टॉनिक हैं। संयास का अर्थ जीवन की कला सीख जाना हैं।
- संसार दुख का दावानल हैं संसार में सुख सरसों के बराबर एवं दुख पहाड़ के बराबर है।
- मनुष्य को जीवित रहने के लिये श्वांस चाहिये और धर्म की रक्षा के लिये आत्म विश्वास चाहिये।
- उन्नति चाहते हो तो निंद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता के अवगुण त्याग देने चाहिये।
- परोपकार का फल भी स्वोपकार हैं, अतः परोपकार भी वहाँ तक करो जहाँ तक आत्महित में बाधा न हो।
- जिस प्रकार पथ्य के बिना औषधि का सेवन निरर्थक है उसी प्रकार संयम के बिना ज्ञान निरर्थक व अनर्थकारी है।
- इन्द्रिय संयम और प्राणी संयम धर्म का मूल है, सुख का आधार है, अहिंसा का मेरूदण्ड़ है और सुख शांति का सोपान हैं।
- शिष्ट और मिष्ट व्यवहार का नाम ही मानवता है, मानवता से रहित मानव उसी प्रकार है जैसे गंध रहित पुष्प या घी रहित दूध।

- संसार के अनन्तानन्त पदार्थों में आत्मा ही परम पवित्र आद्य, ज्ञेय, दृष्टव्य, ध्येय, प्राप्य, रमणीय, चिन्तनीय, उपादेय व ग्राह्य हैं।
- एक यथार्थ को छिपाने के लिये हजारों अयथार्थता के लिबास ओढ़ने पड़ते हैं इससे तो अच्छा है उस यथार्थता को प्रकट कर दो।
- अपवित्र विचार व क्रियायें विषपान के समान हैं और पवित्र विचार व सुसंयमित क्रियायें औषधि या अमृत सेवन के समान हैं।
- जैनदर्शन का मुख्य विषय है विचार में अनेकांत, आचार में अहिंसा, वाणी में स्याद्वाद तथा प्रत्येक आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व।
- जिस प्रकार शरीर के लिये धतूरा, सल्फास, साइनाइड घातक हैं, उसी प्रकार आत्मा के लिये मिथ्यात्व व विषय–कषाय घातक हैं।
- धर्म की जड़ गहरी है, अतएव धर्म शाश्वत है, अधर्म अशाश्वत। क्योंकि विकारी परिणाम भव्यों के जीवन में शाश्वत नहीं रह सकता।
- जब यह आत्मा जिनेन्द्र देव द्वारा प्रणीत जिन धर्म को अपने अन्दर धारण कर लेती है तब क्रमशः वही जिनेन्द्र भगवान बन जाती हैं।
- चाँदी के टुकड़े, स्वर्णाभूषण व रत्नों के संग्रह के स्थान पर अच्छे विचारों का संग्रह व शुभ कार्यों का सम्पादन जीव को सम्पन्न बनाता हैं।
- नरक के तीन द्वार कहे गये हैं– काम, क्रोध और लोभ। इनके द्वारा आत्मा का अधःपतन होता हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग करना चाहिए।
- व्यवहार धर्म के अभाव में धर्म तीर्थ का विच्छेद हो जायेगा और निश्चय धर्म के अभाव में मोक्ष का विच्छेद हो जायेगा। दोनों एक दूसरे के पूरक है।
- जैसे निर्जन वन में शेर द्वारा पकड़े गये हिरण के बच्चे की रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं, ऐसे ही मृत्यु के समय प्राणी की रक्षा को कोई समर्थ नहीं।
- भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ रूप संयम अवस्था को प्राप्त होता हुआ समस्त कर्म–मल रहित होकर शुद्ध हो जाता हैं।

- जिस प्रकार अग्नि में ईधन डालने से, खुजली को खुजलाने से वे मिटती नहीं और बढती जाती हैं, उसी प्रकार सांसारिक विषय वासना हैं, इच्छापूर्ति करने से वे मिटती नहीं अपितु बढ़ती है।

अध्याय–5

आर्यिका चंदनामती जी कृत सिद्धांत चिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद की समीक्षा

षट्खण्डागम ग्रंथ – एक परिचय

षट्खण्डागम ग्रंथ जैन धर्म का सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ हैं। ''जिसमें जैन धर्म के मूलमंत्र णमोकार मंत्र को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया था''[60]। (आर्यिका चंदनामती जी, 2009) षट्खण्डागम ग्रंथ अंग–पूर्व के एकदेश ज्ञाता आचार्य धरसेन की प्ररेणा से आचार्य पुष्पदंत व भूतबली द्वारा रचित सिद्धान्त ग्रंथ हैं। प्राकृत भाषा में लिखित यह ग्रंथ ताड़पत्रों पर अंकित हैं। वर्तमान में मूल ग्रंथ का पाठन दुर्लभ हैं। मूल ग्रंथ पर प्राचीन आचार्यों ने टीकाएँ लिखी जिनमें से वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका ही वर्तमान में सुलभ हैं। धवला टीका की भाषा प्राकृत–संस्कृत मिश्र हैं। मूल ग्रंथ की दुर्लभता के कारण वर्तमान में धवला टीका का जैन साहित्य में विशेष महत्व हैं इसलिये ग्रंथाधिराज का परिचय लिखते हुये आचार्य वीरसेन का परिचय लिखना नितांत आवश्यक हैं।

आचार्य परिचय

आचार्य धरसेन ने सिद्धान्त का ज्ञान दो मुनि शिष्यों को प्रदान किया, उस ज्ञान के फलस्वरूप दोनों महामुनियों ने षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथों की रचना की तथा जिन्होंने उन सूत्रों पर धवला टीका रचकर प्रदान की, ऐसे उन महान् आचार्यों (श्री धरसेनाचार्य, श्री पुष्पदन्ताचार्य, श्री भूतबली आचार्य, श्री वीरसेन आचार्य) के संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं–

श्री धरसेनाचार्य

भगवान महावीर स्वामी ने भावश्रुत का उपदेश दिया, अतः वे अर्थकर्ता हैं। उसी काल में चार ज्ञान से युक्त गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त्त में

60 आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक 1 पृष्ठ संख्या 41

क्रम से रचना की अतः भावश्रुत और अर्थपदों के कर्त्ता तीर्थंकर हैं तथा द्रव्यश्रुत के कर्त्ता गौतम गणधर हैं। उन गौतम स्वामी ने भी दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान लोहाचार्य को दिया। लोहाचार्य ने जम्बूस्वामी को दिया। परिपाटी क्रम से ये तीनों ही सकल श्रुत के धारण करने वाले महान् आचार्य गौतमस्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी तीनों निर्वाण को प्राप्त हुए। इनके पश्चात् पाँच आचार्य क्रम से चौहद पूर्व के धारी हुए। तदनन्तर ग्यारह महापुरूष ग्यारह अंग, दशपूर्व के धारक और शेष चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। इनके पश्चात् पाँच आचार्य सम्पूर्ण ग्यारह अंगों के और चौदह पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। तदनन्तर चार आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। "इनके पश्चात् सभी अंग और पूर्वों का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ"[61]। (आर्यिका चंदनामती, 2011)

सौराष्ट्र (गुजरात–काठियावाड़) देश के गिरिनार नाम के नगर की चंद्रगुफा में निवास करने वाले अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचन वत्सल धरसेनाचार्य थे। भविष्य में अंगश्रुत का विच्छेद हो जायेगा, इस प्रकार का विचार उनके मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ, तब धरसेनाचार्य ने महामहिमा (पंचवर्षीय साधु सम्मेलन) में सम्मिलित दक्षिणापथ के (दक्षिण देश के निवासी) आचार्यों के पास एक लेख भेजा। धरसेनाचार्य के वचनों को भली भांति समझकर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ विभिन्न प्रकार की उज्जवल और निर्मल विनय से विभूषित अंग वाले, शीलरूपी माला के धारक, उत्तम देश, कुल और जाति से शुद्ध अर्थात् उत्तम कुल और उत्तम जाति में उत्पन्न हुए, समस्त कलाओं में पारंगत ऐसे दो साधुओं को आंध्र देश में बहने वाली वेणानदी के तट से भेजा। मार्ग में उन दोनों मुनियों के आते समय श्री धरसेनाचार्य ने रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न देखा कि समस्त लक्षणों से परिपूर्ण, सफेद वर्ण वाले दो उन्नत बैल उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर चरणों में बैठ गये हैं। इस प्रकार के स्वप्न को देखकर संतुष्ट

[61] आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक–7 पृष्ठ संख्या 54

हुए धरसेनाचार्य ने "जयउ सुयदेवदा, श्रुतदेवता जयवन्त हो"[62] (आर्यिका चंदनामती, 2009) ऐसा वाक्य उच्चारण किया।

उसी दिन दक्षिणापथ से भेजे हुए वे दोनों साधु धरसेनाचार्य के समीप पहुँचे। वहाँ पहुॅचकर उन्होंने धरसेनाचार्य की पादवन्दना की और दो दिन बिताये, तीसरे दिन उन दोनों ने धरसेनाचार्य से निवेदन किया कि किस कार्य के लिये हम दोनों आपके पादमूल को प्राप्त हुए है? उन दोनों मुनियों के इस प्रकार निवेदन करने पर (कल्याण हो) धरसेन आचार्य ने उन साधुओं को आर्शीवाद प्रदान किया। इसके बाद आचार्य धरसेन ने विचार किया कि–

"शैलघन, भग्नघट, सर्प, चालनी, महिष, मेंढा, जोंक, तोता, मिट्टी और मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुत का व्याखान करता है, वह मूढ़ दृढ़रूप से ऋद्धि आदि तीनों प्रकार के गौरवों के अधीन होकर विषयों की लोलुपतारूपी विष के वश से मूर्च्छित हो, बोधि–रत्नत्रय की प्राप्ति से रहित होकर भव वन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता रहता है।" (जीव काण्ड)

इस वचन के अनुसार स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने वाले श्रोताओं को विद्या देना संसार और भय को ही बढ़ाने वाला है, धरसेनाचार्य ने ऐसा विचार किया। यद्यपि शुभ स्वप्न के देखने मात्र से ही उन दोनों साधुओं की विशेषता को जान लिया था, तो भी फिर से उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया क्योंकि उत्तम प्रकार से ली गई परीक्षा हृदय में संतोष उत्पन्न करती है। तब धरसेनाचार्य ने उन दोनों को दो विद्याएँ दीं। उनमें से एक अधिक अक्षर वाली थी और दूसरी हीन अक्षर वाली थी। उनको विद्याएँ देकर यह कहा कि दो दिन का उपवास करके इन विद्याओं करे सिद्ध करो। (इन्द्रनंदि आचार्य के अनुसार उन दोनों ने गुरू की आज्ञा से नेमिनाथ की निर्वाणस्थली पर जाकर विद्याओं को सिद्ध किया) जब उनकी विद्यायें ठीक से सिद्ध नहीं हो पाई, तब उन दोनों ने मंत्र की व्याकरण पर विचार किया। मंत्र संबंधी–व्याकरण शास्त्र में कुशल उन दोनों मुनियों ने हीन अक्षर वाली विद्या में अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अक्षर वाली विद्या में से अक्षर निकालकर मंत्र को फिर सिद्ध किया।

---

[62] आर्यिका चंदनामती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका पुस्तक 1 पृष्ठ संख्या 31

तदनन्तर आचार्य धरसेन के समक्ष विनय सहित उन दोनों मुनियों ने विद्यासिद्धि संबंधी समस्त वृतान्त निवेदित किया। तब संतुष्ट होकर धरसेनाचार्य ने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार में ग्रंथ को पढ़ाना प्रारंभ किया। इस तरह क्रम से व्याख्यान करते हुए धरसेन गुरूवर ने आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन पूर्वान्ह काल में विनयपूर्वक ग्रंथ समाप्त किया। गुरू धरसेनाचार्य ने अपनी आयु अल्प जानकर उन दोनों को वहाँ से विहार कर अन्यत्र चातुर्मास करने की आज्ञा दी और दोनों मुनि आषाढ़ सुदी एकादशी को वहाँ से श्रावण वदी चतुर्थी को अंकलेश्वर आये, वहाँ पर वर्षायोग स्थापित किया।"वर्षायोग को समाप्त कर और जिनपालित को साथ लेकर पुष्पदन्ताचार्य वनवासी देश चले गये और भूतबलि मुनि तमिल देश चले गये तदनन्तर पुष्पदन्ताचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्र बनाकर और जिनपालित मुनि को पढ़ाकर उन्हें भूतबलि आचार्य के पास भेजा। भूतबलि मुनि ने जिनपालित मुनि के द्वारा दिखाये गये सूत्रों को देखकर और पुष्पदन्ताचार्य अल्पायु हैं, ऐसा समझकर तथा हम दोनों के बाद महाकर्म प्रकृति प्राभृत का विच्छेद हो जायेगा; इस प्रकार के विचार उत्पन्न होने से उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रंथ रचना की। इसलिए इस खण्ड सिद्धान्त (षट्खण्ड सिद्धान्त) की अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्त्ता कहे जाते हैं। अनुग्रंथकर्त्ता गौतम स्वामी हैं और उपग्रंथकर्त्ता राग, द्वेष और मोह से रहित भूतबलि, पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य है"[63]। (आर्यिका चंदनामती, 2011)

आचार्य धरसेन का समय

नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में भगवान महावीर के पश्चात् 683 वर्ष के अन्दर ही श्री धरसेन आचार्य का काल माना गया है। अनुबद्ध–केवली का काल 62 वर्ष, श्रुत केवलियों का 100 वर्ष, दश पूर्वधारियों का 183, ग्यारह अंगधारियों का 123 वर्ष, दस नव व आठ अंगधारी का 97 वर्ष ऐसे 62+100+183+123+97=565 वर्ष हुए, पुनः एक अंगधारियों में अर्हतबलि का 28 वर्ष,

---

[63] आर्यिका चंदनामती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका पुस्तक 7 पृष्ठ संख्या 56

माघनंदि का 21 वर्ष, धरसेन का 19 वर्ष, पुष्पदंत का 30 वर्ष और भूतबलि का 20 वर्ष, ऐसे 118 वर्ष हुए। कुल मिलाकर 565+118=683 वर्ष के अंतर्गत ही धरसेनाचार्य हुए हैं।

इस प्रकार इस पट्टावली और इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार के आधार पर भी श्री धरसेन का समय दीक्षा निर्वाण संवत् 600 अर्थात् ई. सन् 73 के लगभग आता है।

आचार्य धरसेन के गुरू

उपर्युक्त पट्टावली के अनुसार ''आचार्य धरसेन के गुरू श्री माघनंदि आचार्य''[64] (आर्यिका चंदनामती, 2011) थे अथवा इन्द्रनन्दि आचार्य ने स्पष्ट लिखा है कि इनकी गुरू परम्परा के विषय में ज्ञान उपलब्ध नहीं है।

धरसेनाचार्य की रचना

धरसेनाचार्य ने अपने पास में पढ़ने के लिए आए हुए दोनों मुनियों को मंत्र सिद्ध करने का आदेश दिया था अतः ये मंत्रों के विशेष ज्ञाता थे। इनका बनाया हुआ योनिप्राभृत नाम का एक ग्रंथ वर्तमान में उपलब्ध है। यह ग्रंथ 800 श्लोक प्रमाण प्राकृत गाथाओं में है। उसका विषय मंत्र–तंत्रवाद है, वृहत् टिप्पणिका नामक सूची में उसका उल्लेख आया है। ''इसी ग्रंथ की एक पाण्डुलिपि भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना में है। इस प्रति में ग्रंथ का नाम योनिप्राभृत है किन्तु उसके कर्त्ता का नाम पण्हसवण मुनि बताया है''[65]। (डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, 1992) महामुनि ने उसे अपने शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलि के लिये लिखा। इन दो नामों के कथन से इस ग्रंथ का धरसेन कृत होना बहुत संभव प्रतीत होता है। प्रज्ञाश्रमणत्व एक ऋद्धि का नाम है उसके धारण करने वाले प्रज्ञाश्रमण कहलाते थे। पूना में उपलब्ध "जोणिपाहुड़" की इस प्रति का लेखन काल सं 1582 है अर्थात् वह प्रति चार सौ वर्ष से अधिक प्राचीन है। जोणिपाहुड़ ग्रंथ का उल्लेख धवला में भी आया है, जो इस प्रकार है–

---

[64] आर्यिका चंदनामती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका पुस्तक 7 पृष्ठ संख्या 56

[65] डा. नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, द्वितीय पुस्तक, पृष्ठ संख्या 46

जोणिपाहुडे भणिद–मंत–तंत–सत्तीओ पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्त्वो।।

धवला ग्रन्थ

इस प्रकार से धरसेनाचार्य के उपकार स्वरूप ही वर्तमान में षट्खण्डागम ग्रंथ का स्वाध्याय करने को मिल रहा है। उन्होंने बारहवें दृष्टिवाद अंग के अंतर्गत पूर्वों के तथा पाँचवें अंग व्याख्याप्रज्ञाप्ति के कुछ अंशों को पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों को पढ़ाया था। "दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यतानुसार षट्खण्डागम और कषायपाहुड़ ही ऐसे ग्रंथ हैं, जिनका सीधा संबंध महावीर स्वामी की द्वादशांग वाणी से माना जाता है।"

"जयउ धसेणणाहो, जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो।

बुद्धिसिरेणुद्धरिओ, समप्पिओ पुप्फयंतस्स"[66]।। धवला अ 475(आर्यिका ज्ञानमती, 2017)

वे धरसेन स्वामी जिन्होंने पुष्पदन्त मुनि को पढ़ाया है, उन्होंने ग्रंथ रचना की है। इस प्रकार से उन धरसेनाचार्य के इतिहास से प्रतीत होता है कि आचार्य अंग और पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता थे, मंत्र शास्त्र के ज्ञाता थे एवं योनिप्राभृत ग्रंथ की भी रचना की थी, इन्होंने बहुत काल तक चंद्रगुफा में निवास किया था योग्य मुनियों को श्रुतज्ञान पढ़ाया था। शिष्यों को मंत्र सिद्ध करने को भी दिया था। उन्होंने श्रुत के विच्छेद के भय से जो दो मुनियों को श्रुतज्ञान दिया जिसमें निमित्त से वर्तमान में श्रुतज्ञान की परम्परा अविच्छिन्न है। जिस दिन षट्खण्डागम की रचना पूरी हुई थी, उस दिन चतुर्विध संघ ने मिलकर श्रुत की महापूजा की थी, उस दिन ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी थी, उस पंचमी को वर्तमान में श्रुत पंचमी के रूप में श्रुत (आगम) की पूजा करके मनाया जाता हैं ,श्रुत पंचमी में गुरू धरसेनाचार्य, पुष्पदंत तथा भूतबलि आचार्य की भी पूजा की जाती है।

आचार्य श्री पुष्पदन्त और भूतबलि

[66] आर्यिका ज्ञानमती जी के प्रवचनों के आधार पर

पुष्पदन्त और भूतबलि का नाम साथ–साथ प्राप्त होता है। धरसेनाचार्य के बाद पुष्पदंताचार्य का आचार्य काल 30 वर्ष का बताया गया है और इनके बाद भूतबलि आचार्य का काल 20 वर्ष बताया गया है अतः इनका समय धरसेनाचार्य के समय के लगभग ही था।

विबुध श्रीधर के श्रूत्रावतार में भविष्यवाणी के रूप में पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य के जीवन पर प्रकाश देखने में आता है–

"भरत क्षेत्र के वामिदेश–ब्रह्मादेश में वसुन्धरा नाम की नगरी होगी। वहाँ के राजा नरवाहन और रानी सुरूपा पुत्र न होने से खेद खिन्न रहेगे। उस समय सुबुद्धि नाम के सेठ ने उन्हें पार्श्वनाथ भगवान की पूजा का उपदेश देगा। तदनुसार भगवान की पूजा करने पर राजा को पुत्र लाभ होगा, उस पुत्र का नाम पद्म रखा जायेगा। तदनन्तर राजा सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण करायेगा और प्रतिवर्ष यात्रा करेगा। सेठ भी राजा की कृपा से स्थान–स्थान पर जिनमंदिरों का निर्माण करायेगा। इसी समय बसन्त ऋतु में समस्त संघ यहाँ एकत्र होगा और राजा सेठ के साथ जिन पूजा करके रथ चलायेगा। इसी समय राजा अपने मित्र मगध सम्राट को मुनीन्द्र हुआ देख सुबुद्धि सेठ के साथ विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण करेगा। इसी समय एक लेखवाहक वहाँ आयेगा वह जिनदेव को नमस्कार कर मुनियों की तथा परोक्ष में धरसेन गुरूदेव की वंदना कर लेख समर्पित करेगा। वे मुनि उसे बाचेंगे कि "गिरिनगर के समीप गुफावासी धरसेन मुनीश्वर अग्रायणीय पूर्व की पंचमवस्तु के चौथे प्राभृतशास्त्र का व्याख्याान आरंभ करने वाले हैं अतः योग्य दो मुनियों को भेज दो। वे मुनि नरवाहन और सुबुद्धि मुनि को भेज देंगे। धरसेन आचार्य कुछ दिनों दो मुनियों को पठन, श्रवण और चिन्तन कराकर आषाढ़ शुक्ला एकादशी को शास्त्र समाप्त करेंगे। उनमें से एक की भूतजाति के देव बलिविधि करेंगे और दूसरे के चार दाँतों को सुन्दर बना देंगे। अतएव भूतबलि के प्रभाव से नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि और चार दाँत समान हो जाने से सुबुद्धि मुनि का नाम पुष्पदंत होगा"[67]। (आर्यिका ज्ञानमती, 2011)

[67] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक–7 पृष्ठ संख्या 57

वनवास देश में पुष्पदंताचार्य ने "बीसदि" सूत्रों की रचना की और जिनपालित को पढ़ाकर तथा उन सूत्रों को उसे देकर भूतबलि मुनि का अभिप्राय जानने के लिए भेजा। उन्होंने पुष्पदंताचार्य की अल्पायु जानकर और उन सूत्रों को देखकर बहुत ही संतोष प्राप्त किया पुनः आगे श्रुत का विच्छेद न हो जाये, इस भावना से द्रव्य प्रमाणानुगम को आदि लेकर आगे के सूत्रों की रचना की। इस प्रकार से भूतबलि आचार्य ने पुष्पदंताचार्य विरचित सूत्रों को मिलाकर पाँच खंडों के छह हजार सूत्र रचे और तत्पश्चात् महाबंध नामक छठे खण्ड की तीस हजार सूत्रा ग्रंथरूप रचना की। इस तरह षट्खण्डागम की रचना कर उसे ग्रंथ रूप में निबद्ध किया। पुनः ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उस श्रुत की महान् पूजा की। अनन्तर भूतबलि ने जिनपालित को षट्खण्डागम सूत्र देकर पुष्पदंत के पास भेजा। अपना सोचा हुआ कार्य पूर्ण हुआ, ऐसा देखकर पुष्पदंताचार्य ने भी श्रुतभक्ति के अनुराग से पुलकित होकर श्रुतपंचमी के दिन चतुर्विध संघ के समक्ष उनकी महान् पूजा की।

यह षट्खण्डागम ग्रंथ महाकर्म प्रकृति प्राभृत का अंश है तथा इसमें उसके अर्थ के साथ—साथ सूत्र भी समविष्ट हैं। भूतबलि आचार्य ने चतुर्थ वेदनाखंड में जो "णमोजिणाणं" आदि 44 मंगलसूत्र दिये है, वे गौतम स्वामी के मुखकमल से निकले हुए माने गये हैं। इससे श्री पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य इस महान् ग्रंथ के कर्त्ता नहीं है, बल्कि प्ररूपक हैं अतः षट्खण्डागम का द्वादशांगवाणी के साथ साक्षात् संबंध है।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की विषय वस्तु

यह ग्रंथ छह खण्डों में विभक्त है, अतः इसे षट्खण्डागम कहते है। उनके नाम—जीवट्ठाण, खुद्दाबंध, बंधसमित्तविचय, वेयणा, वग्गणा और महाबंध हैं। श्री धरसेनाचार्य, पुष्पदंत और भूतबलि के विषय में धवला में अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हैं।

"पणमामि पुप्फयंतं, दुकयंतं दंण्णयंधयाररविं।

भग्गसिवमग्गकंटय–मिसिसमिइवइं सया दंतं''[68] ।।(आर्यिका ज्ञानमती जी, 2009)

आचार्य वीरसेन ने धवला टीका की पुस्तक 1 के पृष्ठ 7 पर लिखा हैं जिसका अर्थ हैं–जो पापों का अन्त करने वाले हैं, कुनयरूपी अंधकार का नाश करने के लिए सूर्यतुल्य हैं, जिन्होंने मोक्षमार्ग के विघ्नों को नष्ट कर दिया है, जो ऋषियों की सभा के अधिपति हैं और निरन्तर पंचेन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, ऐसे पुष्पदन्ताचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ। यहाँ पर "ऋषिसमितिपति" विशेषण से ये महान् संघ के नेता आचार्य सिद्ध होते हैं। ऐसे ही–

"ण चासंबद्धं भूतबलिभडारओ परूवेदि महाकम्मपयडिपाहुड–अमियवाणेण ओसारिदा णंसरागदोसमोहत्तादो"[69] । धवला पुस्तक 10, पृष्ठ–274–275(आर्यिका ज्ञानमती जी, 2012)

भूतबलि आचार्य असंबद्ध कथन नहीं कर सकते, क्योंकि महाकर्म प्रकृति प्राभृतरूपी अमृतपान से उनका समस्त रागद्वेष मोह दूर हो गया है। इन प्रकरणों से इन पुष्पदंत और भूतबलि आचार्यों की महानता का परिचय मिल जाता है। ये आचार्य साधारण लेखक या वक्ता न होकर भगवान महावीर की द्वादशांग वाणी के अंशों के आस्वादी और उस वाणी के ही प्ररूपक थे तथा राग, द्वेष और मोह से बहुत दूर थे। उनके सज्वलन कषाय का उदय होते हुए भी वे असत्यभाषण से सर्वथा दूर होने से वीतरागी थे, महान् पापभीरू थे। उनके द्वारा शास्त्र से निबद्ध हुआ परमागम वर्तमान में उपलब्ध है। उनकी वाणी का स्वाध्याय करके सभी अपने असंख्यातगुणित कर्मों की निर्जरा कर सकते है तथा महान् पुण्य संचय के साथ–साथ ही सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य श्री वीरसेन

''जितात्मपरलोकस्य, कवीनां चक्रवर्तिनः।

वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलंकावभासते''[70] ।। (आचार्य जिनसेन, 1987)

---

[68] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक 1, पृष्ठ संख्या 35

[69] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक 7, पृष्ठ संख्या 59

अर्थात् जिन्होंने स्वपक्ष और परपक्ष के लोगों को जीत लिया हैं तथा जो कवियों के चक्रवर्ती हैं, ऐसे श्री वीरसेन स्वामी की निर्मल कीर्ति प्रकाशित हो रही हैं।

जीवन परिचय

आचार्य वीरसेन जी ने स्वयं अपनी धवला टीका की प्रशस्ति में अपने गुरू का नाम ऐलाचार्य लिखा हैं परन्तु इसी प्रशस्ति की चौथी गाथा में गुरू का नाम आर्यनंदि और दादा गुरू का नाम चंद्रसेन कहा हैं। डॉ. हीरालाल जैन के अनुसार ऐलाचार्य इनके विद्यागुरू और आर्यनंदि इनके दीक्षागुरू थे।

इस प्रशस्ति से श्री वीरसेनाचार्य सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण और न्याय के वेत्ता तथा भट्टारक पद से विभूषित थे, ऐसा स्पष्ट हैं। ऐलाचार्य गुरू का वात्सल्य इन पर असीम था, ऐसा स्पष्ट है, वे किसी न किसी रूप में इनके गुरू अवश्य थे। यथा– "एलाइरियवच्छओ" स्वयं इस वाक्य में अपने को ऐलाचार्य का "वत्स" कहते हैं। ऐसे और भी अनेक स्थलों पर स्वयं आचार्य ने स्वयं को ऐलाचार्य का वत्स लिखा हैं।

समय निर्णय

इनके शिष्य जिनसेनाचार्य जी ने इनकी अपूर्ण जयधवला टीका को शक संवत् 759 (ईसवी सन् 837) की फाल्गुन शुक्ला दशमी को पूर्ण किया था। अतः इस तिथि के पूर्व ही वीरसेनाचार्य का समय होना चाहिए इसलिए इनका समय ईसवी सन् की 9वीं शताब्दी (816) का हैं।

वीरसेन स्वामी की रचनाएं

इनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं। एक धवला टीका और दूसरी जयधवला टीका। इनमें से द्वितीय टीका तो अपूर्ण रह गयी थी।

---

[70] आचार्य जिनसेन, हरिवंश पुराण, सर्ग 1

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में लिखा है कि “षट्खण्डागम” सूत्र पर श्री वप्पदेव की टीका लिखे जाने के उपरान्त कितने ही वर्ष बाद सिद्धान्तों के वेत्ता ऐलाचार्य हुए, ये चित्रकूट में निवास करते थे, श्री वीरसेन आचार्य ने उनके पास सम्पूर्ण सिद्धान्त ग्रंथों का अध्ययन किया, अनन्तर गुरू की आज्ञा लेकर वाटग्राम में पहुँचे, वहाँ पर आनतेन्द्र द्वारा बनवाये गये जिनमंदिर में ठहरे। वहाँ पर श्री वप्पदेवकृत टीका पढ़ी। अनन्तर उन्होंने 72000 श्लोक प्रमाण में समस्त षट्खण्डागम पर “धवला” नाम से टीका की। यह टीका प्राकृत और संस्कृत भाषा में मिश्रित होने से “मांणेप्रवालन्याय” से प्रसिद्ध है। दूसरी रचना “कसायपाहुड” सुत्त पर “जयधवला” नाम से टीका है। इसको वे केवल 20000 श्लोक प्रमाण ही लिख पाये थे कि वे असमय में स्वर्गस्थ हो गये। इस प्रकार एक आचार्य ने अपने जीवन में 92000 श्लोक प्रमाण रचना लिखी, यह एक आश्चर्य की बात है। श्री वीरसेन स्वामी ने वह कार्य किया है, जो कार्य महाभारत के रचयिता ने किया है। महाभारत का प्रमाण 100000 श्लोक है और इनकी टीकाएं भी लगभग इतनी ही बड़ी हैं। इन टीकाओं से आचार्य के ज्ञान की विशेषता के साथ–साथ सैद्धान्तिक विषयों का कितना सूक्ष्म तलस्पर्शी इनका अध्ययन था, यह दिख जाता है। वीरसेनाचार्य ने अपनी टीका में जिन आचार्यों के नाम का निर्देश ग्रन्थोल्लेखपूर्वक किया है, वे निम्न प्रकार हैं–

1. गृद्धपिच्छाचार्य का तत्त्वार्थसूत्र 2. तत्त्वार्थभाष्य (तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य)
3. सन्मतिसूत्र 4. सत्कर्म प्राभृत 5. पिंडिया 6. तिलोयपण्णत्ति
4. व्याख्याप्रज्ञप्ति 8. पंचास्तिकाय प्राभृत 9. जीवसमास 10. पूज्यपाद विरचितसारसंग्रह 11. प्रभाचंद्र भट्टारक (ग्रंथकार) 12. समंतभद्र स्वामी (ग्रंथकार) 13. छंदसूत्र 14. सत्कर्म प्रकृति प्राभृत 15. मूलतंत्र 16. योनिप्राभृत और सिद्धिविनिश्चय और भी ग्रंथों के उद्धरणों या नाम का उल्लेख धवला टीका में पाया जाता है।

धवला टीका में जिन गाथाओं को उद्धत किया है, उनमें से अधिकांश गाथाएँ गोम्मटसार, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ओर वसुनंदिश्रावकाचार में भी पायी जाती हैं अतः यह अनुमान

होता है कि इन प्राचीन गाथाओं का स्त्रोत एक ही रहा है, क्योंकि गोम्मटसार आदि ग्रंथ धवला टीका से बाद के ही है।

जयधवला की प्रशस्ति में कहा है–**"टीका श्री वीरसेनीया शेषाः पद्धतिपंजिका"**[71] (आर्यिका ज्ञानमती जी, 2011) अर्थात् श्री वीरसेन की टीका ही यथार्थ टीका है, शेष टीकाएँ तो पद्धति या पंजिका हैं। वास्तव में श्री वीरसेन स्वामी को महाकर्म प्रकृति प्राभृत और कषायप्राभृतसंबंधी जो भी ज्ञान गुरू परम्परा से उपलब्ध हुआ, उसे इन दोनों टीकाओं में यथावत् निबद्ध किया है। आगम की परिभाषा में ये दोनों टीकाएँ दृष्टिवाद के अंगभूत दोनों प्राभृतों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अतएव इन्हें यदि स्वतंत्र ग्रंथ संज्ञा दी जाये तो भी अनुपयुक्त नहीं है। यही कारण है कि आज "षट्खण्डागम" सिद्धान्त धवलसिद्धान्त के नाम से और "पेज्जदोसपाहुड़" जयधवला सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ज्योतिष एवं गणित विषय

इस महासिद्धान्त ग्रंथ में ज्योतिष, निमित्त और गणित विषय की भी महत्वपूर्ण चर्चायें हैं। 5वीं शताब्दी से लेकर 8वीं शताब्दी तक ज्योतिष विषयक इतिहास लिखने के लिए इनका यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी है। ज्योतिष संबंधी चर्चाओं में नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञाओं के नाम हैं। दिन–रात्रि, मुहूर्त की चर्चा है। निमित्तों में व्यंजन और छिन्न निमित्तों की चर्चायें हैं। इसमें प्रधानरूप से एक वर्ग समीकरण, अनेक वर्ग समीकरण, करणी, कल्पितराशियाँ, समानान्तर, गुणोत्तर, व्युत्क्रम आदि बीजगणितसंबंधी प्रक्रियायें हैं।

''श्री वीरसेन स्वामी आचार्यों के वचनों को साक्षात् भगवान् की वाणी समझते थे और परस्पर विरूद्ध प्रकरण में कितना उत्कृष्ट समाधान दिया है, इससे इनकी पापभीरूता सहज ही परिलक्षित होती है। "आगम का यह अर्थ प्रामाणिक गुरु परम्परा के क्रम से आया है, यह कैसे निश्चय किया जाये? नहीं, क्योंकि.................ज्ञान विज्ञान से युक्त इस युग के अनेक आचार्यों के

---

[71] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक 7, पृष्ठ संख्या 61

उपदेश से उसकी प्रमाणता जाननी चाहिए''[72]। (धवला पुस्तक 1, पृष्ठ संख्या 197) (ज्ञानमती, 2009)

श्री वीरसेन स्वामी जयधवला टीका करते समय गाथा सूत्रों को और चूर्णि सूत्रों का कितनी श्रद्धा से देखते है–

"विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रगट होकर गौतम, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परम्परा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथास्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ति के द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुखकमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं''[73]। (धवला पुस्तक 1, पृष्ठ संख्या 222, 223) (ज्ञानमती, 2009)

इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि कषायप्राभृत ग्रंथ साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि के समान हैं।

आचार्य वीरसेन कृत धवला टीका ताडपत्रों पर लिखित रूप में मूडबद्री जी में विराजमान हैं। जिनका जीर्णोद्धार आचार्य श्री शांतिसागर जी की प्रेरणा से कराया गया था।

सिद्धान्त चिंतामणि टीका – एक परिचय

षट्खण्डागम ग्रंथ के नाम की सार्थकता छह खण्डों से है। इनके नाम हैं– 1. जीवस्थान, 2. क्षुद्रकबंध, 3. बंधस्वामित्वविचय, 4. वेदनाखण्ड 5. वर्गणाखण्ड 6. महाबंध। षट्खण्डागम ग्रंथ में वर्तमान में प्रारंभ के पाँच खण्डों पर श्री वीरसेनाचार्यकृत धवलाटीका प्रसिद्ध है। छठाखण्ड महाधवला नाम से प्रसिद्ध है। धवला टीका सहित पाँच खण्डों का वर्तमान में हिन्दी अनुवाद सहित सोलह पुस्तकों में प्रकाशन हो चुका है। यह धवलाटीका प्राकृत भाषा में है। कहीं–कहीं संस्कृत मिश्रित है।

---

[72] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक 1, पृष्ठ संख्या 38

[73] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक 1, पृष्ठ संख्या 38

इन पाँच खण्डों पर धवलाटीका के आधार से एवं अन्य ग्रंथों के भी उद्धरण को लेकर षट्खण्डागम ग्रंथ के सूत्रसें पर धवला टीका के समान सिद्धांतचिंतामणि नाम से मौलिक संस्कृत टीका आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा लगभग 32000 पृष्ठों में लिखी गयी है और सोलह पुस्तकों में निबद्धपाँच खण्ड विभक्त किये हैं।

प्रथम खण्ड–जीवस्थान

सिद्धांत चिंतामणि ग्रंथ के प्रथम खण्ड़ की प्रथम पुस्तक में मंगलाचरण के रूप में सिद्ध शिला पर विराजित अनंत सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया गया हैं

''सिद्धान्सिद्धर्यिमानम्य, सर्वांस्त्रैलोक्यमूर्द्धगान्।

इष्टः सर्वक्रियान्तेऽसौ, शान्तीशो हृदि धार्यते''[74]। (ज्ञानमती, 2009)

'जीवस्थान' नाम के प्रथम खण्ड में– 1.सत्प्ररूपणा, 2.द्रव्यप्रमाणानुगम, 3.क्षेत्रानुगम, 4. स्पर्शनानुगम, 5. कालानुगम, 6. अन्तरानुगम, 7. भावानुगम और 8. अल्पबहुत्वानुगम ये आठ अनुयोगद्वार हैं। अंत में नव चूलिकाएँ हैं। इनमें प्रथम सत्प्ररूपणा में गुणस्थान एवं मार्गणाओं का वर्णन है। इन आठ अनुयोगद्वार एवं नव चूलिकाओं में विभक्त प्रथमखंड में छह पुस्तकें हैं।

द्वितीय खण्ड –क्षुद्रकबंध

प्राकृत भाषा में 'खुद्दाबंध' कहते हैं एवं संस्कृत भाषा में 'क्षुद्रकबंध' नाम है।

क्षुद्रक बंध कहने का अभिप्राय यह है कि–भूतबलि आचार्य ने 'तीस हजार' सूत्रों में 'महाबंध' नाम से छठा एक स्वतंत्र खण्ड बनाया है। इसीलिए 1594 सूत्रों में रचित यह खण्ड 'क्षुद्रकबंध' नाम से सार्थक है। इस ग्रंथ की टीका को आर्यिका ज्ञानमती जी ने 'पद्मपुरा' तीर्थ पर प्रारंभ किया था अतः मंगलाचरण में श्रीपद्मप्रभ भगवान को नमस्कार किया है। यथा–

''श्रीपद्मप्रभदेवाय, विश्वातिशयकारिणे।

[74] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका पुस्तक 1 पृष्ठ संख्या 116

नमोऽभीप्सितसिद्धयर्थं, ते च दिव्यध्वनिं नुमः'' ।।

इस खण्ड में जीवों की प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषण को छोड़कर मार्गणा स्थानों में की गई है। इन ग्यारह अनुयोगद्वारों के नाम– 1. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व 2. एक जीव की अपेक्षा काल 3. एक जीव की अपेक्षा अन्तर 4. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय 5. द्रव्यप्रमाणानुगम 6. क्षेत्रानुगम 7. स्पर्शनानुगम 8. नाना जीवों की अपेक्षा काल 9. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर 10. भागाभागानुगम 11. अल्पबहुत्वानुगम। अंत में ग्यारहों अनुयोगद्वारों की चूलिका रूप से 'महादण्डक' दिया गया है। यद्यपि इसमें अनुयोगद्वारों की अपेक्षा 11 अधिकार ही हैं फिर भी प्रारंभ में प्रस्तावना रूप में बंधक सत्त्वप्ररूपणा' और अंत में चूलिका रूप में महादण्डक कहे गये हैं।

बंधक सत्त्वप्ररूपणा– इसमें 43 सूत्र हैं। जिनमें चौहद मार्गणाओं के भीतर कौन जीव कर्मबंध करते हैं और कौन नहीं करते, यह बतलाया गया है।

1. **एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व–** इस अधिकार में मार्गणाओं संबंधी गुण व पर्याय कौन से भावों से प्रगट होते हैं, इत्यादि विवेचन हैं।
2. **एक जीव की अपेक्षा काल–** इस अनुयोगद्वार में प्रत्येक गति आदि मार्गणा में जीव की जघन्य और उत्कृष्ट काल स्थिति का निरूपण किया गया है।
3. **एक जीव की अपेक्षा अंतर–** एक जीव का गति आदि मार्गणाओं के प्रत्येक अवान्तर भेद से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल–विरहकाल कितने समय का होता है?
4. **नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय–** भंग–प्रभेद, विचय–विचारणा, इस अधिकार में भिन्न–भिन्न मार्गणाओं में जीव नियम से रहते हैं या कभी रहते हैं या कभी नहीं भी रहते हैं, इत्यादि विवेचना है।
5. **द्रव्यप्रमाणानुगम–** भिन्न–भिन्न मार्गणाओं में जीवों का संख्यात, असंख्यात और अनंतरूप से अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी आदि काल प्रमाणों की अपेक्षा वर्णन है।

6. **क्षेत्रानुगम–** सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँचों लोकों के आश्रय से स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है।

7. **स्पर्शनानुगम–** चौदह मार्गणाओं में सामान्य आदि पाँचों लोकों की अपेक्षा वर्तमान और अतीतकाल के निवास को दिखाया है।

8. **नाना जीवों की अपेक्षा कालानुगम–** नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनंत, अनादिसांत, सादि सान्त काल भेदों को लक्ष्य करके जीवों की काल प्ररूपणा की गई है।

9. **नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम–** मार्गणाओं में नाना जीवों की अपेक्षा बंधकों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल का निरूपण किया गया है।

10. **भागाभागानुगम–** इसमें मार्गणाओं के अनुसार सर्वजीवों की अपेक्षा बंधकों के भागाभाग का वर्णन है।

11. **अल्पबहुत्वानुम–** चौदह मार्गणाओं के आश्रय से जीवसमासों का तुलनात्मक प्रमाण प्ररूपित किया है।

अनन्तर चूलिकारूप 'महादण्डक' अधिकार में गर्भोपक्रांतिक मनुष्य पर्याप्त से लेकर निगोद जीवों तक के जीवसमासों का 'अल्पबहुत्व' निरूपित है।

इस प्रकार क्रमशः इस द्वितीय खण्ड में सूत्रों की संख्या–

43+91+216+151+23+171+124+274+55+68+88+205+79=1594 है। सिद्धांतचिंतामणि टीका में पृष्ठ संख्या–285 है। यह खण्ड सातवीं पुस्तक में हैं।

तृतीयखण्ड –बंधस्वामित्वविचय

बंध के स्वामी के विषय में विचार किया गया हैं। यथा–

''जीवकम्माणं मिच्छात्तासंजमकसायजोगेहि एयत्तपरिणामो बंधो।''

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम होता है, वह बंध है और बंध के वियोग को मोक्ष कहते हैं।

इस खण्ड़ में क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति है? क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है? इत्यादि प्रश्नों की 23 पृच्छा पूछी गयी हैं। पुन इनका उत्तर दिया गया हैं । इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल 324 सूत्र है। यह खंड आठवीं पुस्तक में पूर्ण है।

चतुर्थ खण्ड –वेदनाखण्ड

चौदह पूर्वों में द्वितीय पूर्व 'अग्रायणीर्यपूव' है। इसके चौदह अर्थाधिकार हैं– 1. पूर्वान्त, 2. अपरांत, 3. ध्रुव, 4. अध्रुव, 5. चयनलब्धि, 6. अध्रुवसंप्रणिधान, 7. कल्प, 8. अर्थ, 9. भौमावयाद्य, 10. कल्पनिर्याण, 11. अतीतकाल, 12. अनागतकाल, 13. सिद्ध और 14. बुद्ध।

यहाँ पाँचवीं "चयनलब्धि" नाम का पाँचवाँ अर्थाधिकार है। इसमें बीस प्राभृत हैं। इनमें से 'कर्मप्रकृतिप्राभृत' चतुर्थ अधिकार माना गया है। यहाँ "महाकर्मप्रकृतिप्राभृत" संग्रहीत है।

इस चतुर्थ "कर्मप्रकृतिप्राभृत" में 'चौबीस अनुयोगद्वार' हैं। 1. कृति, 2. वेदना, 3. स्पर्श, 4. कर्म, 5. प्रकृति, 6. बंधन, 7. निबंधन, 8. प्रक्रम, 9. उपक्रम, 10. उदय, 11. मोक्ष, 12. संक्रम, 13. लेश्या, 14. लेश्याकर्म, 15. लेश्यापरिणाम, 16. सातासात, 17. दीर्घ–ह्रस्व, 18. भवधारणीय, 19. पुदलात्त, 20. निधत्तानिधत्त, 21. निकाधितानिकाचित, 22. कर्मस्थिति, 23. पश्चिमस्कंध और 24. अल्पबहुत्व।

चतुर्थ वेदनाखण्ड में 4 पुस्तके हैं।

वेदनाखण्ड में पुस्तक 9 के प्रारंभ में मंगलाचरण में श्रीगौतमस्वामी कृत 44 गणधरवलय मंत्र है। यथा–

"वेदणात्ति। तत्थ इमाणि वेयणाए सोलह अणुयोगद्यारााणि णादव्वाणि भवंति–वेदणाणिक्खेवे...........।

द्वितीय वेदनानुयोगद्वार में ही वेदनाखण्ड पूर्ण हो गया है। इसमें 10,11 और 12 ऐसी तीन पुस्तकें है।

पंचम खण्ड– वर्गणा खण्ड़

वर्गणाखण्ड नाम के पाँचवे खण्ड में शेष 22 अनुयोगद्वारों का कथन है। इसमें 13,14,15,16 ऐसी चार पुस्तकें हैं।

इन चौबीस अनुयोगद्वारों के प्रारंभ में चौबीस तीर्थंकर स्त्रोत हैं जो कि 'कल्याणकल्पतरुस्तोत्र' नाम से प्रसिद्ध हैं। उस स्तोत्र से एक–एक तीर्थंकर भगवन्तों का स्तोत्र लिया हैं। इसका कारण यह है कि इन मुख्य अनुयोगद्वारों की पहचान अलग से होना चाहिए।

सिद्धान्त चिंतामणि संस्कृत टीका की विषय वस्तु

आर्यिका श्री ने इस महाग्रंथराज की सिद्धान्तचिंतामणि संस्कृत टीका लिखते हुए समयसार, प्रवचनसार की तास्पर्यवृद्धि टीका लिखने वाले श्रीजयसेनाचार्य का अनुसरण किया है। अतः इस टीका में प्रारंभ में महाधिकार, अधिकार, स्थल और अन्तरस्थल आदि का विभाजन किया हैं। इस कार्य में उन्होंने पहले आद्योपान्त ग्रंथ का अवलोकन करके विषय के अनुसार विभाजन किया है।

इस 'सिद्धान्तचिंतामणिटीका' में इसी प्रकार से सोलह ग्रंथों में अधिकार आदि का विभाजन किया है।

इस षट्खण्डागम में मूल में छह खंडों का ही विभाजन है। फिर भी जो पाँच खंडों में सोलह पुस्तकें विभक्त हैं, वे हिन्दी अनुवाद में प्रकाशित ग्रंथ के अनुसार विद्वानों द्वारा ही विभाजित की गई हैं। इसी के अनुसार आर्यिका श्री ने भी सोलह ग्रंथों में विभाजन किया है। किन्हीं ग्रंथों में कुछ अंतर किया है।

पूर्वाचार्यों द्वारा रचित षट्खण्डागम की टीकायें

इस 'षट्खण्डागम' ग्रंथराज पर छह टीकायें लिखी गई हैं, ऐसा आगम में उल्लेख है। उनके नाम–

1. श्री कुन्दकुन्ददेव ने तीन खण्डों पर 'परिकर्म' नाम से टीका लिखी है जो कि 12 हजार श्लोकप्रमाण थी।

2. श्री शामकुंडाचार्य ने 'पद्धति' नाम से टीका लिखी है जो कि संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ मिश्र थी, ये पांच खण्डों पर थी और 12 हजार श्लोकप्रमाण थी।
3. श्री तुंबुलूर आचार्य ने 'चूड़ामणि' नाम से टीका लिखी। छठा खण्ड छोड़कर षट्खण्डागम और कषायप्राभृत दोनों सिद्धान्त ग्रंथों पर यह 84 हजार श्लोकप्रमाण थी।
4. श्री समंतभद्रस्वामी ने संस्कृत में पांच खण्डों पर 48 हजार श्लोकप्रमाण टीका लिखी।
5. श्री वप्पदेवसूरि ने 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नाम से टीका लिखी, यह पांच खण्डों पर और कषायप्राभृत पर थी एवं 60 हजार श्लोकप्रमाण प्राकृत भाषा में थी।
6. श्री वीरसेनाचार्य ने छहों खण्डों पर प्राकृत–संस्कृत मिश्र टीका लिखी, यह 'धवला' नाम से टीका है एवं 72 हजार श्लोकप्रमाण है।

वर्तमान में इनमें से पांच टीकाएं उपलब्ध नहीं हैं, मात्र श्री वीरसेनाचार्य कृत 'धवला' टीका ही उपलब्ध है जिसका हिंदी अनुवाद होकर छप चुका है। इस ग्रंथ को ताड़पत्र से लिखाकर और हिंदी अनुवाद कराकर छपवाने का श्रेय इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसार जी महाराज को हैं। उनकी कृपाप्रसाद से हम सभी इन ग्रंथों के मर्म को समझने में सफल हुये हैं।

इस महान ग्रंथ के पढ़ते समय असंख्यातगुणश्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा होती है, इन्हीं भावों को लेकर अपने ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को बढ़ाने के लिए, आत्मा की विशुद्धि और सिद्धि के लिए ही आर्यिका श्री ने यह टीका लिखी है।

हस्तिनापुर तीर्थ पर वीर निर्वाण संवत् 2521 (ईसवी सन् 1955) में आर्यिका ज्ञानमती जी ने यह सिद्धांतचिंतामणिटीका प्रारंभ की थी। इस मध्य अनेक तीर्थों की यात्राएँ, अनेक प्रतिष्ठा आदि महामहोत्सव कार्य समपन्न हुए हैं। उस मध्य में उनका लेखन कार्य चलता रहा है। पुनः हस्तिनापुर में ही वीर निर्वाण संवत् 2533 (ईसवी सन् 2007) में उन्होंने यह टीका पूर्ण की है। उस समय वैशाख कृष्ण 2 को टीका पूर्ण हुई और वैशाख शुक्ल 15 को तेरहद्वीप के जिनबिम्बों का पंचकल्याणकमहोत्सव पूर्ण होकर तेरहद्वीप जिनालय के शिखर पर स्वर्ग कलाशारोहण हुआ।

धवला टीका (प्रथम खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (प्रथम खण्ड)
पुस्तक 1 – सत्प्ररूपणा सूत्र – 177	पुस्तक 1 – सत्प्ररूपणा सूत्र – 177, पृ. 164 प्रारंभ – आश्विन शुक्ल 15, शरदपूर्णिमा वीर निर्वाण संवत् 2521 दिनाँक– 8–10–1995, प्रातः 11.25 समापन – फाल्गुन शुक्ल 7. वीर निर्वाण संवत् 2522, पिड़ावा (राजस्थान) दिनाँक– 25–2–1996
पुस्तक 2 – आलाप अधिकार (सूत्र नहीं हैं)	पुस्तक 2 – आलाप अधिकार (सूत्र नहीं है), पृ. 90 प्रारंभ – चैत्र कृष्ण 1, वीर निर्वाण संवत् 2522, उज्जैन–जयसिंहपुरा मंदिर में, दिनाँक– 6–3–1996 समापन – माघ शुक्ल 5, वीर निर्वाण संवत् 2525, हस्तिनापुर, दिनाँक–22–1–1999
पुस्तक 3 – द्रव्यप्रमाणानुगम सूत्र –192	पुस्तक 3 – द्रव्याप्रमाणानुगम–क्षेत्रानुगम सूत्र – 284(192+92=284), पृष्ठ

	131 प्रारंभ – वैशाख शुक्ल 12, वीर निर्वाण संवत् 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक– 30–4–1996 समापन – श्रावण कृष्ण 10, वीर निर्वाण संवत् 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक–8–8–1996
पुस्तक 4 – क्षेत्र – स्पर्शन–कालानुगम सूत्र – 619	पुस्तक 4 – स्पर्शनानुगम–कालानुगम सूत्र – 527(185+342=527), पृष्ठ 190 प्रारंभ – श्रावण कृष्ण 10, वीर निर्वाण संवत् 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक–8–8–1996 समापन – भाद्र शुक्ल 3, वीर निर्वाण संवत् 2522, मांगीतुंगी, दिनाँक–15–9–1996
पुस्तक 5 – अंतरानुगम–भावानुगम–अल्पबहुत्वानुगम सूत्र – 872	पुस्तक 5 – अंतरानुगम–भावानुगम–अल्प–बहुत्वानुगम सूत्र –872, पृष्ठ 193 प्रारंभ – भाद्रपद शुक्ल 3, वीर निर्वाण संवत् 2522, मांगीतुंगी,दिनाँक–15–9–1996, अपराण्ह 5:8 बजे

	समापन – मार्गशीर्ष कृष्ण 7, वीर निर्वाण संवत् 2523, अंकलेश्वर (गुजरात) दिनाँक–2–12–1996, सोमवार
पुस्तक 6 – जीवस्थान चूलिका सूत्र – 515	पुस्तक 6 – जीवस्थान चूलिका सूत्र – 515, पृष्ठ 187 प्रारंभ – मगसिर कृष्ण 7, वीर निर्वाण संवत् 2523, अंकलेश्वर (गुजरात) दिनाँक–2–12–1996 समापन – फाल्गुन कृष्ण 13, वीर निर्वाण संवत् 2523, माधोराजपुरा (राजस्थान) दिनाँक–7–3–1996
(द्वितीय खण्ड) पुस्तक 7 – क्षुद्रकबंध सूत्र – 1594	**(द्वितीय खण्ड)** पुस्तक 7 – क्षुद्रकबंध सूत्र – 1594, पृष्ठ 285 प्रारंभ – फाल्गुन शुक्ल 1, वीर निर्वाण संवत् 2523, पद्मपुरा अतिशय क्षेत्र दिनाँक–10–3–2008 समापन – मार्गशीर्ष शुक्ल 13, वीर निर्वाण संवत् 2524,

	हस्तिनापुर, दिनाँक–12–12–2008
(तृतीय खण्ड) पुस्तक 8 – बंधस्वामित्वविचय सूत्र – 324	**(तृतीय खण्ड)** पुस्तक 8 – बंधस्वामित्व विचय सूत्र – 324, पृष्ठ 230 प्रारंभ – मार्गशीर्ष शुक्ल 13, वीर निर्वाण संवत् 2524, हस्तिनापुर दिनाँक–12–12–2008 समापन – द्वि. ज्येष्ठ शुक्ल 5, श्रुतपंचमी, वीर निर्वाण संवत् 2525, ऋषभदेव कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली, दिनाँक–18–6–1999

धवला टीका (चतुर्थ खण्ड)	**सिद्धान्तचिंतामणि टीका (चतुर्थ खण्ड)**
(चतुर्थ खण्ड) पुस्तक 9 – कृति अनुयोगद्वार सूत्र – 76	**(चतुर्थ खण्ड)** पुस्तक 9 – कृति अनुयोगद्वार सूत्र – 76, पृष्ठ 140 प्रारंभ – शरद् पूर्णिमा, वीर निर्वाण संवत् 2525, जयसिंहपुरा, नई दिल्ली दिनाँक–24–10–1999 समापन – शरद् पूर्णिमा, वीर निर्वाण संवत्,

	2526, ऋषभदेव कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली, दिनाँक–13–10–2000
पुस्तक 10 – वेदना निक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना द्रव्यविधान सूत्र – 213+11=224	पुस्तक 10 – वेदनानिक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना द्रव्यविधान, वेदनाक्षेत्र सूत्र – 323, पृष्ठ 120 प्रारंभ – आश्विन शुक्ल 15, कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली दिनाँक–13–10–2000 समापन – वैशाख कृष्ण 7, वीर निर्वाण संवत् 2528, शौरीपुर–बठेश्वर, दि. –3–5–2002
पुस्तक 11 – वेदनाक्षेत्र, वेदना काल सूत्र – 378	पुस्तक 11 – वेदनाकाल, वेदनाभाव, तीन चूलिका सूत्र – 593, पृष्ठ 225 प्रारंभ – वैशाख कृष्ण 7, वीर निर्वाण संवत् 2528, शौरीपुर–बटेश्वर, दि. –3–5–2002 समापन – श्रावण शुक्ल 7, वीर निर्वाण संवत् 2529 दिनाँक–4–8–2003, पावापुरी (बिहार)
पुस्तक 12 – वेदनाभाव से शेष 10 भेद सूत्र – 847	पुस्तक 12 – वेदनाप्रत्यय, वेदनास्वामित्व आदि 9 भेद हैं। सूत्र–533, पृष्ठ 175

	प्रारंभ – श्रावण कृष्ण 10, वीर निर्वाण संवत् 2529, कुण्डलपुर, दिनाँक–24–7–2003 समापन – मगशिर शुक्ल 13, वीर निर्वाण संवत् 2530, राजगृही, दिनाँक–6–12–2003

धवला टीका (पंचम खण्ड)	**सिद्धान्तचिंतामणि टीका (पंचम खण्ड)**
(पंचम खण्ड) पुस्तक 13 – स्पर्श, कर्म, प्रकृति अनुयोगद्वार सूत्र – 206	पुस्तक 13 – स्पर्श, कर्म, प्रकृति, अनुयोगद्वार सूत्र – 206 पृष्ठ 257 प्रारंभ – पौष कृष्ण 11, वीर निर्वाण संवत् 2530, कुण्डलपुर, दिनाँक 19–12–2003 समापन – श्रावण शुक्ल 7, वीर निर्वाण संवत् 2530 दिनाँक–22–8–2004 कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार
पुस्तक 14 – बंधन अनुयोगद्वार सूत्र – 797	पुस्तक – बंधन अनुयोगद्वार। सूत्र – 797, पृष्ठ 351 प्रारंभ – आश्विन शुक्ल 15, वीर निर्वाण संवत् 2530, कुण्डलपुर, दिनाँक–28–10–2004 समापन – फाल्गुन कृष्ण 11, वीर निर्वाण संवत् 2532,

	हस्तिनापुर, दिनाँक–24–2–2006
पुस्तक 15 – निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, अनुयोगद्वार सूत्र – 20	पुस्तक 15 – निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, अनुयोगद्वार। निबंधन के 20 सूत्र, पृष्ठ 195 प्रारंभ – फाल्गुन कृष्ण 11, वीर निर्वाण संवत् 2532, हस्तिनापुर, दिनाँक–24–2–2006 समापन – आश्विन शुक्ल 15–शरद् पूर्णिमा वीर निर्वाण संवत् 2532, हस्तिनापुर, दिनाँक–6–10–2006
पुस्तक 16 – मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्या–कर्म, लेश्यापरिणाम, साता–सात, दीर्घ–ह्रस्व, भवधारणीय, पुदलात्त, निधत्तनिधत्त, निका–चितानिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिम–स्कंध, अल्पबहुत्व। इस प्रकार 16वीं पुस्तक में मोक्ष से लेकर अल्पबहुत्व तक 14 अनुयोगद्वार हैं। इसमें सूत्र नहीं हैं तथा कृति, वेदना, स्पर्श आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक 24 अनुयोगद्वार हैं। ये सभी अनुयोगद्वार पुस्तक 9वीं से 16वीं तक विभक्त हैं।	पुस्तक 16 – संक्रम से लेकर अल्पबहुत्व तक 13 अनुयोगद्वार हैं। (सूत्र नहीं है) कुल पृष्ठ 225 हैं। प्रारंभ – कार्तिक शुक्ल 1, वीर निर्वाण संवत् 2533 हस्तिनापुर, दिनाँक–23–10–2006 समापन – वैशाख कृष्ण 2, वीर निर्वाण संवत् 2533, हस्तिनापुर, दिनाँक–4–4–2007

षट्खण्डागम के सूत्रों की संख्या–

प्रथम खण्ड – 2375, द्वितीय खण्ड – 1594, तृतीय खण्ड – 324, चतुर्थ खण्ड – 1525, पंचम खण्ड – 1023।

कुल सूत्र – 6841

आर्यिका ज्ञानमती जी कृत सिद्धान्त चिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद आर्यिका चंदनामती जी ने किया।

षट्खण्डागम ग्रंथ का महत्व

षट्खण्डागम ग्रंथ एक सिद्धांत ग्रंथ हैं। ''इस ग्रंथ की सत्प्ररूपणा में सर्व प्रथम महामंत्र णमोकार मंत्र का मंगलाचरण किया गया हैं''[75]। (ज्ञानमती, 2009) सत्प्ररूपणा में 177 सूत्र हैं। धवला टीका में मंगलाचरण में पंच परमेष्ठी के लक्षण बताये हैं। सिद्धांत चिंतामणि टीका पुस्तक 1 के अनुसार –''द्वादशांग के अन्तिम 'दृष्टिवाद' नामक अंग में द्वितीय अग्रायणीय पूर्व हैं। उसके पंचम वस्तु अधिकार में 'चयन लब्धि अधिकार' के 20 प्राभृतों में चतुर्थ कर्मप्रकृति प्राभृत नाम के अधिकार में से ग्रन्थाधिराज षट्खण्डागम का अवतरण हुआ हैं। ग्रंथ के रचनाकार आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबली के शिक्षा गुरू आचार्य धरसेन अंगों व पूर्वों के एकदेश ज्ञाता थे इसलिये कतिपय विद्वानों के अनुसार – गौतम गणधर के माध्यम से इसका (ग्रंथ का) सीधा संबंध भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से हैं।

जिस प्रकार चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये निकलकर छह खण्डों को जीतकर षट्खण्डाधिपति कहलाता हैं वैसे ही आचार्य पुष्पदंत व आचार्य भूतबली ने षट्खण्डागम लेखन करके जिनागम रूपी छह खण्ड़ों पर विजय प्राप्त कर ली। इसी आशय को व्यक्त करते हुये आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने षट्खण्डागम के सारांश को स्वलिखित गोम्मटसार के कर्मकाण्ड की गाथा संख्या 397 में लिखा हैं–

''जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।

---

[75] आर्यिका ज्ञानमती जी, षट्खण्डागम, सिद्धांत चिंतामणि टीका पुस्तक 1, पृष्ठ संख्या 393

तह मइचक्केण मया छक्खंडं सहियं सम्मं"[76]।।(आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती, 1998)

अर्थात् जिस प्रकार चक्रवर्ती छह खण्डों को अपने चक्ररत्न से निर्विघ्नतापूर्वक वश में कर लेता है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने भी मतिरूपी चक्र के द्वारा षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्र को अच्छी तरह जाना हैं।

षट्खण्डागम ग्रंथ के दूसरे सूत्र में चौदह गुणस्थानों व चौदह मार्गणाओं का वर्णन हैं। गुणस्थान के माध्यम से ही जीव के गुणों के आधार पर स्थान अर्थात् श्रेणी का ज्ञान होता हैं।

चौदह गुणस्थान– 1. मिथ्यात्व 2. सासादन 3. मिश्र 4. असंयतसम्यग्दर्शन 5. देशसंयत 6. प्रमत्तसंयत 7. अप्रमत्तसंयत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्मसांपराय 11. उपशांत मोह 12. क्षीण मोह 13. सयोग केवली 14. अयोग केवली।

इन गुणस्थान के ज्ञान से जीव की स्थिति का ज्ञान होता हैं। जैसे – सम्यग्दृष्टि अव्रती श्रावक का चतुर्थ गुणस्थान होता हैं। आर्यिकाजी, ऐल्लक जी आदि वस्त्रधारी व्रतियों का पंचम गुणस्थान हैं। पंचम गुणस्थान के पात्रों की अपेक्षा तीन भेद हैंः उत्तम, मध्यम व जधन्य। छठे व सातवें गुणस्थान में मुनिराज चढते–उतरते रहते हैं। जब मुनिराज प्रमाद रहित होकर आत्म स्वरूप में विचरण करते है तब सप्तम गुणस्थान होता हैं, जब आत्म स्वरूप से बाहर आते तब उनका छठा गुणस्थान होता हैं। प्रथम गुण स्थान में जीवों की संख्या अनंतानंत हैं। द्वितीय गुण स्थान में जीवों की संख्या 52 करोड़ हैं। तृतीय गुणस्थान में जीवों की संख्या 104 करोड़ हैं। चतुर्थ गुण स्थान में जीवों की संख्या सात सौ करोड़ हैं। पंचम गुणस्थान में जीवों की संख्या 13 करोड़ हैं। छठे गुणस्थान से चौदहवॉ गुणस्थान मुनियों का हैं जिनकी संख्या तीन कम नौ करोड़ हैं।

---

[76] आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती, गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा संख्या 397

इस प्रकार गुणस्थानों के माध्यम से निग्रंथ मुनिराज, आर्यिकाओं, व्रतियों व अव्रतियों के पद का ज्ञान होता हैं। उक्त सभी का उनके पद के अनुरूप आदर विनयादि करना चाहिये। इस प्रकार ग्रंथाधिराज के माध्यम से संसारी जीवों से लेकर मुक्त जीवों का सम्पूर्ण वर्णन हैं।

षट्खण्ड़ागम जी के महत्व को वर्णित करते हुये श्रुतपंचमी में पूजन में जयमाला में राजमल पवैया ने लिखा हैं–

''काल की घड़ी मनुज की, स्मरण शक्ति हरती रही।

श्री धरसेनाचार्य ह्रदय में, करूण–टीस भरती रही।।

द्वादशांग का लोप हुआ, तो क्या होगा संसार का।

श्रुतपंचमी पर्व अति पावन, है श्रुत के अवतार का ।।

शिष्य भूतबली– पुष्पदन्त की, हुई परीक्षा ज्ञान की।

जिनवाणी लिपिबद्ध हेतु, श्रुत विद्या विमल प्रदान की।।

ताड–पत्र पर हुई अवतरित वाणी जन–कल्याण की।

षट्खण्ड़ागम महा–ग्रंथ, करूणानुयोग जय ज्ञान की''[77]।(राजमल पवैया 1985)

सिद्धान्त चिंतामणि टीका के हिन्दी अनुवाद का महत्व

सिद्धांत चिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद करके आर्यिका चंदनामती जी ने जैन साहित्य के क्षेत्र को नवीन आयाम प्रदान किये हैं। जैन सिद्धांत प्राकृत व संस्कृत भाषा में होने के कारण, वर्तमान पीढी भाषा ज्ञान के अभाव में इससे अनभिज्ञ रह जाती हैं जिस कारण आगम के ज्ञान के अभाव में धर्म से विमुख हो जाती हैं। इससे नैतिकता का हनन होने लगा हैं। प्राचीन आचार्यों व मुनियों की धरोहर मन्दिरों की अलमारी तक सीमित हो गयी। आगम का ज्ञान

[77] बृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ संख्या 469

साधकों तक सीमित हो गया। ऐसी विषम परिस्थिति में आर्यिका श्री ने आगम का ज्ञान सामान्य जनों तक पहुँचाने के लिये प्राचीन आचार्यों के ग्रंथों की हिन्दी टीका कार्य प्रारंभ किया। जिससे भाषा की कठिनता के कारण जन–साधारण स्वाध्याय से दूर न हो सके। इसी श्रृंखला में उन्होंने आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा रचित संस्कृत टीका का हिन्दी टीका अनुवाद किया। वर्तमान में 16 में से 12 पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद शोधकर्त्री को उपलब्ध हैं।

इन पुस्तकों के प्रारम्भ में ग्रंथ कर्त्ता परिचय, प्रस्तावना, आचार्य शांतिसागर परिचय, प्रथम पट्टाचार्य वीरसागर परिचय, आर्यिका ज्ञानमती परिचय व आर्यिका चंदनामती जी का जीवन परिचय हैं। इसके पश्चात् हस्तिनापुर तीर्थ परिचय व दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान परिचय हैं, षट्खण्ड़ागम ग्रंथ पूजा, स्तुति व आरती भी पुस्तक में हैं तत्पश्चात् सिद्धांत चिंतामणि टीका के विषय में संक्षिप्त वर्णन हैं।

प्रथम एवं द्वितीय पुस्तक

सिद्धांत चिंतामणि ग्रंथ की आर्यिका चंदनामती जी कृत हिन्दी टीका की प्रथम पुस्तक में आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 161 हैं जिनमें 177 सूत्रीय 'सत्प्ररूपणा' हैं व सम्पूर्ण पुस्तक में 428 पृष्ठ हैं। दूसरी पुस्तक में 'आलाप अधिकार' है। इसमें सूत्र नहीं हैं। इनमें कुल 545 कोष्ठक–चार्ट हैं व आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 88 हैं।

तृतीय एवं चतुर्थ पुस्तक

तीसरी पुस्तक में आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 130 हैं। जिनमें 'द्रव्य प्रमाणनुगम और क्षेत्रानुगम'का वर्णन हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 336 पृष्ठ हैं। चौथी पुस्तक में आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 189 हैं जिनमें 'स्पर्शनानुगम और कालानुगम' इन दो अनुयोगद्वारों का वर्णन है और चार महाधिकार हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 392 पृष्ठ हैं।

पंचम एवं षष्टम पुस्तक

पांचवी पुस्तक में आर्यिका चंदनामती जी ने तीन प्ररूपणाओं 'अंतरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम' का वर्णन किया हैं। जिसमें आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 193 हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 420 पृष्ठ हैं। छठी पुस्तक में 'जीवस्थान चूलिका' हैं। जिसमें आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 187 हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 378 पृष्ठ हैं।

सप्तम एवं अष्टम पुस्तक

सातवीं पुस्तक में द्वितीय खण्ड़ ''क्षुद्रकबन्ध'' का वर्णन हैं। जिसमें आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 281 हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 663 पृष्ठ हैं। अष्टम पुस्तक में तृतीय खण्ड 'बंधस्वामित्व विचय'' हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 494 पृष्ठ हैं।

नवम एवं दशम पुस्तक

नवमीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड़ ''वेदना खण्ड़'' के अंतर्गत 'कृति अनुयोगद्वार' का वर्णन हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 494 पृष्ठ हैं। दशमी पुस्तक में 'वेदनानिक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना, द्रव्यविधान का वर्णन हैं। जिसमें आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 118 हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 288 पृष्ठ हैं।

एकादशम एवं द्वादशम पुस्तक

ग्यारहवीं पुस्तक में वेदनाकाल, वेदनाभाव एवं तीन चूलिकाओं का वर्णन हैं। जिसमें आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 200 हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 404 पृष्ठ हैं। बारहवीं पुस्तक में वेदनाप्रत्यय एवं वेदनास्वामित्व आदि 9 भेद हैं। जिसमें आर्यिका श्री द्वारा लिखित अनुवाद के पृष्ठों की संख्या 175 हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में 320 पृष्ठ हैं।

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी कृत सिद्धांत चिंतामणि की 12 पुस्तकों में षट्खण्ड़ागम के चार खण्ड़ों का वर्णन हैं।

भाषा– प्रस्तुत टीका की भाषा खड़ी बोली हिन्दी हैं। सरल शब्दों में सिद्धांत चिंतामणि के हार्द को स्पष्ट करने का सर्वत्र प्रयास दृष्टिगत होता हैं। टीका में जैन सिद्धांत सम्बंधी जैन पारिभाषिक एवं अन्य शब्दावली अनिवार्य रूप से प्रयुक्त हैं।

विषय वस्तु

प्रथम पुस्तक में सत्प्ररूपणा के अंर्तगत चौदह गुणस्थान व चौदह मार्गणाओं का वर्णन हैं। अन्य प्ररूपणायें जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, 14 मार्गणा और उपयोग हैं इस प्रकार क्रमशः 20 प्ररूपणा हैं। द्वितीय पुस्तक में सत्प्ररूपणा का ही विवेचन या वर्गीकृत स्पष्टीकरण हैं। तीसरी पुस्तक में प्रतिपादित द्रव्य प्रमाणनुगम में प्रथम महाधिकार में 14 सूत्र हैं एवं द्वितीय में 178 सूत्र हैं इस प्रकार कुलसूत्र 192 हैं व क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार के अंतर्गत तृतीय महाधिकार में 4 सूत्र हैं एवं चतुर्थ महाधिकार में 88 सूत्र हैं इस प्रकार दोनों अनुयोगोंद्वारों में कुल 284 हैं। क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार में तीनों लोकों का वर्णन विस्तार से है। जीवों की सूक्ष्म अवगाहना और उत्कृष्ट अवगाहना आदि करते हुये क्षेत्रफल बताया गया है। ज्योतिर्लोक सम्बन्धी कठिन विषय को सरल रूप में प्रस्तुत करने की कला आर्यिका चंदनामती जी की लेखनी में देखने को मिलती हैं। इसी पुस्तक में चौदह गुणस्थानों में जीवों की संख्या वर्णित हैं –प्रथम गुणस्थान में जीव अनंतानंत हैं, द्वितीय गुणस्थान में 52 करोड़ हैं, तृतीय गुणस्थान में 104 करोड़ हैं, चतुर्थ गुणस्थान में 700 करोड़ हैं, पॉचवे गुणस्थान में 13 करोड़ हैं। छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक महामुनि एवं अरहंत भगवान का गुणस्थान हैं उन सबकी संख्या मिलाकर 'तीन कम नव करोड़ हैं' चौथी पुस्तक में स्पर्शनानुगम व कालानुगम दो अनुयोगद्वार वर्णित हैं। इन दोनों की सूत्र संख्या 185 + 342 = 527 हैं। स्पर्शनानुगम में भिन्न–भिन्न गुणस्थान वाले जीव तथा गति आदि भिन्न–भिन्न मार्गणा स्थान वाले जीव तीनों कालों में स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय– समुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात, केवलि समुद्घात और उपपाद अवस्थाओं द्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श कर पाते हैं विषय की प्ररूपणा सम्यक् प्रकार से की गयी हैं। पांचवी पुस्तक में अंतरानुगम में 396 सूत्र हैं, भावानुगम के

अंतर्गत 93 सूत्र हैं एवं अल्पबहुत्वानुगम में 382 सूत्र हैं। इस प्रकार कुल 872 सूत्र हैं। अन्तरानुगम के अंतर्गत किसी विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीव का उस गुणस्थान को छोड़कर अन्य गुणस्थान में चले जाने पर पुनः उसी गुणस्थान की प्राप्ति के पूर्व तक के काल अन्तरकाल या विरह या उच्छेद या परिणामान्तरगमन काल कहते हैं। हिन्दी टीका में आर्यिका श्री ने अन्तरानुगम अनुयोगद्वार को ओघ एवं आदेश रूप दो महाधिकारों में विभक्त करके वर्णन किया हैं। भावानुगम के अंर्तगत कर्मों के उदय, उपशम आदि के निमित्त से जीव के उत्पन्न होने वाले परिणाम विशेषों को भाव कहते हैं। ये भाव औदायिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक और पारिणामिक कुल पाँच प्रकार के हैं भावानुगम नामक सातवें अनुयोग द्वार में किस गुणस्थान में कौन सा भाव होता हैं का वर्णन हैं। अल्पबहुत्वानुगम के अंतर्गत अल्पबहुत्व का अर्थ हीनाधिकता हैं। विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीव अन्य गुणस्थानवर्ती जीवों से अल्प हैं या अधिक हैं इत्यादि का वर्णन हैं। छठवी पुस्तक में जीवस्थान चूलिका का वर्णन किया गया हैं जिसमें 216 सूत्र हैं। इस प्रकार छह पुस्तकों में प्रथम खण्ड हैं। सातवीं पुस्तक में द्वितीय खण्ड – क्षुद्रक बंध हैं। इसमें क्षुद्र अर्थात् संक्षिप्तरूप से कर्मबन्ध का वर्णन हैं। 12 अधिकारों में यह सम्पूर्ण अधिकार हैं। आठवीं पुस्तक में बंध स्वामित्व विचय नामक तृतीय अधिकार वर्णित हैं। जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम होते हैं, वह बंध हैं और बंध के वियोग को मोक्ष कहते हैं। इस ग्रंथ में कुल 324 सूत्र हैं। नवमी से बारहवी पुस्तक में चतुर्थ अधिकार वेदना खण्ड के अंतर्गत कृति अनुयोगद्वार, वेदना अनुयोग द्वार का वर्णन किया हैं। वेदनानय, निक्षेप, वेदनानाम, वेदना– क्षेत्र, काल, भाव आदि भी वर्णित हैं। नवमी पुस्तक में कृति नामक प्रथम अनुयोग द्वार वर्णित हैं। सूत्र संख्या 46 में इसके सात भेद किये हैं – नामकृति, स्थापनाकृति, द्रव्यकृति, गणनकृति, ग्रंथकृति, करणकृति और भावकृति। दसवी पुस्तक में वेदना अनुयोगद्वार हैं। वेदना अनुयोगद्वार के 16 भेद हैं जिनमें से प्रारंभ के 5 अनुयोगद्वार इस पुस्तक में वर्णित हैं। ग्यारहवीं पुस्तक में 2 अनुयोगद्वार– वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान का वर्णन हैं जिसमें सूत्रों की संख्या 593 हैं। बारहवीं पुस्तक में 8 से 16 तक के 8 अनुयोगद्वार वर्णित हैं। इसमें सूत्रों की संख्या 533 हैं।

पुस्तकों में वर्णित कुछ महत्वपूर्ण विषय

प्रथम पुस्तक –सिद्धांत चिंतामणि टीका की प्रथम पुस्तक में सत्प्ररूपणाओं का वर्णन हैं आर्यिका चंदनामती जी प्रथम खण्ड की प्रथम पुस्तक में सिद्धगति का वर्णन करते हुये पृष्ठ संख्या 189 पर लिखती हैं : ''जिसमें जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, आहारादि संज्ञाएँ और रोगादिक नहीं पाये जाते हैं उसे सिद्धगति कहते हैं''[78] । (आर्यिका चंदनामती, 2009)

द्वितीय पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की द्वितीय पुस्तक में बीस प्ररूपणाओं का व्याख्यान हैं। आर्यिका चंदनामती ने बीस प्ररूपणाओं अर्थात् गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, 14 मार्गणा और उपयोग को हिन्दी भाषा में सरलता पूर्वक वर्णित किया हैं।

तृतीय पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की तृतीय पुस्तक में द्रव्य प्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 11 पर द्रव्य के लक्षणों को वर्णित करते हुये लिखती हैं : ''द्रव्य का लक्षण सत् अर्थात् अस्तित्व हैं। जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित होता है, सत् कहलाता हैं''[79]। (आर्यिका चंदनामती, 2007)

चतुर्थ पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की चतुर्थ पुस्तक में स्पर्शनानुगम और कालानुगम का वर्णन हैं। आर्यिका श्री चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 135 पर जैन श्रावकों के अणुव्रत, जैन गुरूओं के महाव्रत का वर्णन करते हुये लिखती हैं ''देवायु को छोड़कर किसी आयु का बंध हो जाने पर मानव अणुव्रत–महाव्रत को धारण नहीं कर सकता[80]''। ।(आर्यिका चंदनामती, 2008)

पंचम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की पंचम् पुस्तक में अंतरानुगम– भावानुगम – अल्पबहुत्वानुगम का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 169 पर श्लोक 378 के अनुवाद में सम्यक्त्व व मिथ्यात्व का वर्णन करते हुये लिखती हैं : ''तीनों कालों में और तीनों लोकों में प्राणियों के लिये सम्यक्त्व के समान कोई कल्याणकारी वस्तु नहीं है एवं मिथ्यात्व के

---

[78] आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, प्रथम पुस्तक, पृष्ठ संख्या 189

[79] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, तृतीय पुस्तक पृष्ठ संख्या–11

[80] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, चतुर्थ पुस्तक, पृष्ठ संख्या 135

समान कोई दूसरी अहितकारी वस्तु नहीं हैं''[81]। (आर्यिका चंदनामती, 2010)

षष्टम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की षष्टम् पुस्तक में जीवस्थान चूलिका का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 193 पर श्लोक 4 के अनुवाद में सम्यक्त्व धारी जीव की गति का वर्णन करते हुये लिखती हैं : ''जो सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला जीव है, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय नहीं होता है, क्योंकि इनमें सम्यक्त्व को ग्रहण करने योग्य परिणाम नहीं पाये जाते हैं। इसलिये सम्यक्त्व धारी संज्ञी पंचन्द्रिय ही होते हैं''[82]। (आर्यिका चंदनामती, 2006)

इस प्रकार छह पुस्तकों में जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड का वर्णन हैं।

सप्तम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की सातवीं पुस्तक में द्वितीय अधिकार क्षुद्रक बंध का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 311 पर श्लोक 134 के अनुवाद में भाव लिंगी संतों के विषय में वर्णन करते हुये लिखती हैं : ''मध्यलोक में ढ़ाई द्वीपों में एक सौ सत्तर कर्म भूमियॉ हैं, उन सभी कर्मभूमियों में एक साथ यदि अधिक से अधिक संयत – दिगम्बर मुनिराज हो जाये, तो प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त तीन कम नव करोड़ मुनि होते हैं''[83]। (आर्यिका चंदनामती, 2011)

अष्टम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की आठवीं पुस्तक में तृतीय अधिकार बंधस्वामित्वविचय का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 142 पर श्लोक 42 के अनुवाद में श्रावकाचार का वर्णन करते हुये श्रावक की क्रियाओं के विषय में लिखती हैं : '' श्रावकों की चार क्रियायें हैं – पूजा, दान, शील और उपवास अथवा छह क्रियायें भी कही गई हैं। देवपूजा, गुरू की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छह क्रियायें गृहस्थों के लिये

---

[81] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पंचम पुस्तक, पृष्ठ संख्या 169
[82] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, षष्टम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 193
[83]आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, सप्तम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 311

प्रतिदिन करने की हैं''[84]। (आर्यिका चंदनामती, 2011)

नवम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की नवमीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत प्रथम 'कृति' अनुयोगद्वार का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 20 से लेकर 93 में श्लोक 2 से 42 के अनुवाद में 64 ऋद्धियों का वर्णन किया हैं। वे लिखती हैं : ''रागद्वेष आदि विकार भावों को छोड़कर कठिन तपस्या करने वाले उन बाहुबली महाराज के अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व यह आठ विक्रिया ऋद्धि प्रकट हुई थीं। जिन्हें अनेक प्रकार की औषधिऋद्धि प्राप्त हैं और जो आमर्श, क्ष्वेल तथा जल्ल आदि के द्वारा प्राणियों का उपचार करते हैं ऐसे उन मुनिराज की समीपता जगत् का कल्याण करने वाली थी''[85]। (आर्यिका चंदनामती, 2012)

दशम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की दसवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत 'वेदना' अनुयोगद्वार का वर्णन हैं। वेदना अनुयोगद्वार के सोलह भेद हैं जिनमें से 5 इस पुस्तक में वर्णित हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 15 पर मंगलाचरण के अनुवाद में अकृत्रिम चैत्यालयों की महिमा वर्णित की हैं। '' तीनों लोकों की सम्पत्ति के स्थान स्वरूप जो स्वयंभू भगवान के अकृत्रिम जिनमंदिर हैं और जो स्वयंसिद्ध–अनादिनिधन हैं, वे जिनमंदिर मेरा मंगल करें अर्थात् मेरे लिये मंगलकारी होवें''[86]। (आर्यिका चंदनामती, 2012)

एकादशम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की ग्यारहवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 267 पर श्लोक 199 के अनुवाद में अनुभाग का वर्णन किया हैं। वे लिखती हैं : ''आठों कर्मों और जीवप्रदेशों के परस्पर में अन्वय (एकरूपता) के कारणभूत परिणाम को अनुभाग कहते हैं''[87]।   (आर्यिका चंदनामती, 2014)

---

[84] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, अष्टम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 142
[85] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, नवम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 20–93
[86] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, दशम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 15
[87]आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, एकादशम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 267

द्वादशम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की बारहवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत अनुयोगद्वार के शेष सात भेदों का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 229 पर श्लोक 23 के अनुवाद में अंतराय कर्म के भेदों का वर्णन किया हैं। वे लिखती हैं : '' अंतराय कर्म के 5 भेद हैं, दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यान्तराय''[88]। (आर्यिका चंदनामती, 2014)जिस कर्म के उदय से दान की इच्छा करता हुआ भी दान नहीं दे सके, वह दानांतराय कर्म हैं। जिस कर्म के उदय से लाभ की इच्छा होते हुए भी न हो सके, वह लाभान्तराय कर्म हैं। जिस कर्म के उदय से पुष्पादि और अन्नादि वस्तुओं को भोगना चाहे परन्तु भोग न सके, वह भोगांतराय कर्म हैं। जिस कर्म उदय से स्त्री आदि उपभोग की वस्तु का उपभोग न कर सके, वह उपभोगान्तराय कर्म हैं। जिस कर्म उदय से अपनी शक्ति प्रगट करना चाहे परन्तु प्रगट न कर सके, वह वीर्यान्तराय कर्म हैं।

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी ने प्राचीतम ग्रंथ की टीका का सरल शब्दों में अनुवाद करके जन –साधारण को प्राचीन साहित्य से परिचित कराया। जैन धर्म में जीव का परम ध्येय सिद्धत्व अर्थात् जन्म–मरण से मुक्ति हैं। इन पुस्तकों में सिद्ध अवस्था का स्वरूप, सिद्ध अवस्था प्राप्ति का मार्ग : सम्यक्त्व की प्राप्ति, श्रावकाचार, मुनि अवस्था, 64 ऋद्धि आदि वर्णन करते हुये जैन सिद्धांत को प्रस्तुत किया ।

टीका की विशेषताएँ

1. विद्वानों में प्रचलित पद्धति का प्रयोग किया गया हैं –अर्थ, गाथार्थ– श्लोकार्थ, विशेषार्थ, भावार्थ, सारांश के साथ हिन्दी अनुवाद प्रत्येक दृष्टि उत्कृष्ट हैं।

2. विराम, अर्द्धविराम चिन्ह, समास, प्रश्नचिन्ह आदि का उचित प्रयोग किया गया हैं।

3. यथा स्थान अपेक्षित संक्षेप या विस्तार शैली का प्रयोग किया गया हैं।

4. सरल भाषा में गूढ सिद्धांतों की व्याख्या की गयी हैं।

---

[88] आर्यिका चंदनामती,षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, द्वादशम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 229

5. वर्तमान पीढी के लिये उपयोगी हैं।

6. टीका में, वर्णित विषय की स्पष्टता हैं।

7. मूल सूत्र में जो सूत्र–बद्ध रूप में कहा गया हैं, उसका व्याख्यान किया गया हैं।

इस प्रकार षट्खण्डांगम ग्रंथ की सिद्धांत चिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद करके आर्यिका चंदनामती जी ने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया हैं। उनकी लेखनी से प्रसूत रचनायें जैन–साहित्य में विशेष स्थान रखती हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने श्रावक–श्राविकाओं को जो भाषा की क्लिष्टता के कारण जैन साहित्य से दूर हो रहे थे उन्हें जैन साहित्य से जोड़ने कर धर्म के विकास के कार्य किये।

अध्याय–6

आर्यिका चंदनामती जी की गुरू परम्परा एवं आर्यिका श्री को प्राप्त विशेष उपाधियाँ

आर्यिका चंदनामती जी की गुरू परम्परा

आर्यिका चंदनामती जी बीसवीं–इक्कीसवीं शताब्दी के जैन धर्म व जैन संस्कृति के संरक्षक आचार्य शांतिसागर जी की परम्परा से आचार्य वीरसागर जी की सुशिष्या आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा दीक्षित हैं।

चारित्र चकवर्ती आचार्य शांतिसागर जी

भारत भूमि सदैव से साधु–संतों की भूमि रही हैं। यहां पर अनेक साधु, संत, ऋषि, मुनि हुये जिन्होंने साधनों से नहीं अपितु साधना से, तप से, त्याग से एवं आचरण से जीवन को धन्य बनाया और मुक्ति के चरम शिखर को प्राप्त हुये। ऐसे संतों की आस्था भोग में न होकर, योग में थी। ऐसी महान् आत्माएँ सब प्राणियों को सतत आचरण एवं त्याग की प्रेरणादायिनी हैं।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज रत्नगर्भा भारत भूमि से निकले एक ऐसे रत्न थे जिन्होंने ज्योतिपुंज बनकर अणुव्रत के माध्यम से जैन धर्म और अध्यात्म को सही दिशा प्रदान करते हुये उसका मानव कल्याणकारी स्वरूप प्रदान किया। 19–20 वीं सदी के महान् सन्त, विचारक, दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की आस्था के केन्द्र एवं श्रमण संस्कृति के उन्नायक, बीसवीं सदी के महान् जैनाचार्य मुनि श्री शांति सागर जी का जन्म ''आषाढ़ कृष्ण 6, 2 जुलाई 1872, बुधवार को येळगुळ''[89](आर्यिका ज्ञानमती, 2010) में नाना के घर में हुआ था परन्तु पैतृक स्थान भोज होने के कारण उनकी जन्मस्थली ''भोजग्राम (बेलगांव–कर्नाटक)''[90] (आर्यिका ज्ञानमती, 2010) के रूप में प्रसिद्ध हैं। ''उनके पिता श्री भीमगोंड़ा पाटिल थे, उनकी माता श्रीमती सत्यवती जी थी''। बालक का नाम सातगोंडा रखा गया। बाल्यावस्था से ही जिन धर्म के प्रति अगाढ़ श्रद्धा होने के कारण प्रभु भक्ति, पूजा, त्यागीवृतियों को आहारदान, वैयावृत्ति करने में आपकी विशेष रूचि थी। माता–पिता से प्राप्त उच्च संस्कारों के कारण ही आपने सदैव आदर्श जीवन व्यतीत किया।

बाल्यावस्था

सातगोंड़ा बचपन से निवृति स्वभाव के थे। खेलों में कोई रूचि नहीं थी, व्यर्थ की बातों में समय नहीं गंवाते थे और कोई प्रश्न किया जाये तो संक्षिप्त उत्तर देते थे। बचपन से ही धार्मिक उत्सवों में जाने में उनकी विशेष रूचि थी। यद्यपि सातगोंडा की लौकिक शिक्षा बहुत कम थी लेकिन वे अत्यंत बुद्धिशाली थे, उन्होंने धर्मसंस्कारों को अपने जीवन का आधार बनाया। बाल्यावस्था में उनके ज्येष्ठ भाई देवगोंडा और आदिगोंडा के विवाह के समय माता–पिता ने सतगोंड़ा के वैरागी भाव को देखते हुए ''मात्र 9 वर्ष की आयु में ही 6 वर्ष की कन्या से विवाह कर दिया''[91]। (मुनि निर्णयसागर, 2003) परन्तु प्रकृति को कुछ और ही मंजूर था, उन्हें जिन शासन की सेवा करनी थी इसलिये मात्र 6 महीने बाद ही पत्नी का देहांत हो गया और यह

---

[89] आर्यिका ज्ञानमती, प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज, पृष्ठ 6
[90] आर्यिका ज्ञानमती, प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज, पृष्ठ 6
[91] मुनि निर्णयसागर, हमारे आदर्श, पृष्ठ 15

बंधन भी टूट गया। उसी क्षण से उन्हें वैराग्य हो गया और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालने का नियम ले लिया।

शारीरिक योग्यता

सातगोंड़ा बलिष्ठ शरीर के धारक थे, चावल का भरा बोरा सहजता से उठा लेते थे। गरीब को चोरी से ज्वार का गट्ठा लेते देखा, उठाने में असमर्थ था, खुद उठवाकर उसके सिर पर रखवा दिया। विचार किया कि गरीब है उसको जरूरत है। कसाई से भैंसे को बचाया और उसी दिन से हिंसा त्याग का संकल्प किया।

वैराग्य भावना का उद्भव

सातगोंडा बचपन से ही स्वाध्याय करते थे। वे प्रारंभ से ही आत्मानुशासन और समयसार इन दोनों ग्रंथों का निरंतर ही अध्ययन करते थे, जिस कारण मात्र 17–18 वर्ष की युवावस्था में जैनेश्वरी दीक्षा लेने के भाव उनके ह्रदय में उत्पन्न होने लगे थे। तीर्थयात्रा के प्रति लगाव से उनकी वैराग्यमयी भावना ओर भी बलवती हो गयी थी। वैराग्य की प्रबल भावना के कारण दीक्षा लेने की तीव्र भावनाऍं जाग्रत होने पर उन्होंने माता–पिता के समक्ष उन भावनाओं को उजागर कर दिया। माता–पिता ने स्नेहवश सातगोंडा को समझाया कि हमारी उम्र बहुत हो गयी हैं ऐसे में हमें इस अवस्था में छोड़कर दीक्षा लोगे तो हमें अत्यंत कष्ट होगा, अतः तुम थोड़ा धैर्य रखकर बाद में दीक्षा धारण करना। माता–पिता के समझाने पर सातगोंडा को अपने पुत्रत्व के कर्तव्यों का भान हुआ और उन्होंने दीक्षा लेने के विचारों को स्थगित कर दिया।

श्रमण जीवन का प्रारंभ : क्षुल्लक दीक्षा

सातगोंडा के ह्रदय में एक बार वैराग्य की ज्योति प्रज्वलित हो चुकी थी, इसलिये संसार के राग–वैभव कभी भी आकर्षित नहीं कर पाये। सन् 1912 तक सातगोंडा जी के माता–पिता का स्वर्गवास हो चुका था अतः सातगोंडा ने अपने कर्तव्यों का पूर्ण निर्वहन करके सन् ''1914 में ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तूर (कोल्हापुर) महाराष्ट्र में 41 वर्ष की अवस्था में दिगम्बर

जैनाचार्य देवेन्द्रकीर्ति जी से क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त की''[92]। (आर्यिका ज्ञानमती, 2010) क्षुल्लक दीक्षा के अंतर्गत श्रावक पद की ग्यारह प्रतिमा अंगीकार करके सातगोंडा जी ने गृह त्याग कर दिया। इस प्रकार स्वतंत्रता के साथ सातगोंडा जी का वैराग्यमयी जीवन प्रारंभ हो गया।

ऐलक दीक्षा

मोक्षमार्ग पर बढते हुये सन् 1919 में क्षुल्लक जी विहार करते हुये श्री गिरनार जी सिद्धक्षेत्र की यात्रा हेतु पहुॅचे, वहाँ भगवान नेमिनाथ जी के चरणों के दर्शन करते ही क्षुल्लक जी के मन में वैराग्य की भावनायें और भी बलवती होने लगी तब उन्होंने स्वयं ही ''भगवान नेमिनाथ के चरणों के साक्षी में ऐलक दीक्षा''[93] (मुनि निर्णयसागर, 2003) धारण करके अपने वैराग्य के मार्ग को वृद्धिंगत किया। तत्पश्चात् ऐलक जी ने दक्षिण में कुण्डलपुर क्षेत्र की वंदना की और भगवान पार्श्वनाथ के समक्ष उन्होंने सभी वाहनों का आजीवन परित्याग कर दिया और आगे की अपनी यात्रा ''पदविहार'' के रूप में प्रारंभ की।

जीवन के चरम शिखर पर : दिगम्बर मुनि दीक्षा

मुनि देवेन्द्रकीर्ति जी के सानिध्य में ग्राम 'यरनाल' (बेलगांव) कर्नाटक में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर ऐलक जी ने मुनि श्री से दिगम्बर दीक्षा लेने हेतु प्रार्थना की। वहाँ उपस्थित जैन समाज ने ऐलक जी की योग्यता देखकर दीक्षा की अनुमोदना की। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में दीक्षा कल्याणक के अवसर पर फाल्गुन शुक्ला चर्तुदशी, सन् 1920 को ऐलक शांतिसागर की केशलोंचपूर्वक मुनि दीक्षा सम्पन्न हुई और वे मुनि शांति सागर के रूप में पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों विजय, छह आवश्यक तथा सात शेष गुण इत्यादि 28 मूलगुणों के धारक हो गये।

धर्म प्रभावना

---

[92] आर्यिका ज्ञानमती, प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज, पृष्ठ 3

[93] मुनि निर्णयसागर, हमारे आदर्श, पृष्ठ 18

मुनि शांतिसागर जी दीक्षा लेकर निर्ग्रन्थ साधु रूप में विहार करते हुये विभिन्न स्थानों पर जन–जन को जैनधर्म में बतलाये गये सच्चे मोक्षमार्ग से परिचित कराने लगे और मूलाचार ग्रंथ के आधार पर चर्या करने वाले सच्चे निर्ग्रन्थ साधु के श्रावकों को दर्शन होने लगे। एक बार कोन्नूर में चातुर्मास के समय, मुनि श्री गांव की एक प्राचीन गुफा में नित्य की तरह ध्यानस्थ अवस्था में बैठे हुए थे तभी एक विशाल नागराज–सर्प आकर महाराज श्री के शरीर पर चढ़कर धूमने लगा। मुनि श्री ध्यान में निमग्न थे और वह नागराज शरीर पर धूमता रहा, लेकिन मुनि श्री के चेहरे पर तनिक विकल्प देखने को नहीं मिला। इस घटना के समय वहाँ उपस्थित श्रावक जन उस नाग को डर रहे थे।

कुछ समय पश्चात् वह नाग स्वतः ही वहाँ से निकल गया । वहाँ उपस्थित श्रावकों में श्रेष्ठी श्री खुशालचंद पहाडे तथा ब्रह्मचारी हीरालाल जी महाराज श्री से अत्यंत प्रभावित हुए। उन दोनों की यह धारणा थी कि इस काल में साधक का होना असंभव है, इसलिये उन्होंने मुनि श्री से प्रश्न किया कि क्या आपको अवधिज्ञान हैं? क्या आपको ऋद्धि–सिद्धि प्राप्त हैं? आदि कुछ कटाक्ष जैसे प्रश्न भी मुनि श्री से किये, जिस पर कुछ श्रावक उन दोनों को मारने–पीटने को तैयार हो गये, लेकिन मुनि श्री ने 'शांतिसागर' नाम के अनुरूप ही शांति को धारण करके धैर्यता के साथ उनके प्रश्नों के उत्तर दिये, वे दोनों मुनिश्री से अत्याधिक प्रभावित हुये और वे तभी मुनिश्री से दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गये। कुछ समय पश्चात् उन दोनों ने कुंभोज (बाहुबली) क्षेत्र पर मुनिश्री से क्षुल्लक दीक्षा अंगीकार की । ''सेठ खुशालचंद जी को ''क्षुल्लक चंद्रसागर'' एवं ब्रह्मचारी हीरालाल जी को ''क्षुल्लक वीरसागर''नाम प्राप्त हुये आगे चलकर ये दोनों ही मुनिश्री के प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य बने''[94]। (आर्यिका ज्ञानमती, 2010)

आचार्य पदारोहण

मुनि शांतिसागर जी संघ सहित पद विहार करते हुए समडोली (सांगली) महाराष्ट्र पहुॅचे। वहाँ पर अश्विन शुक्ल एकादशी, सन् 1924 को चर्तुविध संघ द्वारा 'आचार्य पद' प्रदान किया गया

---

[94] आर्यिका ज्ञानमती, प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज, पृष्ठ 6

और वे आचार्य शांतिसागर जी बन गये। आचार्य श्री ने सदैव मुनिचर्या पर आधारित मूलाचार ग्रंथ के अनुरूप आगमनुसार चर्या को अपनाकर, दिगम्बर जैन साधु की चर्या व दिनचर्या का जीवन पर्यन्त पालन किया। वर्तमान में दिगम्बर जैन मुनि चर्या को पुर्नजीवित करने का कार्य आचार्य शांतिसागर जी द्वारा किया गया।

चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकरण

सन् 1937 में आचार्य संघ विहार करते हुये गजपन्था सिद्धक्षेत्र पहुँचा वहाँ पर जैन समाज द्वारा आचार्यश्री को ''चारित्र चक्रवर्ती'' पद से विभूषित किया गया। गुणों की खान आचार्य शांतिसागर ने दिगम्बर मुनिचर्या के अव्यवस्थित स्वरूप को आगम चर्या के अनुरूप बनाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया और जिन संस्कृति के संरक्षण हेतु महान कार्य किया। उनके व्यक्तित्व एवं उत्कृष्ट चारित्र के कारण वे चारित्र चक्रवर्ती पद के सर्वथा योग्य थे।

सल्लेखना व्रत

आचार्य शांतिसागर जी दिव्यदृष्टि के धारी थे, उनकी विस्तृत विचारधारा थी एवं दीर्घ अनुभव था, उन्होंने अनेक वर्षों तक अखण्डरूप से हजारों मीलों की पदयात्रा की, समय–समय पर परिस्थिति के अनुरूप अनुकूल–प्रतिकूल आहार का संयोग प्राप्त किया और धाराप्रवाह उपवासों का क्रम अपने जीवन में अपनाया। वृद्धावस्था के कारण धीरे–धीरे उनकी नेत्र ज्योति कम होने लगी। शुद्ध औषधि उपचार से लाभ न हुआ। समय के साथ नेत्र ज्योति विलुप्त हो जाने पर उन्हें मुनिचर्या को निभाना असंभव प्रतीत होने लगातब आचार्य श्री ने 14 अगस्त 1955 को सल्लेखना व्रत ले लिया। आचार्य श्री की सल्लेखना 36 दिनों तक चली और धीरे–धीरे उन्होंने समस्त आहार– जल का त्याग करते हुये 18 सितम्बर 1955 को प्रातः 6 बजकर 50 मिनट पर सिद्ध प्रभु के स्मरण के साथ समाधि पूर्ण की।

मुनि अवस्था में गंभीर उपसर्ग

''1923 में कोन्नूर चातुर्मास में गुफा में ध्यानस्थ अवस्था में थे, तब नागराज–सर्प शरीर पर लिपट गया''[95]। (मुनि समतासागर, 1994)

- कोगनली में पागल व्यक्ति द्वारा कीले युक्त लकडी द्वारा प्रहार।
- मांसभक्षी मकोडे द्वारा उपसर्ग
- असंख्य चीटियों द्वारा उपसर्ग
- 8 फुट लम्बा विषधर सर्प शरीर से 2 घंटे तक लिपटा रहा।

सभी उपसर्गों के समय आचार्य श्री शांतिपूर्वक ध्यान मुद्रा में स्थिर रहे।

तप : साधना

आचार्य श्री ने अपने दीक्षित जीवन में सदैव साधना को विशेष महत्व दिया और कर्मों की निर्जरा हेतु उपवासों के माध्यम से कायक्लेश करते हुए आत्मचिन्तवन में दीक्षित जीवन का अधिकतम भाग व्यतीत किया। आचार्य श्री ने सन् 1914 में क्षुल्लक दीक्षा ली एवं सन् 1955 में उनकी समाधि हुई अर्थात् दीक्षामयी जीवन के लगभग 41 वर्षों में से लगभग 27 वर्ष 2 माह के काल में आचार्य श्री ने उपवास रखकर इन्द्रिय विजय शक्ति का परिचय दिया।

''**मुनि काल में उपवास संख्या** –9938 लगभग 27वर्ष 2 माह के उपवास''[96](आर्यिका ज्ञानमती, 2010)

श्रमण परम्परा के पुनरूद्धारक के रूप में

आचार्य शांतिसागर जी श्रमण परम्परा के संरक्षक थे। उन्होंने जैनधर्म व जैन समाज को उचित दिशा प्रदान की। आचार्य श्री ने इस युग में मुनिधर्म का वास्तविक स्वरू‍प व आचरण करके दिखाया। उनसे पूर्व, उत्तर भारत में तो मुनियों के दर्शन दुर्लभ थे और दक्षिण में मुनि विचित्र चर्या का पालन करते थे, नाममात्र का दिगम्बर धर्म था मुनि ऊपर से एक वस्त्र ओढे रहते थे।

---

[95] मुनि समतासागर, दक्षिणोदित धर्म सूर्य, पृष्ठ 90

[96] आर्यिका ज्ञानमती, प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज, पृष्ठ 18

वे मुनि आहार को उस जगह जाते थे, जहाँ उपाध्याय जाकर पहले से आहार की पक्की व्यवस्था कर लेता था। लोगों को पड़गाहने की विधि नहीं मालूम थी।

इस व्यवस्था को देख शांतिसागर जी महाराज के मन में भाव उत्पन्न हुये कि ये मुनिचर्या नही हैं इसलिये उन्होंने उपाध्याय निर्णीत घर में जाना छोड दिया। दिगम्बर मुद्रा धारण कर उन्होंने आहार के लिये विहार करना प्रारंभ कर दिया लोग आगमनुकूल विधि का ज्ञान न होने से शास्त्र विधि अनुरूप नहीं पडगाहन कर पाते थे, ऐसे में आचार्य श्री शांत भाव से उपवास कर लेते यह क्रम चार दिनों तक चलता रहा तब ग्राम पाटिल के आग्रह पर उपाध्याय ने पडगााहन विधि समझायी और तब आगमनुरूप मुनि चर्या प्रारंभ हुई।

जिनागम की ऐतिहासिक सुरक्षा

आचार्य का सम्पूर्ण जीवन जैन धर्म व जैन संस्कृति की रक्षा में व्यतीत हुआ। उन्होंने जिन संस्कृति के संरक्षण हेतु श्रुत संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये। षट्खण्डागम जैन धर्म का सर्वाधिक प्राचीन आगम ग्रंथ हैं, जब आचार्य श्री को ज्ञात हुआ कि षट्खण्डागम ग्रंथ के मूल ताडपत्र पर लिखित प्रतियॉ नष्ट–भ्रष्ट हो रही है, तब उन्होंने ग्रंथ के ताडपत्रों को पुनः प्रकाशित कराने की प्रेरणा समाज को प्रदान की और समस्त ग्रंथ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण कराया गया।

आचार्य श्री द्वारा प्रदत्त शिक्षा बिन्दुः

- जिनवाणी सर्वज्ञ देव की वाणी हैं। वह पूर्ण सत्य हैं।
- जैन मंत्रों में अचिन्त्य सामर्थ्य पाई जाती हैं।
- जिन मंदिर के अभाव में श्रावक धर्म का अभाव हो जायेगा और श्रावकों के अभाव में मुनि धर्म कैसे रहेगा? मुनिधर्म जब तक रहेगा तब तक जिनधर्म रहेगा। इस दृष्टि से धर्म के आधर स्तंभ जिनमंदिरों की रक्षा परमावश्यक हैं।
- जिनवाणी हमारा प्राण हैं।

- चारित्र की उज्जवलता के साथ अल्प जीवन भी अच्छा हैं। मलिन चारित्र के साथ दीर्घ जीवन व्यर्थ हैं।
- मौन से मन की शांति बढती हैं।
- उपवास द्वारा मोह की मंदता होती हैं।
- जैनधर्म का मुख्य अंग जैन मंदिर हैं।
- आहारदान देने के पूर्व की जाने वाली नवधा भक्ति अभिमान की नहीं धर्म रक्षण की क्रिया हैं।
- सम्यक रत्नात्रय धर्म का आश्रय लेना चाहिये।
- जीव अकेला ही हैं, अकेला ही मोक्ष जाता हैं।
- जब तक धर्मध्यान रहे तब तक उपवास करना आर्त, रौद्र ध्यान उत्पन्न होने पर उपवास करना हितप्रद नहीं हैं।
- नग्नता महत्वपूर्ण नहीं हैं, पशु भी नग्न हैं। दिगम्बर मुनि के गुण सहित नग्नता पूजनीय हैं।

उपरोक्त जीवन चारित्र आचार्यश्री के जीवन चारित्र पर आधारित पुस्तकों–दक्षिणोदित धर्म सूर्य, हमारे आदर्श, चारित्र चक्रवर्ती–एक अनुचिंतन पुस्तकों में दिये गये प्रसंगों पर आधारित हैं।

इस प्रकार महान् आचार्य शांतिसागर जी ने जीवन पर्यंत जैन धर्म के संरक्षण व धर्म की रक्षा के लिये कार्य किये उनका जीवन–चरित्र नमनीय हैं। ऐसे महान् आचार्य के प्रथम शिष्य आचार्य वीरसागर जी आचार्य श्री के स्वर्गवास के पश्चात् पट्टाचार्य बने।

आचार्य वीर सागर जी

सम्पूर्ण भूमण्डल पर भारत देश एक ऐसा देश हैंजहाँ अध्यात्म की गंगा प्रवाहित जहाँ होती रहती हैं, भारतीय संस्कृति की विशेषता विवधता में एकता हैं यहाँअनेक धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय एवं पंथ के लोग निवास करते हैं।

अनादिनिधन जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों की अवतरणस्थली होने का गौरव भारत भूमि को प्राप्त हैं। तीर्थंकरों की परम्परा में अनेक आचार्यों व मुनियों ने दीक्षा लेकर जैनधर्म की प्रभावना की उसी श्रृंखला में श्री कुंद–कुंद आचार्य की परम्परा में वर्तमान शताब्दी में दिगम्बर मुनि परम्परा को पुनर्जीवन देने वाले ''चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी के प्रथम पट्टाधीश शिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का जन्म औरंगाबाद जिले के ईर गांव में विक्रम संवत् 1933 सन् 1876 को आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन माता भागूबाई की कुक्षी''[97] (आर्यिका चंदनामती, 2009) से हुआ था। बालक के जन्म के समय माता ने स्वप्न में उत्तम बैल को देखा था जोकि एक शुभ संकेत था। उनके पिता श्रावक शिरोमणि खण्डेलवाल जाति के भूषण गंगवाल गोत्रीय सेठ रामसुख जी थे। बाल्यावस्था में उनका नाम हीरालाल रखा गया। आठ वर्ष की शैशवावस्था में पिता की आज्ञा से रत्नात्रय के चिन्ह स्वरूप यज्ञोपवीत धारण कर लिया और उचित मूर्हूत में पाठशाला में विद्याध्ययन प्रारंभ किया। उन्हें उर्दू व हिन्दी विषय का ज्ञान था। सातवीं कक्षा तक अध्ययन करके उन्होंने व्यापार करना प्रारंभ किया। माता–पिता ने युवावस्था में विवाह करने के लिये उनसे कहा परन्तु उन्होंने इंकार कर दिया। हीरालाल जी प्रारम्भ से संसार से विरक्त तो थे ही साथ में जैन ग्रंथों के निरंतर स्वाध्याय ने उनके वैराग्य को ओर प्रगाढ़ कर दिया। विक्रम संवत् 1973 सन् 1916 में कचनेरजी अतिशय क्षेत्र में वे धार्मिक पाठशाला खोलकर बच्चों को अध्ययन कराने लगे तत्पश्चात् औरंगाबाद में भी एक विद्यालय खोलकर धार्मिक अध्ययन कराने लगे, उस प्रांत में गुरूजी के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

ब्रह्मचर्य व्रत

सन् 1921 में नांदगांव में ऐलक श्री पन्नालाल जी का चार्तुमास हुआ तब हीरालाल जी उनके दर्शनार्थ नांदगाांव गये, वहाँ आषाढ़ सुदी ग्यारस के दिन ऐलकजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये तब ब्रह्मचारी हीरालालजी बन गये। कुछ समय पश्चात् नांदगांव के एक श्रावक खुशालचंद ने भी सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और वे परस्पर प्रेमभाव से रहने लगे।

[97] आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, प्रथम पुस्तक, पृष्ठ संख्या 62

साधना पथ पर

ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करते ही ब्रह्मचारी हीरालाल जी ने घी, मीठे, तेल और नमक का जीवन पर्यन्त के लिये त्याग कर दिया। सन् 1922 में उन्होंने कोन्नूर में विराजमान आचार्य श्री शांतिसागर जी के दर्शन किए और उनके तपमयी जीवन से अत्याधिक प्रभावित हुये। सन् 1923 में फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन आचार्य श्री शांतिसागर जी ने ब्रह्मचारी हीरालाल जी व ब्रह्मचारी खुशालचंद जी के आग्रह पर उन दोनों को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के पश्चात् ब्रह्मचारी हीरालालजी को आचार्य श्री ने क्षुल्लक वीरसागर नाम प्रदान किया। सन् 1924 में समडोली नगर में आचार्यश्री से चातुर्मास के मध्य निर्ग्रन्थ दीक्षा के लिये निवेदन किया। दीक्षा के पश्चात् मुनि वीरसागर जी के नाम से विख्यात हुए।

धर्म प्रचार के कार्य

मुनि वीरसागर गुरू आज्ञा से दीक्षा के कुछ समय पश्चात् गुरू संघ से अलग होकर कुछ साधु–साध्वियों को संग लेकर धर्म के प्रचार के कार्य करने लगे। अलग–अलग स्थानों पर विहार करते हुये उन्होंने धर्म प्रभावना की ज्योति प्रज्वलित की। उनकी चर्या, प्रवचन एवं स्वभाव से प्रभावित होकर श्रावक–श्राविकायें उनसे व्रत, महाव्रत लेने लगे धीरे–धीरे उनके संघ रूपी पौधा एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गया। उनकी यशोकीर्ति भारत में सर्वत्र फैलने लगीं , चतुर्विध संघ का संचालन करते हुये श्रमणराज वीरसागर जी सम्पूर्ण संघ को साथ जोडे रखने के लिये ड़ोर का कार्य करते थे, उनके वात्सल्य व जीव दया गुण के कारण जो भी उनके समक्ष जाता उन्हीं का हो जाता था।

आचार्य पद

आचार्य शांतिसागर जी उत्तम मानुष पारखी जौहरी थे, उन्होंने मुनि वीरसागर जी की योग्यता व नेतृत्व गुण को पहचानकर, आचार्य पद का दायित्व उन्हें प्रदान करने का निश्चय किया। इसके लिये उन्होंने अंतिम सल्लेखना के समय कुंथलगिरि से जयपुर अत्यंत दूर होने पर भी अपना

आचार्य पद ब्रह्मचारी सूरजमल जी के द्वारा जयपुर भेजकर मुनि श्री वीरसागर जी को आचार्य पद से अलंकृत किया।

नाम की सार्थकता

वीर नाम भगवान महावीर का ही दूसरा नाम हैं। आचार्य वीरसागर जी भी भगवान महावीर की ही भांति बाल–ब्रह्मचारी थे । जिस गम्भीरता के साथ उन्होंने अपने चतुर्विध संघ को जीवन के अंतिम समय तक संभाला उससे सागर की नाम भी सार्थक हुआ।

चारित्रिक विशेषतायें

आचार्य वीरसागर जी स्वभाव से गुणों की खान थे। वात्सल्य भावना उनके चारित्र का विशेष गुण थी। वे यद्यपि महाव्रत पालन और तपस्विता में अत्यंत कठोर थे तथापि संसार के प्राणियों के प्रति उनकी मृदुता, दयालुता अप्रतिम थी। वात्सल्य भावना के कारण ही उनके संघ में वृद्धि होती गयी परिणाम उनके विशाल संघ के रूप में देखने को मिला कि जो एक बार उनका शिष्य बना, वह अन्त तक उनके प्रति एकनिष्ठ रहा, किसी भी शिष्य ने संघ का परित्याग नहीं किया। संघ की विशालता और भव्यता बढ़ती गयी। वास्तव में आचार्य श्री वीरसागर जी का वात्सल्य गुण अनुकरणीय हैं।

गुरू भक्ति

आचार्य श्री वीरसागर जी की अपने गुरू श्री शांतिसागर जी के प्रति असीम भक्ति थी। गुरू आज्ञा से विशाल संघ के साथ अनेक वर्षों तक स्वतंत्र विहार करने पर भी उन्होंने कभी आचार्य पद ग्रहण नहीं किया। ऐसा करना वे गुरू की अवज्ञा मानते थे। प्रकृति से भ ीवे इतने सरल और निरपेक्ष थे कि गुरूदेव आचार्य श्री शांतिसागर जी द्वारा आचार्य पद दिये जाने पर भी उसे उन्होंने अनिच्छापूर्वक चतुर्विध संघ और हजारों भक्तों के आग्रह पर ग्रहण किया।

समाधि–मरण

दीर्घकालीन तपस्या के पश्चात् ''सन् 1957 में जयपुर खनिया चातुर्मास के मध्य अश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन आचार्य वीरसागर जी ने जीवन के चरम लक्ष्य समाधिमरण को प्राप्त किया''[98]। (आर्यिका चंदनामती, 2014)

परम योगी, चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज जैसे आध्यात्मिक सूर्य के एक देदीप्यमान रत्नरूप आचार्य वीरसागर जी की शिष्या एवं बीसवीं सदी की प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी आर्यिका ज्ञानमती जी हैं।

आर्यिका ज्ञानमती जी

भारतीय संस्कृति एक धर्म प्रधान संस्कृति हैं। यहाँ पर जैन, वैदिक एवं बौद्ध संस्कृति की त्रिधाराएँ सतत् गतिशील रही हैं। इन संस्कृतियों में जैनसंस्कृति का एक विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण स्थान हैं। यम, नियम, व्रत, संयम, स्वाध्याय जैनसंस्कृति के अभिन्न अंग है। जैनधर्म का शाश्वत् ध्येय रहा हैं कि जीवन का लक्ष्य भोग नहीं योग है, संग्रह नहीं त्याग हैं, राग नहीं विराग है, अंधकार नहीं प्रकाश है। जैनधर्म में समय–समय पर अनेक मनिषियों के ज्ञान, ऋषियों के चिन्तन और मनन की धाराओं ने भारतीय मनुष्यों को सदैव ऊर्जावान और प्रकाशपूर्ण बनाकर सनातन सत्यों का उद्घाटन किया हैं। इसी श्रंखला में बीसवीं सदी की प्रथम बालसती आर्यिका ज्ञानमती जी जैन संस्कृति की उद्धोषिका, जैनधर्म की प्रचारिका के रूप में वर्तमान में उपस्थित हैं।

जीवन परिचय

जन्म

अध्यात्म जगत की परम साधिका आर्यिका ज्ञानमती जी का जन्म उत्तरप्रदेश के टिकैतनगर में ''22 अक्टूबर 1934 की शरदपूर्णिमा की रात्रि के प्रथम प्रहर में श्रेष्ठी छोटेलाल जी की धर्मपत्नी

[98]आर्यिका चंदनामती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, द्वादशम् पुस्तक, पृष्ठ संख्या 46

श्रीमती मोहिनी देवी''[99] (आर्यिका चंदनामती, 1997)की पावन कुक्षी से हुआ था। ये बालिका माता मोहिनी देवी की प्रथम संतान थी। नन्ही बालिका का नाम मैना रखा गया। मैना बाल अवस्था से ही गम्भीर व व्यवहार कुशल थी। उनकी स्मरण शक्ति अत्यंत तीक्ष्ण थी श्री कपूरचंद जैन, जैन गजट के प्रधान संपादक प्रज्ञापुंज के पृष्ठ संख्या 394 पर लिखते है कि ''शरद पूर्णिमा के दिन जन्मीं कन्या के जन्म के समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे आप साक्षात् शरद पूर्णिमा की उज्जवल ज्योति है, जिसका उजाला समस्त देश में पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक विकीर्ण होगा''। अवध प्रांत में जन्म लेने वाली सरयू नदी की एक बिन्दु आज ज्ञान की सिन्धु बन गयी। शरदपूर्णिमा के चंद्रमा की भांति अपने ज्ञान से सर्वत्र दिव्य प्रकाश आलोकित करने लगी।

परिवार में प्रथम कन्या के जन्म से समस्त पारिवारिक जन हर्षित थे। कन्या के जन्म पर भी पुत्र जन्मोत्सव जैसी खुशियॉ मनाई गई।

बाल्यावस्था

नन्हीं मैना बाल्यावस्था से ही धार्मिक एवं अध्यात्मिक विचारों वाली बालिका थी। मैना की माता मोहिनी देवी को उनके पिता जी ने विवाह के समय दहेज के रूप में ''पद्मनंदिपंचविंशतिका'' ग्रन्थ भेट किया था। गर्भावस्था में मोहिनी देवी निरन्तर ग्रन्थ का स्वाध्याय करती रही जिसके कारण गर्भस्थ बालिका में स्वतः ही धर्म के संस्कार उत्पन्न हो गये थे।

''मैना बचपन से ही ''पद्मनंदिपंचविंशतिका'' ग्रन्थ का स्वाध्याय करने लगी जिससे उनके मन में वैराग्य के बीज अंकुरित होने लगे''[100]। (पं.गजाधरलाल जैन, 1999) देव–दर्शन, स्वाध्याय, ध्यान व चिंतन उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गये। सांसारिक भोग विलास की वस्तुओं का मैना के जीवन में कोई महत्व नहीं था।

वैराग्य पथ की ओर

---

[99] आर्यिका ज्ञानमती, जैन भारती, पृष्ठ संख्या 9

[100] पं. गजाधरलाल जैन, श्री पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रन्थ, पृष्ठ संख्या 6

मैना बाल्यावस्था से ही संसार से विरक्त तो थी ही परन्तु नन्हीं वय में ही उन्हें धर्म व व्यवहारिक जीवन का भी पूर्ण ज्ञान था। चारित्र चन्द्रिका पुस्तक में पृष्ठ संख्या 30 पर आर्यिका चंदनामती जी आर्यिका ज्ञानमती का जीवन परिचय देते हुये लिखती हैं– ''मोहिनी देवी तो तब दंग रह गयी, जब मैना की सखियॉ उनसे कहती कि आज हमें मैना ने शील व्रत पालन का नियम मंदिर जी में दिलवाया हैं''[101] ।(आर्यिका चंदनामती, 2006) इस प्रकार की बातों से ज्ञात होता हैं कि बिना किसी गुरू संयोग के भी मैना का इतना ज्ञान स्वाध्याय का ही परिणाम था।

ब्रह्मचर्य व्रत

विक्रम संवत् 2009, (ईसवी सन् 1952) में मात्र 18 वर्ष की आयु में मैना ने आचार्य श्री देशभूषण जी के सानिध्य में सप्तम प्रतिमारूप आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया।

कुमारिकाओं की पथ–प्रदर्शिका

ब्रह्मचर्य व्रत लेते समय मैना ने पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्षों को झेलकर स्वयं की ही नहीं अपितु समस्त कन्याओं के हाथों में जकड़ी परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़कर अत्यंत साहस का परिचय दिया था । इससे पूर्व बीसवीं शताब्दी की किसी कन्या ने इस मार्ग पर अपना कदम नहीं बढ़ाया था। इसलिये उन्हें ''कुमारिकाओं की पथ प्रदर्शिका'' कहा जाता हैं।

क्षुल्लिका दीक्षा : मैना से क्षुल्लिका वीरमती

आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेने के पश्चात् ब्रह्मचारिणी मैना मात्र एक श्वेत साड़ी धारण करके आर्यिका की भॉति संघ में रहने लगी। कुछ समय पश्चात् संघ विहार करते हुये महावीर क्षेत्र पर पहुॅचा। वहाँ पर मैना ने आचार्यश्री से क्षुल्लिका दीक्षा के लिये निवेदन किया। शुभ मुहूर्त पर चैत्र कृष्ण एकम् सन् 1953 को आचार्य देशभूषण के द्वारा मैना को क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की गयी। आचार्य श्री ने मैना की वीरता और वीर प्रभु की अतिशय भूमि पर दीक्षा होने के कारण

---

[101] आर्यिका चंदनामती, चारित्र चन्द्रिका पुस्तक, पृष्ठ संख्या 30

शिष्या का नाम ''क्षुल्लिका वीरमती''[102] रखा। क्षुल्लिका दीक्षा के पश्चात् वीरमती जी आचार्य संघ के साथ पद विहार करने लगी। पद विहार का अभ्यास न होने से कोमलांगी साध्वी के पैरों से खून की धारा बहने लगती। फिर भी वे अपनी दीक्षा से पूर्ण संतुष्ट थी। क्षुल्लिका अवस्था में वीरमती जी ने आचार्य श्री देशभूषण के संघ में दो चातुर्मास किये, सन् 1953 का उनका प्रथम चातुर्मास उनकी जन्मभूमि टिकैतनगर में हुआ और दूसरा चातुर्मास सन् 1954 में जयपुर में हुआ था, जहाँ उन्होंने मात्र 2 माह में ''संस्कृत की कातंत्र रूपमाला'' व्याकरण पढ़कर ज्ञान पिपासा का परिचय दिया। टिकैतनगर में क्षुल्लिका वीरमती जी का परिचय दक्षिण से आई हुई एक क्षुल्लिका विशालमती जी से हुआ। दोनों साथ में जैन धर्म गूढ रहस्यों को समझने का प्रयास करने लगी।

क्षुल्लिका वीरमती जी ने आर्यिका दीक्षा के लिये निवेदन किया। इस पर आचार्य ने वात्सल्यपूर्वक कहा– ''अभी तक मैने किसी को आर्यिका दीक्षा प्रदान नहीं की है तथा मेरे साथ तुम्हें बहुत अधिक चलना पड़ेगा क्योंकि मैं तेज चाल से प्रतिदिन 30–40 किलोमीटर चलता हूँ। तुम अत्यंत कमजोर हो और लघुवय में इतना नही चल सकती हो, यदि तुम्हें आर्यिका दीक्षा लेनी ही हैं तो चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी महाराज के शिष्य आचार्य वीरसागर जी महाराज के संघ में मैं तुम्हें भेज दूँगा। सुना है, वहाँ वृद्धा आर्यिकायें हैं और वे विहार भी थोड़ा–थोड़ा करते हैं अतः वहाँ तुम ठीक से रह सकोगी''[103]। (आर्यिका चंदनामती, 2006)

गुरू के वचन सुनकर क्षुल्लिका वीरमती जी गुरू संघ से दूर होने के विषय में सोचकर मोह के वश होकर विचलित हो गयी। लेकिन जिस जीव को अध्यात्म की लौ लग जाये उसे कोई भी बंधन नहीं बांध पाता उसी प्रकार क्षुल्लिका वीरमती जी के मन में आर्यिका दीक्षा लेने की प्रबल भावना ने उन्हें हर मोह बंधन से दूर कर दिया। वे विचारने लगी गृह त्याग करते समय उन्हें पारिवारिक मोह बंधन नहीं बांध पाया तो अब आर्यिका पद ग्रहण करने में बांधा उत्पन्न करने वाले मोह का त्याग करना चाहिये।

---

[102] आर्यिका ज्ञानमती, जैन धर्म एवं भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ संख्या 10
[103] आर्यिका चंदनामती, चारित्र चन्द्रिका, पृष्ठ 32

एक दिन उन्हें संदेश मिला कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर यमसल्लेखना ले रहे हैं सुनते ही वे आचार्य श्री के दर्शन करने के तत्पर हो गयी और गुरू आज्ञा लेकर क्षुल्लिका विशालमती जी के आचार्य दर्शन के लिये चल पड़ी । दक्षिण भारत के 'नीरा' ग्राम में पहुँचकर आचार्य शांतिसागर जी के प्रथम बार दर्शन किये। क्षुल्लिका विशालमती जी ने आचार्य श्री को क्षुल्लिका वीरमती जी का परिचय बताया। आचार्य श्री बाल वैरागिनी के विषय में जानकर अत्यंत प्रसन्न हुये। क्षुल्लिका वीरमती जी ने आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा प्रदान करने के लिये निवेदन किया। आचार्य श्री ने यम सल्लेखना ले लेने के कारण कहा कि मैने अब दीक्षा देने का त्याग कर दिया हैं। आचार्य श्री ने वीरमती जी को दीक्षा लेने के लिये अपने शिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी के समक्ष जाने के लिये कहा।

क्षुल्लिका जी के मन में आचार्य श्री के वचनों से अत्यंत संतुष्टि हुई और उन्होंने आर्यिका दीक्षा से पूर्व आचार्य शांतिसागर जी का पण्ड़ित–मरण देखने का निश्चय किया। सन् 1955 का चातुर्मास क्षुल्लिका वीरमती जी और क्षुल्लिका विशालमती जी ने महाराष्ट्र प्रान्त के ''म्हसवड़'' नगर में किया। जहाँ उन्होंने अपने व्याकरण ज्ञान का प्रयोगात्मक उपयोग करके ''जिनसहस्रनाम मंत्र'' की रचना की।

आर्यिका दीक्षा : क्षुल्लिका वीरमती से आर्यिका ज्ञानमती

म्हसवड़ चातुर्मास के मध्य क्षुल्लिका वीरमती जी को ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री ने कुंथलगिरि में यम सल्लेखना ले ली हैं, तब उन्होंने कुंथलगिरि में आचार्य श्री के अंतिम दर्शन किये। द्वितीय भादों शुक्ला द्वितीया को आचार्य श्री ने शांति से सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण करते हुए अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। आचार्य श्री का पावन सानिध्य उन्हें एक माह तक मिला। इस समय में उन्होंने आचार्य श्री के मुख से अनमोल शिक्षायें प्राप्त की। तत्पश्चात् म्हसवड़ का चातुर्मास पूर्ण करके वीरमती जी जयपुर (खानियॉ) में विराजमान आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के संघ में पहुॅची। उन्होंने आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा के लिये निवेदन किया। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज ने एक कुशल जौहरी की भॉति हीरे को परखा और शीघ्र ही उन्हें आर्यिका दीक्षा प्रदान

का निर्णय लिया। संघ विहार करते हुये जयपुर से ''माधोराजपुरा'' नगर पहुॅचा, तब वहाँ विक्रम संवत् 2013 (सन् 1956) में वैशाख वदी दूज को शुभ मुहूर्त में क्षुल्लिका वीरमती जी को आचार्य श्री वीरसागर जी ने आर्यिका दीक्षा प्रदान कर ''ज्ञानमती'' नाम से सम्बोधित किया।

नये गुरू व नवीन नाम के साथ आर्यिका ज्ञानमती जी का नवजीवन प्रारंभ हुआ। सन् 1956 में आर्यिका दीक्षा के पश्चात् उनका प्रथम चातुर्मास जयपुर खानियॉ जी में हुआ। सन् 1957 के चातुर्मास के मध्य आचार्य वीरसागर जी ने पद्मासन अवस्था में नश्वर देह का त्याग किया।

चरित्रिक विशेषतायें

आर्यिका ज्ञानमती जी आचार्य श्री वीरसागर जी की समाधिमरण के उपरान्त आचार्य शिवसागर जी में रही और उनकी आज्ञा से कई मुनि, आर्यिका, क्षुल्लिका आदि को विविध घर्म ग्रंथों का अध्ययन कराया। परन्तु उन्होंने कभी स्वयं को गुरू मानकर ये कार्य नहीं किया। साथ ही उन्होंने सदैव गोचरी वृत्ति से ही आहार लिया। उन्होंने आहार में मीठा, नमक, तेल, दही आदि रसों का त्याग कर दिया।

कतिपय उपलब्धियाँ

उन्होंने कई वैरागिनियों की आर्यिका दीक्षा कराई जिनमें उनकी गृहस्थ अवस्था की लघु भगिनी मनोवती जी भी थी, आर्यिका दीक्षा के पश्चात् उनका नाम आर्यिका अभयमती जी रखा गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक तीर्थों के विकास की प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा से अनेक तीर्थों का विकास हुआ। जिनमें हस्तिनापुर की जम्बूद्वीप रचना, अयोध्या तीर्थ विकास, मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र उत्थान व 108 फिट ऊँची भगवान आदिनाथ की प्रतिमा निर्माण, कुण्ड़लपुर में जिनबिम्ब रचना प्रमुख हैं। उन्होंने अपने ज्ञान व धर्म भावना के आधार पर लगभग 300 ग्रंथों की रचनायें की हैं। आर्यिकाश्री को उनके व्यक्तित्व व कार्यों के विभिन्न उपाधियाँ ''चारित्र चन्द्रिका, युगनायिका, राष्ट्रगौरव, डी. लिट् की मानद् प्रदान की गयी हैं''[104]।

---

[104] आर्यिका ज्ञानमती, जैन धर्म एवं भगवान ऋषभदेव, पृष्ठ संख्या 10

वर्तमान में दीक्षा के 65 वर्ष पूर्ण करने पर भी वे निरन्तर धर्म के प्रचार–प्रसार व तीर्थों के उत्थान कार्य में सतत् प्रयास रत् हैं।

आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रथम शिष्या बालसती आर्यिका चंदनामती जी हैं।

आर्यिका चंदनामती जी को प्राप्त विशेष उपाधियाँ

आर्यिका चंदनामती जी को उनके ज्ञान व कार्यों के लिये समय–समय पर उपाधियों से सम्मानित किया गया हैं।

पी0 एच0 डी0 की मानद् उपाधि

आर्यिका श्री के साहित्यिक कार्यों के आधार पर मुरादाबाद स्थित तीर्थंकर महावीर विद्यालय द्वारा ''8 अप्रैल 2012 को पी0 एच0 डी0 की मानद् उपाधि''[105] से अलंकृत किया गया।

प्रज्ञा श्रमणी की उपाधि

आर्यिका चंदनामती जी को उनकी प्रखर मेधा एवं गुण–विभूषित व्यक्तित्व के लिये सन् 2008 में दिल्ली में आयोजित कल्पद्रुम विधान के समय आर्यिका ज्ञानमती के द्वारा प्रज्ञाश्रमणी की उपाधि प्रदान की गयी।

इस युग की ब्राह्मी, सुन्दरी

आर्यिका ज्ञानमतीजी ससंघ का विहार मांगीतुंगी से अयोध्याजी लिये हो रहा था था। 29 दिसम्बर 2018 को आर्यिका संघ मध्यप्रदेश के सागर जिले के खुरई नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर इस युग के महान् आचार्य– आचार्य श्री विद्यासागर जी ससंघ से आर्यिका संघ का मिलन हुआ। आर्यिका चंदनामती जी ने शरदपूर्णिमा के दिन जन्में आचार्य विद्यासागर जी व आर्यिका ज्ञानमती जी की स्तुति में भक्तिपूर्ण भजन प्रस्तुत किया। वही पर आचार्य श्री ने

---

[105]आर्यिका चंदनामती, मांगीतुंगी भजन संग्रह, पृष्ठ संख्या 9

''आर्यिका ज्ञानमती जी व आर्यिका चंदनामती जी को इस युग की ब्राह्मी व सुन्दरी की संज्ञा प्रदान की''[106]। (पारस चैनल, 29.12.18)

आर्यिका चंदनामती जी की अन्य विशेषतायें

कुशल लेखिका

आर्यिका चंदनामती जी ने 1000 से अधिक भजनों की रचना की। धवला ग्रंथ की संस्कृत से हिन्दी टीका की 12 पुस्तकों की रचना की। व्याकरण शुद्धि व गूढ़ विषयों को सरलता से प्रस्तुत करके आर्यिका श्री ने अपनी विद्वत्ता व लेखन कला का परिचय दिया।

वात्सल्य की प्रतिमूर्ति

आर्यिका चंदनामती जी सभी जीवों के प्रति प्रेम, करूणा व वात्सल्य भावना से प्रभावित होकर भक्तजन उन्हें वात्सल्य की प्रतिमूर्ति कहते हैं।

धर्म प्रभाविका

जैन ग्रंथों को सरल व वर्तमान में प्रचलित आंग्ल भाषा में लिखकर वर्तमान पीढी को धर्म ज्ञान से परिचित कराने का कार्य कर रही हैं।

कुशल शिल्पी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा समय–समय पर किये जानी वाले विभिन्न धार्मिक कार्यों का मार्गदर्शन आर्यिका चंदनामती द्वारा 28 वर्षों से कुशल शिल्पी की भॅाति सुनियोजित करके किया जाता रहा हैं।

कुशाग्र बुद्धियुक्त

---

[106]पारस चैनल पर 29.12.18 को दोपहर 3.00 बजे से सीधा प्रसारण

बाल्यावस्था से ही आर्यिका चंदनामती एक बुद्धिशाली कन्या थी। 13 वर्ष की लघुवय में गूढ़तम विषयों को कण्ठस्थ करके व जैन साहित्य रचना करके उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया।

बहुआयामी व्यक्तित्व

आर्यिका चंदनामती जी का व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं। पढ़ना, पढ़ाना, लिखना, निर्देशन देना, सभाओं को सम्बोधित करना आदि उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की परिचायक हैं।

तीर्थ विकास में योगदान

आर्यिका ज्ञानमती की प्ररेणा से तीर्थंकर भगवंतों की जन्मभूमियों के निर्माण एवं विकास कार्यों में आर्यिका चंदनामती जी ने एक स्तंभ के रूप में योगदान प्रदान किया हैं।

त्रिलोक शोध संस्थान से दूरस्थ शिक्षा में बेसिक डिप्लोमा कोर्स के पाठ्यक्रम का निर्धारण

आर्यिका चंदनामती जी ने त्रिलोक शोध संस्थान के अंतर्गत दूरस्थ शिक्षा में बेसिक डिप्लोमा कोर्स के पाठ्य क्रम के निर्धारण का कार्य किया। जिससे जैन विषय में आचार्य व शास्त्री की उपाधि प्राप्त की जा सकती हैं।

धार्मिक पत्रिका के सम्पादन का कार्य

त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर से ''सम्यग्ज्ञान'' नामक मासिक पत्रिका सन् 1974 से लगातार प्रकाशित हो रही हैं, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन हैं.। जिसे सम्पादन का कार्य आर्यिका चंदनामती जी द्वारा किया जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी प्रत्येक मासिक पत्रिका की विषय वस्तु का सार रूप में एक भजन का निर्माण करती हैं।

जैन धर्म के नियमों की प्रचारिका

आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका ज्ञानमती जी के साथ हजारों कि.मी. की पदयात्रा की, आर्यिका श्री ने ''जनमानस में अहिंसा, शाकाहार, सदाचार की भावनाओं को आरोपित करने का विशेष पुरूषार्थ किया, जो कि आज के समाज की प्रमुख आवश्यकता है''[107]।

जैन श्रावकों के लिए अणुव्रत

जैन धर्म में श्रावको के अनुकरण करने के लियेपाँच पापों के त्याग का विधान हैं। **(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)** इनपाँच पापों का त्यागपाँच अणुव्रत पालन हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार सभी जैन श्रावकों को अणुव्रतों का दृढ़ता से पालन करना चाहिये। पॉच अणुव्रत निम्नांकित हैं

अहिंसा

अहिंसा शब्द नहीं संस्कृति हैं जो जीवन की सम्पूर्ण विकृति को हटाकर प्रकृति के साथ चलने की प्रेरणा देती है, अहिंसा के अभाव में जैन धर्म व जैन संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जैन संस्कृति का सम्पूर्ण आचार–विचार व्यवहार अहिंसा की धूरी पर गतिमान है। अहिंसा अन्तःचेतना का भाव हैं। संसार में जितने भी जीव हैं वे एक दूसरे का उपकार करके ही जी सकते है अपकार करके नहीं, इसलिये आचार्य उमास्वामी ने **तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ** में कहा– "परस्परोपग्रहों जीवानाम्"[108]। (उमा स्वामी) "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" परस्पर एक जीव दूसरे जीव का उपकार करता है। शान्ति का उपाय परस्पर सुरक्षा है अपने समान ही पर को मानना ही शान्ति मन्त्र है। भगवान महावीर स्वामी ने गृहस्थ जीवन में जीने के लिए 4 प्रकार की हिंसा बताई है कि गृहस्थ कौन–सी हिंसा का त्यागी होता है।

1. आरंभी हिंसा 2. उद्योगी हिंसा 3. विरोधी हिंसा 4. संकल्पी हिंसा

ये चारों प्रकार की हिंसा प्रायः दो कारणों से होती है– 1. रक्षण 2. भक्षण। रक्षण के रूप में होने वाली हिंसा परिस्थितिवश होती है; क्योंकि जीव जब स्वयं की रक्षा नहीं कर सकता तो परिवार धन–सम्पदा–समाज या देश की रक्षा कदापि नहीं कर सकता, पर भक्षण की हिंसा,

---

[107] आर्यिका ज्ञानमती, षट्खण्डागमः, सिद्धांत चिंतामणि टीका, पुस्तक–7 पृष्ठ संख्या 73

[108] उमा स्वामी, तत्वार्थ सूत्र, अध्याय 5 सूत्र संख्या 21

स्वार्थ, स्वाद, कार्य, परिग्रह, लिप्सा, कामना, वासना की तृप्ति के लिए की जाती है, जो प्रायः पूर्णतः हिंसा है, अक्षम्य अपराध है। यदि सावधानी रखी जाये, विवेक के साथ कार्य किया जाये तो कई हिंसा से बचा जा सकता

आरम्भी हिंसा

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म हैं परन्तु जीवन जीने के लिए भी हिंसा अनिवार्य है। दैनिक जीवन में कुछ कार्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता होती है। खाना बनाना, कपड़े पहनना, मकान बनाना, घर–दुकान की सफाई करना, बाग–बगीचे लगाना, कपड़े धोना, वाहन धोना आदि, कार्य हेतु इधर–उधर भ्रमण करना, आवश्यकतानुसार यह कार्य आवश्यक है। इसमें आरम्भ संबंधी हिंसा अवश्य होती है पर विवेक पूर्वक कार्य करने से आरम्भ सम्बन्धी क्रिया में भी प्रमाद से बचकर हिंसा को रोका जा सकता है। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''खाना बनाने में हिंसा होती है तो उससे बचने के लिए ध्यान रखें– चूल्हा जलाये तो लकड़ी, कोयला देखकर प्रयोग करना चाहिये, गैस चूल्हा है तो उसे देखकर प्रयोग करना चाहिये। कपड़े धोना है तो नल खुला नहीं रखना चाहिये, व्यर्थ पानी नहीं बहने देना चाहिये, छने जल का उपयोग करना चाहिये । अनाज में घुन लगा हो तो शोध कर पीसना चाहिये। घर में झाडू लगाये तो देख लेना चाहिये कि चीटीं आदि तो नहीं हैं। अग्नि, बिजली आदि का सावधानीपूर्वक प्रयोग करना चाहिये''[109] (आर्यिका चंदनामती जी, 2015)। कपड़े आदि रेशम के नहीं पहनने चाहिये अर्थात् कोई भी कार्य विवेकपूर्वक करना चाहिये ।

उद्योगी हिंसा

गृहस्थ जीवन में रहकर गृहकार्य करना आवश्यक है तो द्रव्य संग्रह करने के लिए कोई न कोई उद्योग करना(व्यापार करना) भी आवश्यक है। बिना व्यापार किये अर्थ लाभ नहीं होता, बिना अर्थ कमाये जीवन को सुचारू रूप से चलाया नहीं जा सकता, इसलिए गृहस्थ को जीने के लिए व्यापार करना भी आवश्यक है। पर यह विचार करें कि व्यापार भी करना है तो कौन–सा

---

[109] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों के आधार पर

करना है। जिसे जैन धर्म का ज्ञान हो जाये, अहिंसा धर्म के प्रति आस्था जागृत हो जाये तो वह इंसान कभी भी हिंसा जन्य व्यापार नहीं करेगा। आर्यिका श्री के अनुसार ''जैन श्रावकों को कभी भी फिश फार्मिंग हाउस, पोल्ट्री फार्म हाउस, पिग फार्म हाउस नहीं खोलना चाहिये, चमड़े के जूते–चप्पल, बेल्ट, पर्स नहीं बेचने चाहिये। जहर–कीटनाशक दवा, तेजाब आदि नहीं बेचना चाहिये, शराब आदि का ठेका नहीं लेना चाहिये। ईंट भट्टा लगाना, खदान खोदना, रेशम के वस्त्र बेचना, खाल, पशु–बाल, जानवर बेचने का व्यापार नहीं करना चाहिये। हिंसक जीव राशि से युक्त दवा का भी व्यापार नहीं करना चाहिये आदि उद्यम हिंसाजन्य कार्य नहीं करने चाहिये''[110] (आर्यिका चंदनामती 2016) । मनुष्य को रक्षा युक्त ईमानदारी से पूर्ण खेती, वस्त्र, सर्राफ, किराना आदि का या जिस कार्य में कम से कम कायिक, मानसिक हिंसा हो वह व्यापार करना चाहिये। हिंसाजन्य व्यापार से कमाया धन घर में हिंसक वातावरण ही उत्पन्न करेगा। इससे बचना ही जैन धर्म है।

विरोधी हिंसा

आक्रामणकारी चोर, डकैत, बदमाश, आंतकवादियों द्वारा ज्ञात–अज्ञात शत्रुओं से अपने जान–माल की रक्षा करने में जो तात्कालिक हिंसा होती है, वह विरोधी–हिंसा है। इस क्रिया में भी सावधानी बरतते हुए साहस, धैर्य, विवेक का परिचय देते हुए कम से कम हिंसा हो, ऐसा विचार मन में रखना भी क्षम्य हिंसा है। विरोधी हिंसा में संकल्प पूर्वक किसी का घात नहीं किया जाता अपितु आत्मरक्षार्थ पर जीवों का घात किया जाता है। सामने वाला आक्रमण कर छोड़ देता है तो उसे भी क्षमा कर अपने शस्त्र का उपयोग बन्द कर मित्रता का हाथ बढ़ा देना चाहिये। जैसे देश की सीमा पर तैनात सैनिक है, वह देश की सुरक्षा के लिए सैंकड़ों लोगों को मार भी देता है तो क्षम्य है; क्योंकि उसके भीतर अपने देश में पल रही सौ करोड़ जनता, उसकी सम्पदा व पशु धन की सुरक्षा की भावना है। विरोधी–हिंसा स्व–रक्षा की भावना मूलक है। यह कायरता नहीं अपितु वीरता है। शत्रु के झुकने पर उसे जीवित छोड़ देना महावीरता है।

[110] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों के आधार पर

आज वास्तविकता अहिंसा का परिचय न होने से महावीर की अहिंसा को कायरता माना गया है। वह कायरता नही हैं। जब अपने ऊपर, देश के ऊपर, परिवार के ऊपर संकट आये तो कायरता–पूर्वक एक कोने में छुपकर परिवार को नुकसान पहुँचाने देना देश को नुकसान पहुँचाने देना, कायरता है और आक्रमणकारी से लोहा लेना वीरोचित् मृत्यु है; जो सम्मान जनक है क्योंकि उसमें देश, धर्म व परिवार रक्षा की भावना है। विरोधी हिंसा करने वाला वक्त पर चींटी मारने से भी डरता है, तो वक्त पर सैंकड़ों की हिंसा भी कर देता है। हिंसा और अहिंसा में भावना को प्रधानता होती है कृत्यों की नहीं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''होशपूर्वक कार्य करना चाहिये जिससे जीवन व्यवस्थित चले और हिंसा भी न हो''[111]। (आर्यिका चंदनामती जी, 2016)

संकल्पी हिंसा

जैन भारती ग्रंथ में आर्यिका ज्ञानमती जी लिखती हैं–''संकल्पपूर्वक मन–वचन–कार्य कृत–कारित–अनुमोदना, समरंभ–समारंभ–आरंभ से किसी भी जीव की हत्या करना संकल्पी हिंसा है''[112]। (आर्यिका ज्ञानमती जी, 2015)

गृहस्थ जीवन में प्रथमतयाः संकल्पी हिंसा का पूर्णतया त्याग होता है। बाकी हिंसा परिस्थितियों के अनुसार विवेक के साथ कदाचित् हो भी जाये तो क्षम्य है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए संकल्पी–हिंसा जघन्य कोटि का अपराध है। अहिंसा प्रेमियों को चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार हिंसा से बचें क्योंकि मनुष्य पूर्णतया हिंसा से नहीं बच सकता हैं परन्तु जान–बूझकर हिंसा नहीं करनी चाहिये, अपने मन में अधिकाधिक अहिंसा लानी चाहिये, उठने–बैठने, खाने–सोने व व्यापार करने में विवेक को सामने रखना चाहिये। किसी का मन किसी के माध्यम से न दुखे, किसी के अकल्याण की भावना मन में न जागृत हो।

सत्य

---

[111] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों के आधार पर

[112] आर्यिका ज्ञानमती जी के प्रवचनों के आधार पर

वाणी एक ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य के मन का प्रतिनिधित्व करती है, तो दूसरी ओर वैचारिक तूफान मचा देती है। वाणी के माध्यम से मनुष्य किसी से घृणा भी करता है तो वाणी के माध्यम से और प्रेम भी करता है। अपना बनाने की प्रक्रिया भी वाणी है, तो दुश्मन तैयार करने का माध्यम भी वाणी है। मनुष्य वाणी के माध्यम से जिसे चाहे जैसा बनाने में सक्षम हो जाता है। **भगवान महावीर** ने अहिंसा के बाद सत्य का वर्णन किया और कहा–एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के प्राणी को अपने समान मानकर सुरक्षा तो अवश्य करना, पर वाणी का ऐसा प्रहार भी न करना कि उनकी आत्मा दुःखित–पीड़ित, संतृप्त हो जाये अन्यथा वह वचन सत्य होने पर भी दूसरे को दुःखित करने में कारण होने से असत्य रूप होंगे। **आचार्य उमा स्वामी** ने कहा कि–**"असदमिधानमनृतम्"** प्रमाद के योग से असद् वचन कहना झूठ है। असद् का अर्थ है–हिंसाकारक। **'असदिति हिंसा करणम् निधानं स्याद् भाषणम्'** अर्थात् जिस वाणी से दूसरा किसी भी रूप से दुःखित होता हैं, संतापित होता हैं ऐसे वचन का अभाव ही सत्य है। मीठी वाणी मिश्री घोल कर अपना दाम्पत्य जीवन बसाती है; तो कड़वी वाणी मात्र तलाक बोलकर सम्बन्ध विच्छेद भी करा देती है। इसलिए जैन धर्म का ज्ञान होने के उपरान्त बाह्‌य हिंसा का त्याग होने से, वाणी का व्यवहार भी विश्वसनीय हो जाता है। वाणी की मधुरता चेहरे की सौम्यता, मन की निष्कपटता हो तो क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी अपना बनाया जा सकता है।

जैन मुनि सौरभ सागर जी के अनुसार

''कटुता हिंसा वैर घृणा की जलती ना है जहाँ अगन,

हितमित प्रिय वाणी का कहना कहलाता है सत्य वचन।

भीतर बाहर एक वचन की बहती जहाँ सरिता है,

सुखमय पावन निर्मल जीवन उसका सदा ही बीता''[113] ।(मुनि सौरभ सागर, 2007)

---

[113] मुनि सौरभ सागर, जैनत्व का बोध, पृष्ठ संख्या 241

जहाँ कटुता, हिंसा, वैर, घृणा की अग्नि न जलती हो ऐसी हित–मित–प्रियवाणी का कहना सत्य वचन कहलाता है। जिनके मुख व मन की एक सी सरिता बहती है। उसी का जीवन सुखमय, पावन व निर्मल व्यतीत होता है।

अस्तेय

आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''जिस धन पर स्वयं का अधिकार हो उस धन को लेना उचित है, जिस धन पर अधिकार न हो उस धन को न्याय नीति के बिना लेना अनुचित है''[114]।(आर्यिका चंदनामती जी, 2016) अधिकार रहित वस्तु को अपना कहना ही चोरी है। अर्थात् दूसरे के स्वामित्व वाली वस्तु को हड़प लेना, उठा लेना, अपने अधिकार में कर लेना, छीन लेना, लूट लेना, धोखा देकर अपना बना लेना चोरी है। इसलिए आचार्य उमास्वामी देव ने कहा है–**"अदत्तादानं स्तेयं"** बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण करना चोरी है।

चोरी से बचने के उपाय

आर्यिका श्री के अनुसार चोरी की आदत से बचने के लिये मनुष्य को अपनी इच्छा व तृष्णा को कम करना चाहिये, क्योंकि तृष्णा ही चोरी की जननी हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत

जब कामना वासना का दैहिक, मानसिक विसर्जन हो जाता है, वहाँ ब्रह्मचर्य की भावना उत्पन्न होती हैं। भारतीय संस्कृति में आचरण की पूजा की जाती है, यदि मनुष्य के मन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह का गुण बाहर से प्रगट भी हो जाये और अब्रह्म का सेवन कर रहा हो तो सारे गुण एक क्षण में ही विलीन हो जाते है। भारतीय संस्कृति में ब्रह्मचारियों की पूजा है, व्याभिचारियों की नहीं। इसलिए भारतीय जीवन पद्धति में चार आश्रम बताये हैं। उसमें गृहस्थाश्रम को छोड़कर बाकी तीन आश्रमों में ब्रह्मचर्य की ही महत्ता प्रगट की गई है। मानव–जीवन की सुदृढ़ नींव ब्रह्मचर्याश्रम पर ही रखी गई है। मनुष्य संसारिक सौन्दर्य के पीछे

---

[114] आर्यिका चंदनामती जी से साक्षात्कार के अधार पर

अपना धन, धर्म, शक्ति, स्वास्थ्य, मर्यादा, समय, संस्कार तक समाप्त कर लेता है इसलिए **जैन श्रावकाचार** में कहा है स्वर्ग वधु सम अप्सरा भी तुम्हें दिखे तो तुम अपने से बड़ी को माता, छोटी को पुत्री समकक्ष को बहन माने और भीतर उठती काम तरंगों को विराम देना चाहिये। काम का विसर्जन ही भगवान का सृजन है, ब्रह्मचर्य संसार समुद्र के तारने वाला है, देवों के द्वारा भी पूजित है।

ब्रह्मचर्य मुक्ति का मार्ग है। अक्षुण्ण पुण्य को उत्पन्न करने वाला है। धीर मनुष्यों के द्वारा सेवित है, रत्नत्रय धारण का उत्तम पात्र है। इस लोक और परलोक में सुख प्रदान करने वाला पवित्र धर्म हैं इसके पालन से मनुष्य दुःखरूपी समुद्र को सहज ही पार कर जाता है। जब मनुष्य का मन विकृत हो जाता है तब इन्द्रिय और भी सक्रिय हो जाती हैं और बाहरी वैभव आकर्षण में फंसकर अपनी स्वाभाविक, आत्म–शक्ति को विस्मृत कर इन्द्रियासक्ति में उलझ जाता हैं **शील मंजूषा के महकतें पुष्प** पुस्तक के अनुसार ''इन्द्रिय रूपी घोड़े बड़े चंचल हैं। ये हमेशा ही उन्मार्ग की ओर जाना चाहते हैं, उन्हें और कोई वश में नहीं कर सकता। एक वही मनुष्य इसको वश में कर सकता है जिसने अपने मन को जीत लिया है। उसी के पास ज्ञान और वैराग्य रूपी दो रस्सियाँ ऐसी हैं कि उनका उपयोग करके यदि चाहें तो उन्मार्ग से उसे ठीक रास्ते पर ला सकते है। इसलिए ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के लिए सबसे पहले मानसिक संकल्प को सुधारना आवश्यक है। हृदय से काम सम्बन्धी विचार निकल जाता है। तो कोई भी स्त्री भोग की वस्तु नहीं–माता, बहन, पुत्री की पवित्र भावना स्वयमेव उभर आती है''। जिसके भीतर ऐसी पवित्र भावना का जागरण नहीं होता है वह कामाग्नि की ज्वाला से सताये हुए की भाँति जानते हुए भी नहीं जानता, देखते हुए भी नहीं देखता। जैनागम के अनुसारपाँच इन्द्रियों द्वारापाँच प्रकार से ब्रह्मचर्य नष्ट होता हैं।

स्पर्श इन्द्रिय

मनुष्य का शरीर अपूर्व ऊर्जा का स्त्रोत है, उस ऊर्जा को वह अगर साधना में लगाता है तो भगवान का जन्म होता है। वर्तमान में मनुष्य स्पर्श इन्द्रिय का दास होकर अपनी संग्रहीत ऊर्जा

को विषय वासनाओं में नष्ट करता है। शरीर का स्पर्श क्षण–भंगुर सुख देता है। अग्नि में ईंधन को डालने से बुझती नहीं प्रत्युत बढ़ती जाती है। जो मल का बीज, मल का आधार, मल को बहाने वाला दुर्गन्ध युक्त और वीभत्स आकार वाले शरीर को देखकर काम सेवन का त्याग करता है वह ब्रह्मचारी है।

रसना इन्द्रिय

मन में यह विचार रखना कि अगर वह कन्या, स्त्री ही यह वस्तु देगी तो खाऊँगा अन्यथा नहीं या ऐसे गरिष्ठ भोजन को करना जो काम–वर्धक है या दवाईयों का सेवन करना, काम–वर्धक शब्दों का उच्चारण करना भी रसना इन्द्रिय अब्रह्म है।

घ्राण इन्द्रिय

शरीर में काम के समय एक प्रकार की गंध स्त्रावित होता है जो नर को मादा की ओर, मादा को नर की ओर आकर्षित करती है, जो सभी जीवों में पाया जाता है या इत्र, फुलेल आदि गन्ध लगाकर घूमना; क्योंकि गन्ध मनुष्य में काम को जागृत करती है, और जीवन को दुर्गन्धमय करती है।

चक्षु इन्द्रिय

यह सबसे ज्यादा खतरनाक है। बाह्य पदार्थों को देखती है और मन को सूचना देकर तन में अग्नि प्रवाहित करती है। इसमें काम को विस्तार करने में चल–चित्र, टी.वी., पिक्चर का सबसे मुख्य साधन है।

कर्ण इन्द्रिय

कर्ण इन्द्रिय शब्द कर्ण प्रिय आकर्षक होता है ओर विपरीत लिंगी का स्वर मिठास के लिए हो, रूप से सम्पन्न हो, चंचलमना हो तो मन सहज ही उस ओर दौड़ जाता है। इसलिए काम का सम्बन्ध गीत–संगीत से भी बहुत है।

प्राचीन जैनाचार्यों ने **मूलाचार ग्रन्थ** में कहा है– "संगीत से मात्र मनुष्य ही नहीं सर्प, हिरणी, गाय यहाँ तक की वनस्पति भी प्रभावित होती है।" ब्रह्मचर्य आत्म–श्रृंगार का श्रेष्ठ अलंकार है। ब्रह्मचर्य मानव की स्वच्छन्द वृत्तियों पर अंकुश है। इसलिए ब्रह्मचर्य को गृहस्थ जीवन में स्वीकार करते वक्त **"स्वदार संतोष"** व्रत का रूप दिया। ''ब्रह्मचर्य की पूर्णता आत्म ओज पैदा करती है और मुक्ति पथानुगामी बनाती है। मुक्ति की प्राप्ति ब्रह्मचर्य की उपासना का अन्तिम पायदान है''[115]।(शील मंजूषा के महकते पुष्प, 2009)

अपरिग्रह

आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार ''धन वैभव का संग्रह करके आत्म–शान्ति को समाप्त नहीं करना चाहिए। अन्न, वस्त्र, धन आदि सुख कर्त्ता नहीं है। इसमें सुख मानना भ्रम है। जितनी आवश्यकता है संग्रह उतना ही करना चाहिए तथा अन्य समस्त वस्तुओं को दुख कर्ता मानकर न्याय मार्ग पर चलना ही अपरिग्रह वृत्ति है, क्योंकि परिग्रह ही अशान्ति का कारण है''।[116] (आर्यिका चंदनामती, 2018)

वर्तमान समय में माना जाता हैं कि धन मनुष्य का ग्यारहवाँ प्राण है। धन के बिना मनुष्य का जीवन मृत के समान हैं परन्तु जब धन धर्म की हत्या करके आता है तब समस्त जीवन को पापमय कर देता है। धन से जीवन नहीं मिलता, जीवन तो धर्म से ही प्राप्त होता है, लेकिन मनुष्य धन–संग्रह को ही जीवन जीने का साधन समझ लिया और चौबीस घण्टे उसी की प्राप्ति में अपना जीवन बर्बाद कर रहा है। जिसके पास धन है उसका जीवन धन्य नहीं, अपितु जिसके पास धर्म है उसी का जीवन धन्य है। धन से बिस्तर मिल सकता है–नींद नहीं। धन से पुस्तक मिल सकती है–ज्ञान नहीं, धन से मन्दिर मिल सकता है–श्रद्धा नहीं, धन से भोजन मिल सकता है–भूख नहीं, धन से सुन्दर स्त्री मिल सकती है–प्यार नहीं, धन से सुविधा मिल सकती है–शान्ति नहीं। शान्ति पाने के लिए धन के मोह को छोड़ना आवश्यक है।

---

[115] मुनि भारत भूषण जी,शील मंजूषा के महकते पुष्प, पृष्ठ संख्या 35

[116] आर्यिका चंदनामती, 2018 के साक्षात्कार पर आधारित

भारतीय इतिहास में चार पुरुषार्थ बताये गये हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धन का एकत्रिकरण आचरण का ह्रास नहीं है–एकत्रिकरण में शोषण की भावना आचरण का ह्रास का प्रतीक है। भगवान महावीर स्वामी स्वयं सम्राट थे। धन–सम्पत्ति, वैभव, ठाठ–बाट की कोई कमी नहीं थी, पर वह धन किसी को उजाड़ कर एकत्र नहीं किया था, अपितु सहज पैतृक पुरुषार्थ और पुण्य से सम्मुख आया था।

जैन दर्शन में अर्थ को निकृष्ट वस्तु नहीं माना अपितु गृहस्थ जीवन निर्वाह करने का एक साधना माना है। अर्थ के अभाव में व्यक्ति दीनतामय, निराशामय जीवन जीना प्रारम्भ कर देता है। मनुष्य को गृहस्थ जीवन में रहकर धन–संग्रह का पर्याप्त पुरुषार्थ करना चाहिए परिग्रह जीवन यात्रा का साधन है लेकिन उसे साध्य समझने से विसंगति उत्पन्न होती है इसलिए–मात्र इतना ख्याल रखना चाहिए कि द्रव्य (धन) प्राप्ति का साधन अन्याय तो नहीं है। हिंसा और शोषण तो नहीं है। जैन धर्म में सम्पत्ति का परहेज नहीं है, सम्पत्ति को सुविधा का साधन मानें, सुख का नहीं। धन के प्रति आसक्ति पाप का कारण है। नारकी के पास धन नहीं है, तिर्यचों के पास धन नहीं है, भिखारी के पास नहीं है, परन्तु नारकी, तिर्यंच, भिखारी परिग्रह की लालसा से घिरे रहते हैं, निरन्तर पाप का आश्रव करते रहते है; क्योंकि धन के प्रति मूर्च्छा है और महावीर ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा था। आसक्ति का नाम ही परिग्रह है, वही आसक्ति दुःख का कारण है। लोभ से धन संग्रह की वृत्ति से मनुष्य का मन चंचल हो जाता है। आदमी लोभ से प्रेरित होकर ही संसार में अपराध करता है, नित्य समाचार–पत्रों में खबर छपती हैं कि लोभ के कारण ही 20 साल की लड़की 50 साल के वृद्ध के साथ शादी कर ली, लोभ के कारण ही हत्याऍ होती है, पाप होते है, विद्रोह होते है, लड़ाई होती है। लोभ सभी दोषों का जनक है, गुणों का भक्षण करने वाला है, जहाँ लोभ निवास करता है वहाँ धर्म नहीं टिक पाता। लोभ के कारण ही मनुष्य की बुद्धि धर्म में स्थिर नहीं रहती। संग्रहवृत्ति धर्म को ताक पर रख देती है। इसलिए तो इंसान लोभ से वशीभूत होकर हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सभी स्वीकार करता है। मनुष्य को संसार में जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता है, समाज में जीने के लिए धन की आवश्यकता है उतना रखना चाहिए। ऐसी धारणा बना लेनी चाहिए कि अगर मेरे पास

अच्छी कोठी हो, कार हो, अनेक नौकर–चाकर हो, पर्याप्त सुख–सामग्री हो तो मैं सुखी हूँ–नहीं इस सब सामग्री के बाद भी सन्तोष नहीं है तो वही ज्यादा पाकर ज्यादा दुःखी होता है। अन्याय, अनीति से प्राप्त धन सुख नहीं, सदैव भय देता है। पाश्चात्य देशों में धन की, सुख–सुविधा की प्रचुरता है फिर भी अशान्त है, सुखी नहीं है। न धनवान सुखी है न ही कंगाल सुखी है।

आर्यिका श्री के अनुसार ''परिग्रह निवृत्ति के लिए गृहस्थों को मर्यादा बना लेनी चाहिए–कि हम इतने वस्त्र से ज्यादा नहीं रखेंगे इतने लाख से ज्यादा नहीं रखेंगे, एक मकान से ज्यादा नहीं रखेंगे, इतने तोला सोना, इतना किलो चाँदी से ज्यादा नहीं रखेंगे। इतनी घड़ी से ज्यादा नहीं रखेंगे, इतने लाख की मर्यादा है मेरी, इतने नौकर से ज्यादा नहीं रखेंगे, इतनी आय हो जाये तो विराम लेंगे। इससे सन्तोष का जागरण होगा, वह सन्तोष जीव को सुखी रख सकता हैं और अपना गृहस्थ–जीवन मुनि–तुल्य बना रख सकता हैं''[117]। (आर्यिका चंदनामती जी, 2017)

सन्तोष के समान सुख तीनों लोकों में नही हैं, इसलिए सन्तोष को स्वीकार करना चाहिये और गृहस्थ जीवन को आवश्यकता से अधिक परिग्रह को नही रखना चाहिये।

इस प्रकार जैन धर्म में मूल रूप से पाँच पापों के त्याग वपाँच व्रतों के पालन पर विशेष बल दिया गया हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार लोभ के कारण पापों की उत्पत्ति हैं। यदि मनुष्य स्वार्थ का त्याग कर इन्द्रियों को वश में कर ले तो पापों से निवृत्ति सम्भव हैं।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा रचित कतिपय पूजाओं एवं साहित्य के अंश

महावीर भक्ति प्रसून पुस्तिका में उत्तम सत्य धर्म का परिचय देते भजन के माध्यम से आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 59 पर लिखती हैं–

''सत्य धरम जब पालन होगा, पापों का प्रक्षालन होगा।

---

[117] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों के आाधार पर

इसका पालन वचन सिद्धि का साधन होगा।। सत्य धर्म।।

जाने कितने झूठ भी मैंने, जनम–जनम में बोले हैं।

स्वार्थ सिद्धि के कारण अपने, वचन न मैंने तोले हैं।।

अब उन सबका क्षालन होगा, सत्य धर्म जब पालन होगा''[118]।(आर्यिका चंदनामती जी, 2001)

श्री महावीर स्त्रोत पुस्तिका में भगवान महावीर की महिमा वर्णित करते हुए पृष्ठ संख्या 87 पर लिखती हैं–

''महावीर जिनेन्द्र धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने में चंद्रमा के समान हैं, पापरूपी अन्धकार को हरने में सूर्य के समान हैं। वे ही मुनीन्द्र वीर भगवान् मोह से अंधे हुए तीनों लोकों के प्राणियों के नेत्रों को सदैव खोलते हैं– दृष्टि प्रदान करते हैं''[119]।(आर्यिका चंदनामती जी, 2003)

श्रावक संस्कार निर्देशिका पुस्तिका में पृष्ठ 23 पर श्रावक की षट् आवश्यक क्रियाओं के अंतगर्त दान का वर्णन करते हुये आर्यिका श्री लिखती हैं–

''स्वपर के अनुग्रह के लिये धन का त्याग करना दान है।

दान के चार प्रकार हैं– आहारदान, ज्ञानदान, औषधिदान, अभयदान।

उत्तम आदि पात्रों में इन चारों दानों को देना उत्तम दान है''[120]। (आर्यिका चंदनामती जी, 2011)

नवग्रह शांति विधान में नवमें तीर्थंकर भगवान पुष्पदंतनाथ जी की पूजा की जयमाला में लिखती हैं–

''भगवन् तुम्हारी पूजन से, सम्यग्दर्शन मिल जाता है।

---

[118] आर्यिका चंदनामती जी, महावीर भक्ति प्रसून, पृष्ठ संख्या 59
[119] आर्यिका चंदनामती जी, श्री महावीर स्त्रोत पुस्तिका पृष्ठ संख्या 87
[120] आर्यिका चंदनामती जी, श्रावक संस्कार निर्देशिका पुस्तिका, पृष्ठ 23

हे नाथ, तुम्हारे अर्चन से, निज अन्तर्मन खिल जाता हैं।।

जैसे अंगार दहकता है, जल सबकी प्यास बुझाता है।

सूरज जैसे देकर प्रकाश, धरती का तिमिर भगाता है।।

वैसे ही प्रभु मुख दर्शन से, मानों सब कुछ मिल जाता हैं।

हे नाथ, तुम्हारे अर्चन से, निज अन्तर्मन खिल जाता हैं।।

द्रव्य संग्रह प्रश्नोत्तरी के पुस्तिका में गाथा 8 के अंतर्गत लिखा है–

भाव कर्म कौन से है?

राग, द्वेष, मोह आदि भावकर्म हैं।

जीव के शुद्ध भाव कौन से हैं?

केवलज्ञान और केवलदर्शन जीव के शुद्धभाव हैं।

तेरह द्वीप रचना में क्या–क्या हैं? पुस्तिका में तेरह द्वीप रचना का परिचय देते हुये पृष्ठ संख्या 15 पर आर्यिका श्री लिखती है–

1. इन तेरहद्वीपों के अंतर्गत ढाई द्वीप में पॉचमेरू पर्वत हैं।
2. प्रथम जम्बूद्वीप से लेकर तेरहवें रूचकवर द्वीप में 458 अकृत्रिम शाश्वत जिनमंदिर हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि पुस्तिका के अंतर्गत पृष्ठ संख्या 24 पर आर्यिकाश्री लिखती है–

''चौबीस जिन की जन्म भूमि का, अतिशय ग्रंथों में आया।

जहाँ पन्द्रह–पन्द्रह मास रतन–वृष्टिसुरेन्द्र ने करवाया।।

वह तीर्थ अयोध्या प्रथम तथा कुण्डलपुर जन्मभूमि अन्तिम।

जहाँ तीर्थकरों की माताओं ने देखे सोलह सपने स्वर्णिम''[121] ।(आर्यिका चंदनामती जी, 2008)

आरती संग्रह पुस्तिका में पृष्ठ संख्या 108 पर विश्वशांति महावीर विधान की आरती में आर्यिका श्री ने लिखा है–

''तीर्थंकर की परम्परा में चौबीसवें तीर्थंकर।

सत्य, अहिंसा, अनेकान्त के पोषक वीर जिनेश्वर।।

आओ सब मिलकर उतारें प्रभु आरती,

आओ सब मिलकर उतारें प्रभु आरती''[122] ।(आर्यिका चंदनामती जी, 2015)

सप्तऋषि विधान पूजा के अंतर्गत पृष्ठ संख्या 21 पर पंचम वलय पूजा के अंतर्गत लिखती हैं–

''तन से सुन्दर मन से सुन्दर था, रूप सर्वसुन्दर ऋषि का।

इसलिये दूर कर सके घोर –उपसर्ग मथुरा नगरी का।।

उन चारणादि ऋद्धिधारी, मुनिवर की पूजा सुखकारी।

उनकी ऋद्धि से मिल जाती, भौतिक आत्मिक संपति सारी''[123] । (आर्यिका चंदनामती जी, 2015)

आर्यिका श्री ने सप्तऋषि विधान पूजा के माध्यम से चारणादि ऋद्धिधारी सप्तऋषि मुनियों के आगमन पर मथुरा नगरी में राजा मधु की मृत्यु के पश्चात् फैली महामारी को सर्वथा शांत होने के विषय का अत्यंत आकर्षक शैली में वर्णन किया है।

---

[121] आर्यिका चंदनामती जी, तीर्थंकर जन्मभूमि पुस्तिका, पृष्ठ संख्या 24

[122] आर्यिका चंदनामती जी, आरती संग्रह पुस्तिका, पृष्ठ संख्या 108

[123] आर्यिका चंदनामती जी, सप्तऋषि विधान पूजा, पृष्ठ संख्या 21

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी इस युग के प्रथम आचार्य चारित्र चक्रवर्ती शांतिसागर जी की परम्परा से हैं, जिन्होंने अपने कार्यों व ज्ञान के आधार पर जैन संस्कृति व संस्कारों का प्रसार करके जैन साधक परम्परा में अपनी अलग पहचान बनायी। ऐसे महान् गुरू की परम्परा में दीक्षित आर्यिका चंदनामती जी का जीवन चरित्र एवं कार्य प्रशंसनीय हैं।

अध्याय–7

आर्यिका श्री एक समाज सुधारिका के रूप में एवं उनके रचनात्मक कार्यों द्वारा जैन धर्म के विकास में योगदान

आर्यिका चंदनामती जी जैन आर्यिका होने के साथ एक समाज सुधारिका के रूप में भी कार्य करती हैं। जैन धर्म के नियमों के प्रचार के साथ–साथ आर्यिका श्री नैतिक मूल्यों के प्रति भी जागरूकता का प्रचार करती हैं। वे शिक्षा को समाज के विकास के लिये एक अनिवार्य तत्व मानती हैं। इसके लिये नवीन तकनीकी के माध्यम से भी शिक्षा के प्रसार में जुटी हैं। लौकिक शिक्षा हो या धार्मिक शिक्षा आर्यिका श्री सदैव ज्ञान के प्रसार के कार्यों को सम्पन्न करने में कार्यरत् रहती हैं। इसके साथ–साथ आर्यिका जी के कुशल मार्गदर्शन में अनेक रचनात्मक कार्य सम्पन्न हुये हैं। जिनके कारण अनेक शिक्षाविद्ों व राजनयिकों पर आर्यिका श्री का प्रभाव देखने को मिलता हैं।

नवीन तकनीकी द्वारा ज्ञान का प्रसार

वर्तमान युग तकनीकी का युग हैं। तकनीकी के प्रयोग ने मानव जीवन को नवीन आयाम प्रदान किये हैं। आज इंटरनेट ज्ञान प्राप्ति के ऐसे साधन के रूप में सामने आया है, जिसके प्रयोग द्वारा सम्पूर्ण विश्व एक इकाई के समान प्रतीत होता हैं। इसके द्वारा ज्ञान के क्षेत्र के विकास के साथ एक शैक्षिक क्रांति का भी उद्भव हुआ हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने अध्यात्मिकता के प्रसार के लिये नवीन तकनीकी अर्थात् इंटरनेट का प्रयोग करके युवा पीढ़ी को धर्म व नैतिकता से जोड़ने का सफल प्रयास किया हैं। उन्होंने एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ जैनिज्म के माध्यम से जैन धर्म से सम्बंधित महत्वपूर्ण विषयों व सिद्धांतों को जन–जन तक पहुॅचाने का कार्य किया हैं। वर्तमान में देश–विदेश के अनेक लोग एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ जैनिज्म के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

आर्यिका चंदनामती जी के शैक्षिक विचार

शिक्षा मानव को आदर्श नागरिक बनाने की दिशा में एक अनिवार्य एवं प्रगतिशील कदम हैं। शिक्षा मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। शिक्षा शब्द स्वयं में सम्पूर्ण अर्थ को समेटे हुये हैं। शिक्षा से तात्पर्य हैं – 'सीखना'। शिक्षा का उद्देश्य मात्र डिग्री प्राप्त करना न होकर अपितु सीखे गये कार्य में कार्य कुशल होने से होना चाहिये। आर्यिका चंदनामती जी पुस्तकीय ज्ञान को वास्तविक ज्ञान मानती हैं, उनके अनुसार पुस्तक पढ़कर उसमें से उपयोगी एवं सैद्धांतिक विषयों को आचरण में उतारना परमावश्यक हैं। आर्यिका श्री के अनुसार मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता हैं। ' अभिमन्यू ने माता की कुक्षी में ही चक्रव्यूह में प्रवेश करना सीख लिया था और भीष्म पितामह बाणों की शैय्या पर लेटकर भी मृत्यु पर्यंत सीखते रहे'।

आर्यिका श्री के अनुसार – वास्तविक शिक्षा वह हैं जो मनुष्य को ज्ञान प्रदान करें व मानव के जीवन को व्यवहारिक बनाये। इसके विपरीत जो शिक्षा मनुष्य को व्यवहारिक ज्ञान नहीं देती, वह निरर्थक हैं। ज्ञान प्राप्ति का क्रम जीवन पर्यंत चलता रहता हैं। ज्ञान की पिपासा का कोई अंत नहीं हैं, ज्ञान कभी पुराना नहीं होता। ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वाध्याय, चिन्तन, तप, संयम व ब्रह्मचर्य परमावश्यक हैं।

''हितानुबन्धि ज्ञानम्'' ज्ञान के विषय में यह अत्यावश्यक हैं कि वह हितानुबन्धि होना चाहिये क्योंकि इसे आलोक कहा हैं। यदि कोई ज्ञान वस्तु को बनाने के स्थान पर बरबाद कर दे तो वह वास्तविक ज्ञान नहीं हैं। जिस प्रकार दीपक का उपयोग पदार्थ दर्शन हैं परन्तु यदि कोई उससे कोई वस्तु जला दे तो यह उसका दुरूपयोग होगा उसी प्रकार ज्ञान का कार्य निर्माण हैं परन्तु वर्तमान में स्वार्थ के वशीभूत होकर कुछ धनलोलुपी व्यक्ति ज्ञान का प्रयोग विनाश कार्यों के लिये करने लगे। विस्फोटक सामग्री– बम, रायफल आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आज राजनीतिक लाभ के लिये कुछ राजनीतिज्ञ अनपढ़ व भोली जनता को भाषण के माध्यम से भड़काकर एक दूसरे के विपरीत कर देते हैं जिस कारण तनाव उत्पन्न होता हैं। इस प्रकार से

ज्ञान का दुरूपयोग से हिंसा, द्वेष और झगड़े को जन्म देता हैं। ऐसी परिस्थिति में यही कहा जा सकता हैं कि ज्ञान निर्माणकारी हैं अथवा विनाशकारी यह उसका उपयोग करने वाले की विचारधारा पर निर्भर करता हैं कि वह ज्ञान का सद्पयोग करेगा अथवा दुरूपयोग।

आर्यिका श्री के अनुसार जो ज्ञान को ऊपर से ओढ़कर घूमता हैं, उसके उत्तरीय को कभी कोई उतार ले सकता हैं, परन्तु जिसने ज्ञान को स्वसम्पत्ति के रूप में उपार्जित किया हैं उसे कोई छीन नहीं सकता। अतः ज्ञानोपार्जन में ज्ञान की पवित्रता होना आवश्यक हैं। आर्यिका श्री के शब्दों में ''ज्ञान सौ बार के अभ्यास से प्राप्त होता हैं और सहस्र बार किये गये अभ्यास से स्थिर होता हैं। यदि उसे सहस्र बार सहस्र से गुणित किया जा सके तो वह इस जन्म में तथा जन्मान्तर में भी साथ नहीं छोड़ती। इस सतत् अभ्यास का नाम ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग हैं।

आर्यिका श्री के अनुसार ज्ञान पुस्तकों में नहीं हैं, पुस्तकें तथा ग्रंथ तो उसे प्राप्त करने में सहायक हैं। सच्चा ज्ञान व्यक्ति की आत्मा में निहित हैं, आवश्यकता है एकाग्रता पूर्वक उसे बाह्य में प्रकट कर आचरण में उतारकर उसका सद्पयोग किया जाये। कर्मरूपी मैल के कारण व्यक्ति अज्ञानता के अंधकार में खो गया हैं। जिस समय उसे स्व आत्मा का दर्शन हो जायेगा, उसी समय सर्व प्रकार के अज्ञान का अंत हो जायेगा। ज्ञान का साक्षात् फल प्रसन्नता एवं शांति हैं। इसलिये ज्ञान कर महिमा का वर्णन करते हुये आचार्यों ने लिखा हैं –

''ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।

इह परमामृत जन्म, जरा भय मृत्यु निवारण''[124] ।। (आर्यिका चंदनामती जी, 2010)

ज्ञान से युक्त मनुष्य के हृदय क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ का कोई स्थान नहीं रहता, वरन् उसका मन सदैव प्रेम, वात्सल्य, सहयोग व अपनत्व की भावना से युक्त रहता हैं।

आर्यिका चंदनामती जी के शिक्षण विधि के संबंध में विचार

आर्यिका श्री के अनुसार किसी भी एक विधि के द्वारा समस्त विषयों का अध्ययन नहीं किया जा

[124] आर्यिका चंदनामती जी के प्रवचनों के आधार

सकता परन्तु एक विषय के शिक्षण हेतु भी कभी–कभी अनेक विधियों का प्रयोग करना पड़ता हैं । इसका कारण यह है कि यदि एक विधि द्वारा सीखने वाले को प्रकरण स्पष्ट नहीं हो पा रहा हैं तो किसी अन्य विधि का प्रयोग करके उस विषय को समझाया जाना चाहिये। आर्यिका श्री के अनुसार शिक्षण विधि विषय के संबंध में रूचि उत्पन्न करने वाली होनी चाहिये।

शिक्षण विधि

प्राचीन शिक्षण विधि– इस विधि में शब्दार्थ, व्युत्पत्ति, प्रवचन, स्वाध्याय, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद–विवाद, कहानियों व सूक्तियों के माध्यम से विभिन्न विधियों का अध्ययन कराया जाता हैं।

आधुनिक शिक्षण विधि– इस विधि में प्रयोग विधि, विश्लेषण विधि, संश्लेषण विधि व करके सीखना इन माध्यमों द्वारा विषय का अध्ययन कराया जाता हैं।

आर्यिका श्री के अनुसार दोनों ही विधियों का विषय को समझाने में विशेष महत्व हैं। प्राचीन विधि के प्रयोग द्वारा विषय को सरल व रोचक बनाया जाता हैं तथा स्वाध्याय व प्रवचन विषय का गहराई तक अध्ययन करने में सहायक होते हैं। वही आधुनिक विधि में प्रयोग व करके सीखने विषय को समझने में सरलता रहती हैं। इस प्रकार इनमें से जिस भी विधि का प्रयोग किया जाये वह विषय व सीखने वाले की रूचि के अनुकूल होने चाहिये।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा स्त्री शिक्षा पर बल

प्राचीन काल में भारतीय समाज में स्त्रियों दशा अत्यन्त दयनीय थी उन्हें परिवार में रहने का, काम करने का अधिकार था परन्तु परिवार संबंधी निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं था। वे जीवन पर्यंत परिवार के मुखिया पिता, पति व पुत्र की इच्छा के अनुरूप ही कार्य करती थी। वे अपनी छोटी–बड़ी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पुरूषों पर ही निर्भर रहती थी। कन्या के जन्म के अवसर पर सम्पूर्ण परिवार तनाव, चिंता व अवसाद से ग्रस्त हो जाता था क्योंकि कन्या के जन्म लेते ही माता–पिता उसे पराया धन मानकर लालन–पालन करते थे। उसके विवाह में दहेज देने की चिंता से व उचित वर मिलने की चिंता उन्हें सदैव परेशान करती रहती

थी। विवाह के उपरांत पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री को बोझ समझा जाता था इसलिये उसे उसके पति की चिता में जीवित जला दिया जाता था। इस कुरीति को सती प्रथा नाम के नाम से जाना जाता था। इन सबका एकमात्र कारण स्त्रियों की निरक्षरता था, जिस कारण वे कभी आत्मनिर्भर नहीं बन पाती थी और सदैव दासता पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये मजबूर थी। आबिद रिजवी द्वारा लिखित ''भारत का सम्पूर्ण इतिहास'' नामक पुस्तक के पृष्ठ संख्या 52 पर वैदिक काल की सभ्यता का वर्णन करते हुयें सामाजिक दशा के अंतर्गत स्त्रियों की दशा का वर्णन करते हुये लिखा हैंः '' स्त्रियां स्वतंत्र नहीं होती थीं और उन्हें अपने पुरूष सम्बन्धियों के संरक्षण तथा नियन्त्रण में रहना पड़ता था। विवाह के पूर्व कन्याओं को अपने पिता के संरक्षण में रहना पड़ता था पिता के ना रहने पर वह भाई के संरक्षण में रहती थीं। विवाह हो जाने पर वह अपने पति के और विधवा हो जाने पर अपने पुत्र के संरक्षण में रहती थीं। इस प्रकार स्त्री को सदैव किसी न किसी के संरक्षण में रहना पड़ता था''[125]। (आबिद रिजवी, 1995) इसके पश्चात् महाकाव्य काल में भी स्त्रियों की दशा दयनीय थीं। रामायण व महाभारत काल का वर्णन करते हुये 'रिजवी' लिखते हैं– सीता जी के निरपराध होने पर भी लोकपवाद के कारण उन्हें अग्नि–परीक्षा देनी पड़ी, द्रौपदी को पति के द्वारा जुऐ में हार जाने पर भरी सभा में अपमानित होना पड़ा था। समय के साथ धीरे–धीरे स्त्रियों की दशा में परिवर्तन होने लगा। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में विभिन्न शिक्षाविद्ों व समाज सुधारकों के प्रयास से सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध आंदोलन प्रारंभ हुआ। उस समय में जैन धर्म व बौद्ध धर्म अपने उत्कर्ष पर थे। जैन धर्म में सदाचार व सत्कर्म का विशेष महत्व था जिनका अनुकरण सर्वसाधारण के लिये महत्वपूर्ण परिवर्तन का द्योतक था। इस काल में स्त्रियों की दशा में सुधार प्रारम्भ होने लगा था। जैन भारती पृष्ठ संख्या 60 पर आर्यिका ज्ञानमती जी लिखती हैं कि ''मुनि अवस्था में भगवान महावीर का सांकल से बंधी चंदनबाला ने पडगाहन किया''[126]। (आर्यिका ज्ञानमती, 1997) उसी समय उसके सांकल के सब बंधन टूट गये। इस प्रकार जैन मुनि को आहार देने व धार्मिक कार्यों में भाग लेने के लिये स्त्रियॉ स्वतंत्र थी। आर्यिका श्री आगे लिखती हैं कि केवली भगवान

[125] आबिद रिजवी भारत का सम्पूर्ण इतिहास, पृष्ठ संख्या 52
[126] आर्यिका ज्ञानमती जी, जैन भारती पृष्ठ, संख्या 60

महावीर स्वामी के समवसरण में 3600 आर्यिकायें थी व 300000 श्राविकायें थी। जिन्होंने भगवान की देशना से ज्ञान प्राप्त किया। जैन धर्म में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने व आत्म कल्याण की स्वतंत्रता थी। इसके पश्चात् गुप्त काल में, राजपूत काल में स्त्रियों की दशा उन्नत थी परन्तु मध्यकाल में मुस्लमान आक्रमणकारियों के भारत में सत्ता स्थापित करने पर भारतीय स्त्रियों की दशा पुनः दयनीय हो गयी। इस काल में महिलाओं को अबला माना जाता था, उस समय की स्त्रियों की दशा के विषय में मैथलीशरण गुप्त जी ने अपनी कविता में लिखा हैं–

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,

आँचल में दूध और ऑखों में पानी'' (मैथलीशरण गुप्त)

19 वीं शताब्दी में भारत में धर्म–सुधार आंदोलन हुये बाल विवाह, वेश्या गमन, सती प्रथा आदि कुरीतियों का अंत हो गया। सन् 1867 में आचार्य केशवसेन की प्रेरणा से प्रार्थना सभा की स्थापना हुई जिसका मुख्य लक्ष्य स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देना था। इस प्रकार 19 वी शताब्दी से भारत की धरा पर स्त्री शिक्षा का पुनः प्रारंभीकरण हुआ। कहा जाता हैं कि स्वतंत्रता के 70 वर्ष व्यतीत हो जाने पर हमारे देश में स्त्रियों की दशा अत्यंत सुदृढ एवं सशक्त हैं। वर्तमान में स्त्री पुरूष से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं। उच्च शिक्षा ग्रहण कर उच्च पदों पर कार्यरत् हैं। वास्तविकता इससे विपरीत हैं– चौधरी चरण सिंह विश्व विद्यालय के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंतर्गत समाजशास्त्र विषय में अपराध व दण्ड़शास्त्र विषय का अध्ययन करने पर ज्ञात होता हैं कि भारतीय समाज में स्त्रियों के विरूद्ध होने वाले अपराधों में कोई कमी नहीं आयी हैं। कुछ क्षेत्रों में आज भी बेटियों को बेटों की तुलना में शिक्षा के कम अवसर प्रदान किये जाते हैं। प्राचीनता व संस्कारों के नाम पर उनका शोषण किया जाता हैं ऐसी परिस्थिति में आर्यिका चंदनामती जी स्त्रियों के अधिकारों एवं आत्मसम्मान की रक्षा के लिये प्रयासरत् हैं। प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह लौकिक हो अथवा अध्यात्मिक स्त्रियों की भूमिका दृढ़ होनी चाहिये ऐसी आर्यिका चंदनामती जी की अवधारणा हैं। उनके अनुसार स्त्रियों की परिवार में विशेष भूमिका हैं। सहनशीलता, करूणा, दया व सहयोग की भावना स्त्री विशेष गुण होते हैं। यदि किसी

परिवार या समाज की भूमिका को सशक्त बनाना हैं तो परिवार या समाज की नारियों का साक्षर होना अनिवार्य हैं क्योंकि एक साक्षर नारी एक नहीं दो–दो परिवार को रोशन कर सकती हैं। एक माता अपने बालकों के लिये सौ अध्यापकों से भी श्रेष्ठ हैं। सौ अध्यापक एक बालक को उतना संस्कारित नहीं कर सकते जितना एक सुशिक्षित माता कर सकती हैं। आचार्य जिनसेन जी ने महापुराण में लिखा हैं–'' नारी गुणवतीधत्ते स्त्री सृष्टे अग्रिम पदं। यदि एक नारी पढ़ेगी तो अग्रिम पद पर पहॅुचेगी। अतः नारी शिक्षा अत्यंत आवश्यक हैं। एक सच्चरित्र नारी जो उपदेश अपनी संतान को दे सकती हैं, संसार की बड़ी–बड़ी पाठशालायें और विश्वविद्यालय उसका 'ककहरा' भी नहीं जानते। वही बालक की प्रथम आदर्श गुरू है, शिक्षिका हैं। बालक का अधिक समय अपनी माता के आस–पास ही व्यतीत होता है, और आरम्भिक संस्कार भी उसे माता से ही प्राप्त होते हैं। बालक कच्ची मिट्‌टी के समान होता है। अतः देश, जाति तथा सर्वविध अभ्युत्थान के लिये एक माता को चक्र पर रखकर दीये, कुम्भ अथवा किसी और प्रकार की आकृति अपने बालक को प्रदान करनी होती है क्योंकि केवल जन्म देने से ही माता का मातृत्व सार्थक नहीं होता है। इस अपेक्षा से प्रत्येक स्त्री का शिक्षित होना आवश्यक है। इसके साथ ही आर्यिका चंदनामती जी स्त्रियों की धार्मिक शिक्षा की भी पक्षधर हैं क्योंकि धर्म नैतिक व चारित्रिक उत्थान का महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। उन्होंने अनेक कन्याओं व स्त्रियों को जैन धर्म व आगम का ज्ञान प्रदान किया व संसार से विरक्त कन्याओं को जैन सिद्धांतों का ज्ञान प्रदान करके जैनेश्वरी दीक्षा व ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान किये। ब्रह्मचारिणनी माधुरी शास्त्री (वर्तमान की आर्यिका चंदनामती जी) के संबोधन पर कुमारी स्वाति जैन ने मात्र 20 वर्ष की आयु में गृह त्याग किया। उन्होंने आर्यिका चंदनामती से जैन तत्व का ज्ञान प्राप्त कर आर्यिका ज्ञानमती जी से आर्यिका दीक्षा प्राप्त की। ब्रह्मचारिणनी अवस्था में संघ में प्रवेश करने पर स्वाति दीदी की लौकिक व अध्यात्मिक शिक्षा साथ–साथ चलती रही। वर्तमान में वे आर्यिका ज्ञानमती जी के संघ में अपने ज्ञान व शिक्षा के माध्यम से विदेशी अनुसंधानकर्त्ता व धर्म ज्ञान की इच्छा रखने विदेशी भक्तों को अग्रेंजी माध्यम से ज्ञान प्रदान करने का कार्य कर रही हैं। वर्तमान में उनके सानिध्य में अनेक आर्यिकायें – आर्यिका सुव्रतमती जी, आर्यिका सुदृढ़मती जी, आर्यिका

मुदितमती जी, भी आर्यिका ज्ञानमती जी से दीक्षित होकर संघ में विद्यमान हैं जिनके शिक्षण में आर्यिका चंदना मती जी की विशेष भूमिका हैं। आर्यिका श्री के अनुसार प्रत्येक स्त्री को इतना शिक्षित अवश्य होना चाहिये की आवश्यकता पड़ने पर वह आत्म–निर्भर हो सके। जैन नियमों के अनुसार स्त्री पुनर्विवाह वर्जित हैं क्योंकि जैन स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर शील व्रत का पालन करती हैं। ऐसे में उनका शिक्षित होना परमावश्यक हैं जिससे वे अपना व अपने परिवार का भरण–पोषण कर सके। इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी स्त्री शिक्षा पर विशेष बल देती हैं। डॉ. श्रेयांस कुमार जैन बड़ौत लिखते हैं कि ''नारी समाज को आर्यिका चंदनामती माता जी ने बहुत कुछ दिया हैं। इनका अवदान नारी समाज कोटि–कोटि वर्षों तक स्मृत रखेगा। केवल दीक्षा लेना पर्याप्त नहीं हैं। दीक्षा लेकर शिक्षा लेना और शिक्षा देना तथा सद्गुणों से प्राणीमात्र का उपकार करना आवश्यक है। आपने दीक्षा के बाद शिक्षा, स्वाध्याय, ग्रन्थ लेखन, तीर्थ जीर्णोद्धार एवं नवीन तीर्थों के निर्माण कार्य में सहयोग कर श्रमण संस्कृति के उत्थान में अपूर्व योगदान किया हैं''[127]। (डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, 2013)

आर्यिका चंदनामती जी एवं संगीत शिक्षा

आर्यिका चंदनामती जी संगीत को मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंश मानती हैं। संगीत तनाव, अवसाद व पीड़ा से ग्रसित जीवों के लिये औषधि स्वरूप हैं। संगीत मानव व सभी चेतन प्राणियों को चिंता व अवसाद से दूर करने का कार्य करता हैं। आर्यिका श्री के अनुसार संगीत का प्राण स्वर हैं। काव्य की काया शब्द और अर्थों द्वारा निर्मित होती हैं, परन्तु संगीत शब्दातीत होता हैं। वह भौगोलिक सीमाओं से परे हैं। प्राणी ही नहीं, वनस्पतियों तक में स्पन्दन भर देती हैं। संगीत कला सा, रे, ग, म आदि सप्त स्वरों पर आधृत है। आर्यिका श्री के अनुसार संगीत एक कला हैं, इसमें महान् शक्ति होती हैं। कितना भी विषैला सर्प हो बीन बजाते ही वह अपने क्रोध को, अपने विष को विस्मृत कर उस बीन की धुन में खोकर आनन्द से झूमने लगता हैं। जब सर्प जैसे क्रूर प्राणी को भी संगीत शांत कर सकता हैं तो मनुष्य का मन भला संगीत से

---

[127] डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, प्रज्ञा पुंज, पृष्ठ संख्या 114)

क्यों नहीं होगा। बालक लोरी सुनाते ही आराम से शांत मन से सो जाता है। जैन शास्त्रों में भी संगीत का अत्याधिक महत्व है और प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश राग–रागनियों की नींव जैन मुनियों ने ही रखी। मोती लाल नेहरू विश्वविद्यालय से डा. एम. भटनागर नाम की एक विदूषीअध्यापिका ने अपनी पुस्तक ''हिन्दी काव्यधारा'' में'संगीत' में इस बात का उल्लेख किया है कि जैन मुनियों ने सभी राग–रागनियों की नींव रखी थी।

संगीत से होने वाले लाभों के विषय में उल्लेख करते हुये आर्यिका श्री कहती है कि यदि कोई एकाग्र चित्त होकर कुछ गाता है तो वह अत्यंत आनंदित हो जाता है। संगीत का प्रयोग गायन, वादन अथवा श्रवण व्यक्ति को तनाव से मुक्त रखता हैं। भारत में प्राचीन काल से ही गायन कला प्रचलित हैं। महिलायें घर में होने वाले उत्सवों विवाह, जन्म आदि के अवसर पर लोकगीत गाकर मनोरंजन किया करती थी। बनारस विश्वविद्यालय में एम. ए. के पाठ्यक्रम में संगीत नामक संस्कृत ग्रंथ पाठ्यक्रम में पढ़ाया जाता हैं। जैनागम के अनुसार जैन धर्म में संगीत को उच्च स्थान प्राप्त है। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री आदिनाथ ने अपनी पुत्रियों ब्राह्मी तथा सुन्दरी को भाषा, संस्कृति, कला आदि स्त्रियों की 64 कलाएँ तथा अपने पुत्र भरत और बाहुबली को पुरूषों की 72 कलाएँ और साथ ही वृषभसेन को संगीत का शिक्षण दिया। वर्तमान में आर्यिका चंदनामती जी प्राचीन आचार्यों व मुनियों की परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य कर रही हैं। आर्यिका श्री ने अपनी दीक्षा के तीस वर्षों में हजारों भजनों की रचना की हैं तथा अपनी मधुर वाणी से स्वलिखित भजनों को गाकर श्रोताओं को मंत्र–मुग्ध किया व भजनों के मर्म को जन–जन तक पहुँचाया।

आर्यिका चंदनामती जी व भक्ति संगीत

कौआ और कोयल दोनों ही श्याम वर्ण के होते हैं, परन्तु कोयल सर्वप्रिय होती हैं और कौआ अप्रिय होता हैं। इसका एकमात्र कारण उनकी वाणी हैं। कौआ कर्कश वाणी में शब्दों का उच्चारण करता हैं जो भी उसकी वाणी का श्रवण करते हैं वे प्राणी उसे धृणा की दृष्टि से देखते है। लेकिन कोयल वाणी के माधुर्य से सभी का ध्यान आकर्षित कर लेती हैं इसलिये

वाणी की मधुरता सर्वव्यापी प्रभाव की ओर इंगित करता हैं। संगीत भी वाणी की मधुरता का एक रूप हैं। भारतीय वाङ्गमय में पंचम वेद के रूप में संगीत की मान्यता हैं। संगीत का संबंध मनुष्य जगत से हा नहीं हैं अपितु समस्त प्राणी जगत संगीतमय हैं। संगीत का समावेश प्रकृति के कण–कण में गुॅजता हैं। परन्तु इसके लिये संवेदनशील श्रवण शक्ति नितांत आवश्यक हैं। पक्षियों का मधुर कलरव, नदी और निर्झरों के बहते जल की ध्वनि, पेड़–पौधों में वायु के वेग से होने वाली सरसराहट संगीत के विविध रूप हैं।

प्राचीन काल में माता लोरी गाकर बच्चों पर सम्पूर्ण वात्सल्य उडेलती थी जिसके श्रवण से बालक मीठी निद्रा का पान करता था। वर्तमान में मॉ की लोरी का स्थान आधुनिक संगीत ने ले लिया। वर्तमान परिवेश में व्यक्ति कार्य के दबाव में मानसिक रूप से थका हुआ व तनाव से युक्त रहता हैं। ऐसे में संगीत का श्रवण करके स्वयं को थकान व तनाव से मुक्त कर लेता हैं। संगीत और भक्ति का संगम प्राचीन काल से हैं। ईशभक्ति हो या गुरूभक्ति या सरस्वती भक्ति, भजन, गीत आदि विभिन्न संगीतमय माध्यमों से अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा और भक्ति की अभिव्यक्ति हैं। प्रसिद्ध जैन विद्वान, कवि द्यानतराय जी, पण्ड़ित दौलतराम जी, बनारसीदास जी, भागचंद जी आदि जैन साहित्यकारों की दीर्घ श्रृंखला ने साहित्य सृजन में भक्ति व संगीत का सहारा लिया हैं। जिसने उनकी कृतियों सरस एवं सरल रूप प्रदान किया जिससे उनकी कृतियॉ लोकप्रिय हो गयी। भक्ति व संगीत के इस संगम में वर्तमान युग में साहित्य के आकाश में चमकती एक तारिका आर्यिका चंदनामती जी के भजनों का उल्लेख परमावश्यक हैं। कठिन तपस्या द्वारा स्वयं को कुन्दन के समान तपाकर शुद्ध करने वाली आर्यिका चंदनामती जी ने स्वलिखित भजनों को चंदन का सुरभि और अमृत के माधुर्य से पूर्ण कंठ के माध्यम से गाकर जैन गीत साहित्य में एक विशेष स्थान बना लिया हैं। सम्यग्ज्ञान पत्रिका के प्रत्येक अंक के प्रथम पृष्ठ पर चंदनामती जी द्वारा रचित भजन अंकित होता हैं। 'सम्यग्ज्ञान' पत्रिका की विषय के अनुरूप ही आर्यिका जी का गीत सृजन करना उनकी लेखनी का चमत्कार है।

आर्यिका चंदनामती जी की पावन लेखनी से सृजित भजनों की विषय वस्तु बहुआयामी हैं किन्तु

उनके द्वारा रचित अधिकांश गीत–साहित्य की मूल संवेदना गुरू मॉ ज्ञानमती जी के चरण कमलों व उनके ज्ञान के केन्द्र–बिन्दु के प्रति अगाध भक्ति एवं पूर्ण सम्पर्ण हैं। उनकी रचनाओं में मुख्य बिन्दु देव–शास्त्र–गुरू की स्तुति रहा हैं। उनके भजनों का श्रवण करने वाले भजनों के मर्म व उनकी मधुर वाणी के माध्यम से स्वात्म का रसास्वादन करने के लिये प्रेरित हो जाते हैं। वर्तमान में आर्यिका के द्वारा रचित भजन भक्ति व भावों की जो गंगा प्रवाहित हो रही हैं वह शास्त्रीय कसौटी पर भी खरी उतर रही हैं। आर्यिका श्री की कृतियों की भाषा सरल, सुबोध एवं प्रांजल हैं इसलिये सामान्य जन भी उनके भजनों को सरलतापूर्वक गुनगुनाने में सक्षम हैं। इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी का भक्ति व संगीत से गहन जुडाव हैं।

आर्यिका चंदनामती जी द्वारा सर्व शिक्षा का प्रसार

आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार सभी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्णाधिकार हैं। शिक्षा प्राप्त करने के लिये आयु, लिंग आदि किसी भी प्रकार बाधक नहीं होते। बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो अथवा पुरूष सभी को शिक्षित होने व ज्ञानार्जन करने का समान अधिकार हैं। ज्ञान की पिपासा का कभी अंत नहीं होता हैं ज्ञान प्रतिक्षण बढ़ता हैं एवं उसका नवीनीकरण होता रहता हैं। वह कभी जीर्ण (पुराना) नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न स्त्रोत हैं जिनमें पुस्तकों का अध्ययन परमावश्यक हैं। अध्ययन करने वाले को स्वयं पढ़कर प्राप्त किये ज्ञान को व्यवहार में क्रियांवित करके प्रयोग द्वारा सिद्ध कर लेने ज्ञान की प्रमाणिकता का भान हो जाता हैं। आर्यिका श्री के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के लिये ग्रहण करने वाले के हृदय में निष्ठा परमावश्यक हैं। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य पाशविक जीवन का त्याग करके सभ्य जीवन जीने लगता हैं। आज का युग वैश्वीकरण का युग हैं सम्पूर्ण विश्व एक इकाई के रूप में कार्य कर रहा हैं ऐसे में अशिक्षित मनुष्य विकास की दौड़ में पिछड़ जाते हैं इसलिये शिक्षा वर्तमान परिवेश में परमावश्यक तत्व हैं, जो किसी भी राष्ट्र, समाज व मनुष्य की प्रगति के लिये महत्वपूर्ण हैं। भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं के अंतगर्त शिक्षा संबंधी योजनाओं में प्रौढ़ शिक्षा योजना का भी मुख्य स्थान हैं –'' पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती '' उसके लिये एक

उपयोगी स्लोगन हैं। समय–समय पर क्रियांवित होने वाली इन योजनाओं में निर्धन, असाह्‌य व अंपगों के लिये निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति योजना आदि उपलब्ध करायी जाती हैं। एक अन्य स्लोगन शिक्षा के महत्व को प्रदर्शित करता हैं –'' पढ़ेगा इण्ड़िया, तभी तो बढ़ेगा इण्ड़िया'' विभिन्न टी.वी चैनल्स के माध्यम से प्रदर्शित कर लोगों में जागरूकता फैलाई जा रही हैं। इस प्रकार शिक्षा का प्रसार अत्यावश्यक हैं।

जैन धर्म के मूल सिद्धांतों के विषय में आर्यिका चंदनामती जी के विचार

जैन धर्म का मूल आधार उसके सिद्धांत हैं। सिद्धांत व नियमों पर आधारित यह धर्म अपनी मूल अवधारणाओं के लिये विश्व प्रसिद्ध हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, स्याद्वाद और कर्मणा वर्ण व्यवस्था जैन दर्शन की मौलिक अवधारणा हैं।

अहिंसा

अहिंसा जैन धर्म का प्राण है। जैन धर्म में अहिंसा का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया गया हैं, उतना किसी अन्य परम्परा में नहीं किया गया हैं। जैन आगम के अनुसार प्रत्येक आत्मा चाहे वह कितनी भी बड़ी या छोटी क्यों ना हो, तात्त्विक दृष्टि से समान हैं इसलिये सभी को जीने का अधिकार हैं। प्राणी मात्र पर दया रखना, जैन धर्म के सिद्धांतों में निहित हैं। भगवान महावीर ने ''जियो और जीने दो '' का उपदेश दिया क्योंकि जैन परम्परा यह घोषणा करती है कि सभी प्राणी जीना चाहते है, कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता इसलिये किसी भी प्राणी को मारना, सताना या पीड़ा देना पाप की श्रेणी में आता हैं। इस प्रकार द्रव्य हिंसा का तो जैन धर्म में पूर्ण निषेध है, साथ ही किसी को मारने, सताने या पीड़ा देने के भाव को जैन धर्म में भाव हिंसा माना जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार भाव हिंसा भी पाप की श्रेणी में आता हैं, जो कर्म–बंधन का कारण हैं व नरकादि गतियों में भ्रमण का कारण हैं। आर्यिका श्री के शब्दों में ''हिंसा को धर्म वे ही प्राणी कह सकते हैं जिन्होंने नरक आयु का बंध कर लिया है। एक सच्चा इंसान तो कभी हिंसा को धर्म नहीं कह सकता''। साथ ही जैन धर्म में स्व–हिंसा को भी निंदनीय माना गया हैं। स्वयं की हिंसा अंग भंग कर लेना, आत्महत्या करना या आत्महत्या

करने के भाव करना भी पाप भी पाप की श्रेणी में आता हैं। जैन आचार्यों ने अहिंसा की महिमा को वर्णित करते हुये लिखा हैंः

सव्वेसिमासमाणं हिदयं गब्भो व सव्व सत्थाणं।

सव्वेसिं वद गुणाणं पिंड सारो अहिंसा हु।।**(आर्यिका ज्ञानमती जी, 2019)**

सब आश्रमों का हृदय, सब शास्त्रों का गर्भ, सब व्रतों व गुणों का पिण्डीभूत सार अहिंसा ही हैं। इस प्रकार अहिंसा जैन धर्म का नींव हैं। आर्यिका श्री के अनुसार ''जो जीव धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड़ के रूप में हिंसा करते है जैसे बलि देना, मांसाहार करके आदि, वे मूढ़ व्यक्ति पाषाण की शिला पर बैठकर ही सागर तिरना चाहते हैं''। हिंसा किसी भी रूप में धर्म नहीं हो सकती इसलिये अहिंसा का मार्ग ही सद्धर्म हैं। भावी पीढ़ी को संस्कारित करने के लिये बालकों में परस्परोपग्रहो जीवानाम्, जियो और जीने दो तथा अहिंसा परमो धर्मः आदि भावों का संचार करना चाहिये।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

आर्यिका चंदनामती जी के वचनानुसार ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' जैन धर्म के महान् ग्रन्थ 'तत्त्वार्थसूत्र' में आचार्य श्री उमास्वामी जी द्वारा लेखनीबद्ध किया गया हैं, जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक प्राणी को अन्य प्राणियों पर उपकार करना चाहिये। यदि प्राणीमात्र इस सिद्धांत का पालन करे तो हिंसा से बचा सकता हैं।

जियो और जीने दो

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी जी द्वारा दिया गया जियो और जीने दो का संदेश जीव दया व अहिंसा का द्योतक हैं। इस संदेश में क्षमाभाव की प्रधानता हैं, उसी प्रकार इसके पालन के लिये शाकाहार भी महत्वपूर्ण हैं। शाकाहारी मनुष्य किसी भी प्राणी की वेदना, दर्द, असीम पीड़ा का अनुभव कर सकता हैं, वह एक मांसाहारी जीवन यापन करने वाला कदापि नहीं समझ सकता।

आर्यिका श्री चंदनामती जी के अनुसार वर्तमान समय में प्रायः व्यक्तियों को इस प्रकार का भ्रम है कि मांसाहार में शाकाहार की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तत्व है, आधुनिकता की होड़ में वह अपनी संस्कृति, आचार–विचार सबको पिछड़ापन मानने लगे हैं। वे झूठी धारणा के शिकार हो रहे है कि शाकाहारी भोजन से उचित मात्रा में प्रोटीन अथवा शक्तिवर्धक आहार प्राप्त नहीं होतां। 'जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन' के अनुसार शाकाहारी भोजन से सात्विक विचार उत्पन्न होते है जबकि इसके विपरीत मांसाहारी भोजन से व्यक्ति के परिणाम क्रूर, अनैतिक तथा हिंसक हो जाते है। इस प्रकार के भोजन से बेइमानी, हिंसा, क्रूरता, निर्दयता बढ़ती हैं। विश्व संध के बुलेटिन के अनुसार अंडे, मांस, मछली के आहार से हार्टअटैक, आतों का कैंसर, पथरी आदि 160 प्रकार के रोग होते है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार के एडवाइजर डॉ. पी. सी. सेन की चेतावनी मांसाहारर से ऑतों में कैंसर, बवासीर, गुर्दे खराब, पित्ताशय की पथरी, अल्सर आदि रोग उत्पन्न होते है। शाकाहार स्वास्थ्य का पूर्ण रक्षक हैं।

डा. एम.सी. गुप्ता, अध्यक्ष, भारत सरकार स्वास्थ्य और पौष्टिक संस्थान, ऑल इण्डिया इंस्टीटयूट् ऑफ मेडिकल सांइसेज्, नई दिल्ली की एक मेडिकल खोज द्वारा सिद्ध किया गया है–

1. अंडे खाने से कैंसर।
2. अंडे खाने से हार्ट अटैक।
3. अंडों और मांस की अपेक्षा शाकाहारी खाद्य में अधिक प्रोटिन।

सन् 1985 के नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. बाउन व डॉ. गोलस्टीन की मैडिकल खोज के अनुसार अंड़े खाना, मौत बुलाना।

डॉ. एस.लाल (एम. डी. मेडिसन) एफ. आर. पी. सी. (अमेरिका) वैज्ञानिक खोज के अनुसार अंडों में छह प्रकार के जहर होते हैं–

1. कॉलेस्टॉल

2. लादप्रोप्रोटींस

3. डी.डी.टी.

4. संतृप्त फेटी एसिड

5. माइक्रोग्लोब्युलिस

6. एस. आर. फ्रैक्शन

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित जार्ज बर्नार्ड शॉ जैसे साहित्यकार की स्वयं की मान्यता यह थी कि हिंसा से घोर आपत्तियॉ आती हैं,। आर्यिका श्री के अनुसार हिंसा, मांसाहार आदि विनाश के द्योतक हैं।

अपरिग्रह

अपरिग्रह का अर्थ है परिग्रह का अभाव। धन–धन्यादि बाह्य पदार्थों को राग भाव से, ममत्व पूर्वक संग्रह करना परिग्रह कहलाता है। यह आसक्ति से बढ़ता है और आसक्ति को बढ़ाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी के शब्दों में ''सभी जीवों में मनुष्य ही एकमात्र प्राणी हैं जो विवेकशील हैं, जिसमें स्वयं भगवान बनने की शक्ति हैं परन्तु वह सारा जीवन परिग्रह के अर्जन, रक्षण और संग्रह में लगा रहता हैं। परिग्रह मनुष्य की आध्यात्मिक साधना में सबसे बड़ा अवरोधक है। यह हिंसा का जनक है।

जैन–दर्शन एकमात्र ऐसा धर्म जो पूर्णतः त्याग पर आधारित हैं, जहाँ परिग्रह के परिपूर्ण त्याग को परम आदर्श कहा गया है। जैन साधक अपरिग्रह के आराधक होते हैं। जैन मुनि परिग्रहका पूर्ण त्याग कर दिगम्बर अवस्था में रहते हैं, वे अपनेपास तिलतुष मात्र भी परिग्रह नही रखते। वही जैन आर्यिका मात्र दो श्वेत साड़ी रखकर बाकि सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर आत्म साधना करती हैं। जैन गृहस्थ (श्रावक) भी अपरिग्रह को आदर्श मानकर अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप परिग्रह की एक सीमा बना कर रखते हैं। सामाजिक दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह अपरिग्रह सिद्धांत अनावश्यक संग्रह से रोकता है। आवश्यकता से अधिक संग्रह शोषण का कारण बनता हैं। शोषण हिंसा का ही रूप है। वर्तमान में कहीं अति–भाव है तो कहीं

अति–अभाव अर्थात् किसी मनुष्य के पास अत्याधिक धन संचित हैं, वह अपने धन की रक्षा में भययुक्त जीवन व्यतीत कर रहा हैं, दूसरी ओर किसी मनुष्य के पास अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये भी पर्याप्त धन नहीं हैं, ऐसे में वह अभाव का जीवन व्यतीत कर रहा हैं। इस प्रकार धन का अधिक होना अथवा कम होना दोनों ही जीवन की शांति को भंग करने का कारण हैं। इन कारणों से समाज में वर्ग– भेद कराता हैं। संचय की प्रवृत्ति मनुष्य को अमानवीय कार्यों का कर्ता बना देती हैं जबकि अपरिग्रह सिद्धांत अनावश्यक के संग्रह से बचाकर समभाव स्थापित करता हैं। समाजवादकी स्थापना में अपरिग्रह का अनुसरण अनिवार्य है।

अनेकान्त

''अनेकान्त'' जैन दर्शन का प्रमुख अंग हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार वस्तु अनन्त धर्म से युक्त हैं, अर्थात् एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी अनेक गुण विद्यमान होते है। उनके विषय में जानने के लिये अनेकान्तात्मक दृष्टि को अपनाना परम आवश्यक हैं। अनेकान्त का अर्थ हैं, अनन्त धर्म से युक्त वस्तु को तत्तद् दृष्टि से स्वीकार कर वस्तु समग्र बोध कराने वाली दृष्टि। अनेकान्त दृष्टि के अभाव में वस्तु का समग्र नहीं हो सकता, क्योंकि वस्तु जैसी दिखाई देती हैं वैसा उसका वास्तविक रूप हो ऐसा मानना पूर्णरूपेण सत्य नहीं हैं। उसका कोई दूसरा पक्ष भी सत्य हो सकता हैं। जैन मनीषियों के अनुसार 'अनेके अन्ताः धर्माःयस्मिन् स अनेकान्तः' अर्थात् जिसमें अनेक अंत अथवा धर्म पाये जाते हैं। वस्तु परस्पर विरोधी अनेक गुणों का पिण्ड है। वह सत् भी है असत् भी, नित्य भी है, अनित्य भी हैं, एक भी हैं, अनेक भी है। 'पुरूषार्थ सिद्धयुपाय' में अनेकान्त को एक उदाहरण द्वारा समझाया गया हैं–

''एकेंनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्वमितरेण।

अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान नेत्रमिवगोषी''[128] ।।(आचार्य अमृत चन्द्र, 2001)

[128] पुरूषार्थ सिद्धयुपाय, पृष्ठ संख्या 225

जिस प्रकार एक ग्वालिन दही को मथकर मक्खन निकालने वाली मथनी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ को ढीला कर देती हैं:; इसी प्रकार जैन–पदार्थ–निर्णय–पद्वति (अनेकान्तवाद) पदार्थ के किसी धर्म को मुख्य करती हैं, तो दूसरे को गौण कर देती हैं, उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती है। इसी अनेकान्त रूपी वृक्ष का फल स्याद्वाद है। यह भी कहा जा सकता है कि अनेकान्त नामक सिद्धांत का उपदेशक स्याद्वाद है। स्थूल रूप में स्याद्वाद, अनेकान्त, नयवाद को पर्यायवाची शब्द कहा जा सकता हैं किन्तु स्याद्वाद का पर्यायवाची संदेहवाद या शायदवाद तो कदापि नहीं हो सकता।

स्याद्वाद

स्याद्वाद अनेकान्तात्मक वस्तु तत्व के प्रतिपादन के लिये अपनायी जाने वाली भाषा शैली हैं। ''स्यात्'' शब्द का अर्थ है ''कथंचित्'' (जयधवला 1/231 धवला 3/8) अर्थात् किसी अपेक्षा अथवा दृष्टि से। ''वाद'' शब्द का अथ है कथन अथवा वचन। इस प्रकार जो स्यात् का कथन अथवा प्रतिपादन करने वाला है वह स्याद्वाद है। इससे तात्पर्य है कि जो विरोधी धर्म का निराकरण न करता हुआ अपेक्षा विशेष से विवक्षित धर्म का प्रतिपादन करता है वह स्याद्वाद है। आर्यिका श्री एक उदाहरण के माध्यम से अनेकान्त के विषय समझाती हैं जब वस्तु तत्व ही अनेकान्तात्मक है, तब उसका एक साथ पूर्ण रूप से कथन नहीं किया जा सकता। उसके लिये सापेक्ष वर्णन शैली अपनाना परमावश्यक हैं। जिस प्रकार एक स्त्री पति की दृष्टि में पत्नी हैं, पुत्र की दृष्टि से माता हैं, पिता की दृष्टि से पुत्री हैं स्त्री एक हैं परन्तु विभिन्न दृष्टिकोण से उसके रूप अनेक हैं। इस प्रकार वस्तु के समग्र बोध के लिये स्याद्वाद दृष्टि को अपनाना परमावश्यक हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने जिस सापेक्षवाद का कथन किया है वह सापेक्षता का सिद्धांत मात्र भौतिक पदार्थों तक ही सीमित है परन्तु जैन–दर्शन में सापेक्षता को अत्यंत व्यापक अर्थों में समझाया गया है कि लोक के सम्पूर्ण अस्तित्व सापेक्ष हैं। आर्यिका श्री के अनुसार स्याद्वाद के अंतर्गत किसी भी विषय को बताते हुये 'ऐसा भी हो सकता हैं' यह कहा जाता हैं। 'ऐसा ही होगा' स्याद्वाद नही विवाद का कारण हैं।

कर्म सिद्धांत

जैन धर्म कर्म पर आधारित है। जैन मान्यता के अनुसार मनुष्य जैसे कर्म करता हैं। वैसा ही फल प्राप्त करता हैं। रागद्वेष से पूर्ण कर्म संसार बंधन के कारण हैं। आर्यिका ज्ञानमती जी ने जैन भारती ग्रंथ पृष्ठ संख्या 214 पर लिखा हैं–''जिनके द्वारा आत्मा परतंत्र किया जाये उसे कर्म कहते है। जीव और कर्म का संबंध अनादि काल से है और इन दोनों का अस्तित्व स्वतः सिद्ध है''[129]। (आर्यिका ज्ञानमती जी, 1997) कोई जीव दूसरे जीव को सुख–दुख देने वाला नहीं हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार यदि स्वयं के कर्मों को सुधार ले तो कोई भी उसे दुख देने वाला नहीं हैं। जैनागम के अनुसार भगवान भी जगत के कर्ता, धर्ता नहीं अपितु ज्ञाता, दृष्टा हैं।

जैन धर्म के ये पाँच सिद्धांत जीवदया, संयम व परस्पर सांमजस्यपूर्ण जीवन के द्योतक हैं। इन सिद्धांतों के पालन से संसार में व्याप्त हिंसादि समस्याओं का हल सम्भव हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान में आर्यिका चंदनामती जी की भूमिका

भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ हस्तिनापुर में सन् 1974 में 'जम्बूद्वीप' की भव्य रचना हैं। जैन भूगोल पर आधारित 200 फुट के व्यास में निर्मित अद्वितीय रचना हैं। जम्बूद्वीप परिसर में 101 फुट सुमेरू पर्वत जैन धर्मावलंबियों के लिये आकर्षण का केन्द्र हैं। प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित शोध संस्थान, आध्यात्मिक उन्नयन के लिये पवित्र स्थल, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की भक्ति का केन्द्र हैं। इस अनुपम तीर्थ को विकसित करने वाली संस्था हैं – ''दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान'' (रजि.)। आर्यिका ज्ञानमती जी की पावन प्ररेणा से 1972 में इस संस्थान की स्थापना हुई। उस समय ब्रह्मचारिणी माधुरी शास्त्री (वर्तमान की आर्यिका चंदनामती जी) आर्यिका ज्ञानमती जी के संघ में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके आत्म साधना के लिये रहने लगी थी। त्रिलोक शोध संस्थान के निर्माण में ब्रह्मचारिणी माधुरी

[129] आर्यिका ज्ञानमती जी, जैन भारती ग्रंथ, पृष्ठ संख्या 214

शास्त्री की सदैव महत्वपूर्ण भूमिका रही। संस्थान के लिये लक्ष्य निर्धारण में व निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के उनका अविस्मरणीय योगदान रहा। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च के नाम से विख्यात इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य थे : जम्बूद्वीप का निर्माण। संस्था का लक्ष्य पूर्ण होने पर जम्बूद्वीप के निर्माण होने के पश्चात् जम्बूद्वीप ही संस्थान का कार्यालय बन गया।

जम्बूद्वीप परिसर में निर्मित रचनायें

जम्बूद्वीप परिसर की 30 एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा विभिन्न योजनाओं को क्रियांवित रूप प्रदान कर भव्य जिनबिम्बों की स्थापना की गयी। इन रचनात्मक कार्यों में संस्थान को सदैव आर्यिका चंदनामती जी का कुशल नेतृत्व एवं मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा। जैन शिल्प–कला व मूर्तिकला के विषय में अत्यंत रूचि होने के आर्यिका चंदनामती जी ने विषय संबंधित साहित्य का स्वाध्याय करके व गुरू माँ ज्ञानमती जी द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर इन दोनों विषयों में विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसी ज्ञान के आधार पर जम्बूद्वीप परिसर के निर्माण कार्य में विशेष भूमिका निभाई। जम्बूद्वीप परिसर में निर्मित जिनबिम्बों का परिचय निम्नांकित हैं।

जम्बूद्वीप रचना

भारतीय शिल्प एवं जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण है – जम्बूद्वीप रचना इस रचना में जिनेन्द्र भगवान की 207 प्रतिमायें हैं। मूर्तिकला व शिल्पकला की दृष्टि से यह रचना अत्याधिक उत्तम हैं। जम्बूद्वीप रचना में जिनबिम्बों की रचना के साथ–साथ बच्चों के मनोरंजन के लिये आधुनिक आकर्षण की वस्तुयें फुव्वारें, नौका विहार, झूले आदि भी निर्मित हैं।

1. **कमल मंदिर**

कमल की आकृति में निर्मित यह जिन–बिम्ब पर्यटकों के लिये आकर्षण का केन्द्र हैं। कमल मंदिर में भगवान महावीर स्वामी की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

2. **त्रिमूर्ति मंदिर**

जम्बूद्वीप परिसर में स्थित त्रिमूर्ति जिनालय मे भगवान आदिनाथ, भरत जी एवं बाहुबली जी की खड्गासन प्रतिमायें हैं। तीन प्रतिमायें होने के कारण मंदिर जी का नाम त्रिमूर्ति मंदिर सार्थक हैं।

3. **वासुपूज्य मंदिर**

इस जिनबिम्ब में 12वें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य जी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

4. **शांतिनाथ मंदिर**

हस्तिनापुर की परम पावन भूमि तीन भगवंतों (भगवान शांतिनाथ, भगवान कुंथुनाथ, भगवान अरहनाथ) की चार कल्याण भूमि (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान कल्याण) भूमि हैं। इस जिनालय में उन भगवान शांतिनाथ, भगवान कुंथुनाथ, भगवान अरहनाथ की खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

5. **ओम् मंदिर**

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित ओम् रचना इस मंदिर में विराजित है।

6. **ध्यान मंदिर**

चौबीस तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमाओं सहित **'ह्रीं'** रचना ध्यान मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

7. **विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर**

जैनागम के अनुसार विदेह क्षेत्र में 20 तीर्थंकर सदैव शाश्वत् विद्यमान रहते हैं। इस जिनालय में विदेह क्षेत्र के विद्यमान तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

8. **सहस्रकूट मंदिर**

सहस्रकूट जिनालय जिनेन्द्र भगवंतों की 1008 प्रतिमायें विराजमान हैं।

9. **भगवान ऋषभ देव मंदिर**

इस जिनालय में भगवान ऋषभदेव की धातु निर्मित मूलनायक प्रतिमा हैं।

10. **भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ**

31 फुट ऊँचें इस कीर्तिस्तंभ का निर्माण 'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' के अंतर्गत हुआ था। इस कीर्तिस्तंभ में भगवान ऋषभदेव के जीवनचरित्र को प्रदर्शित किया गया हैं। स्तंभ में जिनेन्द्र भगवंतों की आठ प्रतिमायें हैं।

11. **तेरहद्वीप रचना**

मध्यलोक में तेरहद्वीप हैं जिनमें अनंत अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इस मंदिर में मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरू पर्वतों के साथ–साथ कुल 2127 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

12. **अष्टापद दिगम्बर जैन मन्दिर**

इस जिनबिम्ब में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद–कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है।

13. **नवग्रह शान्ति जिनमंदिर**

आर्यिका ज्ञानमती जी की पावन प्रेरणा व आर्यिका चंदनामती जी के मार्गदर्शन में उत्तर भारत में सर्वप्रथम निर्मित नवग्रह शांति जिनमंदिर निर्माण किया गया। इस जिनालय में नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित प्रतिमायें विराजमान हैं।

14. **तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमायें**

हस्तिनापुर जिन तीर्थंकरों की जन्मस्थली हैं, उन शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ भगवान की 31–31 फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान है।

15. तीनलोक की भव्य रचना

करणानुयोग ग्रंथ– त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि के अनुसार तीन लोक की अद्भूत रचना का निर्माण आर्यिका चंदनामती जी के मार्गदर्शन का ही सुफल हैं। इस जिनालय में अत्याधुनिक सुविधा के लिये लिफ्ट की भी व्यवस्था हैं।

16. भगवान चंद्रप्रभु मंदिर

इस जिनालय में भगवान चंद्रप्रभु जी की 10 फुट उत्तुंग ग्रेनाइट पाषाण की विशाल पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं।

17. जम्बूद्वीप औषधालय

जम्बूद्वीप रचना के अंतर्गत जम्बूद्वीप औषधालय की भी व्यवस्था की गयी है।

18. जम्बूद्वीप पुस्तकालय

जम्बूद्वीप पुस्तकालय में प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग 15000 ग्रंथों एवं पुस्तकों का संग्रह हैं।

19. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस

जम्बूद्वीप प्रांगण में निर्मित है कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियों का विविध झॉकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनोहर प्रस्तुतीकरण किया गया हैं।

20. धर्मशालाएँ

जम्बूद्वीप धर्मशाला में 200 से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि निर्मित हैं, जिनमें यात्रियों के ठहरने के लिये सभी आधुनिक सुविधायें उपलब्ध हैं।

21. राजा श्रेयांस भोजनशाला

जम्बूद्वीप में आने वाले दर्शनार्थियों के लिये राजा श्रेयांस भेजनशाला में प्रतिदिन शुद्ध भोजन की

व्यवस्था के लिये राजा श्रेयांस भोजनशाला का निर्माण किया गया है।

इस प्रकार आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा व आर्यिका चंदनामती जी के कुशल नेतृत्व में तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप तीर्थ की भव्य रचना का निर्माण दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा कराया गया।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के तत्वाधान में क्रियांवित साहित्यिक कार्यों में आर्यिका चंदनामती जी की भूमिका

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला

सन् 1972 में संस्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला प्रकाशन के माध्यम से लगभग 400 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संकरणों ृका लाखों की संख्या में प्रकाशन का कार्य वर्तमान में हो चुका हैं। इन सभी प्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशन संबंधी अशुद्धियों व त्रुटियों को दूर करने का कार्य आर्यिका चंदनामती जी के कुशल निर्देशन में सम्पन्न किया जाता हैं।

सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका के सम्पादन में आर्यिका चंदनामती जी भूमिका सम्यग्ज्ञान पत्रिका सन् 1974 से निरंतर प्रकाशित हो रही हैं, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं संस्थान से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के विषय में जानकारी प्रकाशित की जाती हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर स्थल पर अक्टूबर 1981 में 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार' का आयोजन किया गया। जिन अनेकों जैन विद्वानों ने जैन धर्म व धर्म प्रभावना एवं तीर्थ विकास से संबंधित विषयों पर विचार व्यक्त किये।

जम्बूद्वीप सेमिनार

दिल्ली के फिक्की ऑडिटोरियम में 31 अक्टूबर 1982 में 'जम्बूद्वीप सेमिनार' का आयोजन किया

गया। जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तात्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान

जम्बूद्वीप स्थल पर अप्रैल 1985 में 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' रथ उद्घाटन

दिल्ली के लालकिला मैदान में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा 4 जून 1982 को सम्पूर्ण भारत देश में भ्रमण करने हेतु तथा अहिंसा, चारित्र निर्माण एवं विश्व बंधुत्व के संदेश का प्रचार–प्रसार करने हेतु 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' रथ उद्घाटन किया गया। 1045 दिन तक भारत के विभिन्न नगरों में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में मुख्य द्वार के समक्ष स्थापित कर दी गयी।

अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी

जम्बूद्वीप स्थल पर सन् 1992 में अंतर्राज्यीयचरित्र निर्माण संगोष्ठी का आयोजन मध्यप्रदेश के विधायक श्री नेमीचंद जी की अध्यक्षता में किया गया।

जैन गणित एवं चारित्र निर्माण संगोष्ठी

जैन गणित एवं चारित्र निर्माण आदि विषयों पर मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के तत्वाधान में संयुक्त रूप से संगोष्ठियॉं आयोजित की गई।

भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव संगोष्ठी

अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय एवं फैजाबाद विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में सन् 1993 में ' भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी

मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में पंचदिवसीय 'गणिनी आर्यिका ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी का अक्टूबर 1995 में आयोजन किया गया।

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ उद्घाटन एवं संगोष्ठी

9 अप्रैल 2014 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी द्वारा तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से सम्पूर्ण देश भर में भ्रमण करने हेतु 'भगवान ऋषभदेव श्री विहार रथ' का उद्घाटन किया गया। यह रथ लगभग तीन वर्षों तक देशभर में भ्रमण करते हुये तीर्थंकर भगवंतों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार–प्रसार करते हुये भगवान ऋषभदेव की तपस्थली प्रयाग पहुँचा। वहाँइलाहाबाद उच्च न्यायलय के तत्कालीन न्यायधीश के करकमलों से रथ की स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ।

राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन

जम्बूद्वीप स्थल अक्टूबर 2014 में 'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' का आयोजित किया गया। जिसका उद्घाटन तत्कालीन संसद सदस्य श्री राजेश पायलट के कर कमलों से द्वारा किया गया।

भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष

4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' का उद्घाटन किया गया। सम्पूर्ण वर्ष में इस युग में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर 1008 संगोष्ठियों की श्रृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि देशों की भूमियों पर भी 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महोत्सव आयोजित किया गया।

जैनधर्म की प्राचीनता, राष्ट्रीय सेमिनार

हस्तिनापुर की पावन धरा पर स्थित जम्बूद्वीप स्थल पर 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया गया। जिसमें विभिन्न विद्वानों के माध्यम से जैनधर्म के इतिहास, ऐतिहासिक महत्व आदि विषयों पर वक्तव्य प्रस्तुत किये गये।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित नवनिर्माण कार्य

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा समय–समय पर जैन तीर्थों के नव–निर्माण के कार्य सम्पन्न किये गये।

तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ एवं महाकुंभमस्तकाभिषेक

भगवान ऋषभदेव की दीक्षा भूमि–प्रयाग, इलाहाबाद में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' के नवनिर्माण का कार्य फरवरी 2001 में संस्थान के माध्यम से सम्पन्न किया गया। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा स्थापित की गयी। केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान ऋषभदेव की चारों दिशा में मुख किये प्रतिमायें स्थापित कर दिव्य समवसरण रचना की गयी तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीकस्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की रचना करके भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा एवं तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान की गयी। साथ ही 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित किया गया। सन् 2001 में फरवरी माह की 4 से 8 तारीख के मध्य 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

नंद्यावर्त महल तीर्थ निर्माण

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान कमेटी के अथक परिश्रम द्वारा भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्ड़लपुर में सन् 2003–2004 में 'नंद्यावर्त महल तीर्थ' का निर्माण किया गया। कुण्ड़लपुर में निर्मित तीर्थ परिसर में भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर,

त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (जिस महल में भगवान महावीर ने जन्म लिया था) एवं भगवान शांतिनाथ की रचना ने इस तीर्थ को आकर्षक रूप प्रदान किया। भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्ड़लपुर के प्रचार–प्रसार हेतु भगवान महावीर ज्योति रथ का प्रवर्तन किया गया।

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव

भगवान पार्श्वनाथ जी की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का शुभारंभ किया गया। 27 दिसम्बर 2005 तक सम्पूर्ण वर्ष भर यह उत्सव विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के माध्यम से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्‌घाटन पूज्य गणिनी ज्ञानमती जी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की तात्कालिक महामहिम श्री प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा वर्ष 2009 को 'शांति वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा की गई।

भगवान पुष्पदंत कीर्ति स्तंभ तीर्थ स्थापना

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी द्वारा आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा एवं आर्यिका चंदनामती जी के मार्गदर्शन से भगवान पुष्पदंत की जन्मभूमि काकन्दी, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश का विकास कार्य सम्पन्न किया गया। इस तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ जी की सवा 9 फुट पद्मासन प्रतिमा को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित करके स्थापित किया गया हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ का निर्माण कार्य भी किया हैं।

श्री महावीर जी में पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर निर्माण कार्य

आर्यिका ज्ञानमती जी एवं आर्यिका चंदनामती जी की प्रेरणा से सन् 2012में अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी में शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में पंचबालयति दिगम्बरजैन मंदिर का निर्माण कार्य सम्पन्न किया गया।

इस प्रकार दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा क्रियांवित समस्त गतिविधियों में आर्यिका चंदनामती जी की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। संस्थान के द्वारा समय–समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यकलाप में णमोकार महामंत्र बैंक हैं, जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालुओं द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा समय–समय पर दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार

यह पुरस्कार सन् 1995 में जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग करने जैन विद्वान को प्रदान किया जाता था। यह पुरस्कार पाँच वर्ष में एक बार प्रदान किये जाने वाला पुरस्कार था जिसमें पुरस्कृत किये जाने वाले विद्वान या कार्यकर्ता को एक लाख रूपये की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल 2006 में 'गणिनी श्री ज्ञानमती जी की आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी विशिष्ठ विद्वान अथवा समाजसेवी को प्रदान किया जाता हैं।

जम्बूद्वीप पुरस्कार

सन् 2000 में स्थापित इस पुरस्कार में 25000 रूपये की नकद राशि प्रदान की जाती हैं। यह पुरस्कार प्रतिवर्ष प्रदान किये जाने वाला पुरस्कार हैं।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार

सन् 1999 में स्थापित यह पुरस्कार प्रतिवर्ष प्रदान किया जाता हैं। इस पुरस्कार में प्राप्तकर्ता को 11000 रूपये की नकद राशि प्रदान की जाती हैं।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार

सन् 2003 में स्थापित इस पुरस्कार के अंतर्गत प्रतिवर्ष एक प्रतिभागी को 11000 रूपये की नकद राशि प्रदान की जाती हैं।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार

सन् 2004 में प्रारंभ यह पुरस्कार प्रतिवर्ष प्रदान किये जानेवाले पुरस्कार हैं। इसके अंतर्गत 25000 रूपये की नकद राशि प्रदान की जाती हैं।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार

सन् 2010से प्रारंभ इस पुरस्कार के अंतर्गत प्रतिवर्ष एक प्रतिभागी को 11000 रूपये की नकद राशि प्रदान की जाती हैं।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव के अवसर पर घोषित 'भगवान ऋषभदेवनेशनल अवार्ड', ब्रह्मी पुरस्कार', 'भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर अवार्ड', 'गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार' एवं 'हीरक जयंती पुरस्कार' भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

इस प्रकार दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के माध्यम से समय—समय पर विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों को क्रियांवित किया जाता रहा हैं।

मांगीतुगी सिद्धक्षेत्र : 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण स्थली

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र जहाँ से 99 करोड़ मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया। यह तीर्थ 9 लाख वर्ष पूर्व तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ जी के तीर्थकाल से पूज्यता को प्राप्त हैं, यहाँसे भगवान राम, हनुमान, सुग्रीव, सुडील, गव, गवाक्ष नील, महानील आदि 99 करोड़ महामुनियों ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण

करके इस पर्वत से कठोर तपश्चरण के साथ मोक्षधाम को प्राप्त किया था। निर्वाण काण्ड़ में कवि भगवतीदास जी लिखते हैं–

''राम हनू सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील।

कोड़ि निन्याणवे मुक्ति पयान, 'तुंगीगिरी' वंदौं धरि ध्यान''[130]।। (कवि भगवतीदास जी, 2007)

इस पर्वतराज पर 2 चूलिकायें हैं, जिनमें एक मांगीगिरि और दूसरी तुंगीगिरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। आर्यिका श्रेयांसमती जी अपनी पुस्तक 'मांगीतुंगी का इतिहास' में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र के विषय में वर्णन करते हुये लिखती हैं– '' शुद्ध–बुद्ध मुनिराज के नाम से दो गुफाओं में भगवान मुनिसुव्रतनाथ एवं भगवान नेमिनाथ की प्रतिमाएँ आदि विराजमान हैं। साथ ही तलहटी में भी भगवान पार्श्वनाथ जिनमंदिर, मूलनायक भगवान आदिनाथ जिनमंदिर, मानस्तंभ आदि निर्मित है''। (आर्यिका श्रेयांसमती, 2006)

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र के साथ आर्यिका ज्ञानमती जी एवं आर्यिका चंदनामती जी का अभिन्न नाता जुड़ा हैं। सन् 1996 में 19 मई से 23 मई तक इस तीर्थ पर आर्यिका ज्ञानमती जी ससंघ के सानिध्य में भगवान मुनिसुव्रतनाथ जी की 21 फुट काले पाषाण से निर्मित खड्गासन प्रतिमा का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ था। इसी के साथ सन् 1996 में आर्यिका ज्ञानमती जी ससंघ का चातुर्मास मांगीतुंगी जी में हुआ था तब उन्होंने मांगीतुंगी पर्वत पर अखण्ड पाषाण में भगवान ऋषभदेव की 108 फुट उत्तुंग विशालकाय जिनप्रतिमा की प्रेरणा प्रदान की। सन् 2016 में भगवान ऋषभ देव की भव्य प्रतिमा के निर्माण का कार्य पूर्ण हुआ व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भव्य पंचकल्याणक महोत्सव मनाया गया। जिसका सीधा प्रसारण पारस चैनल के माध्यम से देश–भर में दिखाया गया। आर्यिका ज्ञानमती जी एवं आर्यिका चंदनामती जी का सन् 2016 का चातुर्मास मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर सम्पन्न हुआ व जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की हुई। सन् 2018 का चातुर्मास भी मांगीतुंगी जी में हो रहा हैं। 108 फुट उत्तुंग ऋषभ देव की प्रतिमा को गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स में स्थान दिया गया।

---

[130] निर्वाण काण्ड़

अध्याय – 8

आर्यिका श्री द्वारा आर्यिका पद के कठोर नियमों का पालन के माध्यम से जैन धर्म के विकास में योगदान

जैन धर्म में जैन साधकों के लिये विशेष नियम एवं सिद्धांत हैं। जिनका पूर्ण निष्ठा से पालन करके ही साधना पथ पर आगे बढ़ा जा सकता हैं। जिनमें सर्वप्रथम आहार शुद्धि अनिवार्य हैं क्योंकि मनुष्य के आचार–विचार पर आहार का विशेष प्रभाव पड़ता हैं। जैन साधक सदैव मर्यादित एवं सादा भोजन ही ग्रहण करते हैं। तामसिक भोजन निद्रा एवं प्रमाद उत्पन्न करता हैं एवं विचारों को भी भ्रष्ट करता हैं इसलिये तामसिक भोजन से जैन साधक दूर ही रहते हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार जैन साधक भोजन के लिये नहीं जीते, अपितु जीने के लिये भोजन करते हैं। मन में अटपटी विधि लेकर आहार के लिये श्रावकों के घर जाते हैं। विधि मिलने पर आहार ग्रहण करते, करपात्र में श्रावकों द्वारा भाव–पूर्वक दिये जाने वाला आहार ग्रहण कर लौट जाते हैं। जैन साधकों के आहार में दस प्रकार की शुद्धि परमावश्यक हैं। जैन साधकों के लिये जैन आगम स्वाध्याय, संयम पालन, तप, त्याग, सामायिक, प्रायश्चित एवं पंच महाव्रत पालन का विशेष महत्व हैं।

आहार शुद्धि

जैन धर्म विश्व में एकमात्र ऐसा धर्म हैं जिसके अंतर्गत जीवन में मन वचन एवं काय की शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता हैं। एक पुरातन उक्ति के अनुसार ''जैसा खावै अन्न वैसा होवे मन'' ''जैसा पीवै पानी वैसी हौवे वानी''। इसी प्रकार जैनागम में जैन मुनियों, आर्यिकाओं एवं उत्कृष्ट श्रावकों के लिये शुद्ध एवं प्रासुक आहार ही लेने का विधान हैं। जैन मुनियों व आर्यिकाओं के लिये दस प्रकार की शुद्धि ये युक्त आहार लेने का ही विधान हैं ये शुद्धियाँ इस प्रकार हैं–

1. **कुल शुद्धि**

आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार जैन मुनियों एवं आर्यिकाओं को आहार देने वाले दाता के कुल की शुद्धि अनिवार्य हैं। कुल शुद्धि के अंतर्गत सामाजिक नियमों का पालन करने वाला व कुल को किसी भी प्रकार से कंलकित नही करने वाला दाता ही उत्तम दाता कहलाने के योग्य है।

2. काय शुद्धि

दाता का हीनाधिक आंगोपांग रहित होना अनिवार्य हैं। असाध्य रोगों से रहित व मांस, चर्बी युक्त सौंदर्य प्रसाधन का प्रयोग न करने वाला श्रावक मुनिराज एवं आर्यिका जी को आहार देने योग्य होता हैं। नाखून आदि समय–समय पर काटकर, साफ रखना एवं नहाकर स्वच्छ वस्त्र धारण करना काय शुद्धि हैं।

3. वस्त्र शुद्धि

मुनिराज एवं आर्यिका जी को आहार देने वाले दातार के वस्त्रों की शुद्धि अति आवश्यक हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार जैन साधक अर्थात् जैन मुनियों एवं आर्यिकाओं को आहार देने वाले श्रावक के वस्त्र हिंसा जन्य रेशम आदि के वस्त्र एवं टेरीकॉट, सिल्क, मखमल, ऊन, चर्म युक्त या पत्तों से युक्त वस्त्र नहीं पहनने चाहिये। दातार के वस्त्र प्रासुक जल से धुले हुये साफ होने चाहिये। पुरूषों के लिये धोती–दुपट्‌टा तथा स्त्रियों के लिये भारतीय संस्कृति के अनुसार साड़ी पहनना अनिवार्य हैं। सभी वस्त्रों का शुद्ध होना परमावश्यक हैं।

4. आहार शुद्धि

जैन साधकों को शुद्ध, मर्यादित, प्रासुक, साधना में वृद्धि करने वाला आहार देना चाहिये। तामसिक या राजसिक आहार जैन साधकों के लिये सर्वथा अयोग्य हैं। जो आहार प्रमाद उत्पन्न करने वाला हो, गरिष्ठ हो, वासना जाग्रत करने वाला हो, इन्द्रियों को उद्‌दीप्त करने वाला, लोक मर्यादा के विरूद्ध आहार भी साधुओं को नहीं देना चाहिये।

5. वचन शुद्धि

दाता को आहारादि दान देते समय हितकर, सीमित, मिष्ट एवं आगमानुसार ही वचन बोलने चाहिये। लोक व्यवहार के विरूद्ध वचन नहीं बोलने चाहिये। कर्कश भाषा, कटुक भाषा, कठोर भाषा , निष्ठुर भाषा आदि का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये। इस प्रकार की भाषाओं के प्रयोग से आपसी विद्वेष उत्पन्न होता हैं इसलिये सदैव प्रेमपूर्ण, वात्सल्यपूर्ण, भाषा का ही प्रयोग करना चाहिये।

6. मन शुद्धि

दाता को आहार देते समय मन में विशुद्ध परिणाम रखने चाहिये। धर्म ध्यान से संयुक्त, श्रद्धा, समर्पण, भक्ति से पूर्ण भावों के साथ ही जैन मुनिराज को आहार देना चाहिये। आर्तध्यान एवं रौद्र ध्यान व कषाययुक्त भावों से मन की अशुद्धि होती हैं।

7. द्रव्य शुद्धि

आहार के लिये प्रयुक्त किये जाने वाला द्रव्य भी शुद्ध होना चाहिये। अन्याय, अनीति, अत्याचार द्वारा कमाकर एकत्रित किया गया धन मुनिराज के आहार में प्रयुक्त करने से आहार की विशुद्धि नहीं रहती हैं तथा वह आहार उनकी साधना में बाधा उत्पन्न करता हैं। जो धन बहु हिंसा के व्यापार से अर्जित किया हो वह धन दान योग्य नहीं होता।

8. सूतक–पातक सम्बंधी शुद्धि

यदि किसी के परिवार में, कुटुम्ब में या घर आदि में सूतक–पातक लग जाए तो वह परिवार दिगम्बर साधकों को आहार देने योग्य नहीं रहता हैं।

9. क्षेत्र शुद्धि

जैन साधकों का जिस स्थान पर चौका लगाया गया हो, वह स्थान शुद्ध होना चाहिये। वहाँ आस–पास शौचालय, पेशाबघर, चप्पल–जूते, चमड़े की वस्तुयें आदि न हो, ऐसे स्थान पर जैन

साधकों का आहार नही लगाना चाहिये। स्वच्छ स्थान पर जैन साधकों का आहार कराना क्षेत्र शुद्धि हैं।

10. काल शुद्धि

दिगम्बर जैन श्रमणों की आहार–चर्या का काल सूर्योदय के तीन घड़ी बाद से, मध्यान्ह के सामायिक व स्वाध्याय काल के पूर्व तक, यदि प्रातः काल चर्या के लिये नहीं जाते तो मध्यान्ह की देव वंदना के बाद से सूर्यास्त के तीन घड़ी पूर्व तक ही आहार चर्या का काल हैं, इसक पूर्व व बाद का काल शुद्ध नहीं हैं, सूर्योदय की 3 घड़ी के बाद में ही चौके का कार्य प्रारम्भ करना चाहिये।

इन दस प्रार की शुद्धि के साथ जैन साधकों की दातार द्वारा नवधा भक्ति की जाती हैं–

1. **पडगाहन–** आहार चर्या के लिये आये जैन साधक को दातार द्वारा उनके मन में सोची गयी विधि को पूर्ण कराकर आहार के लिये अपने चौके में ले जाना पडगाहन कहलाता है।
2. **उच्चासन–** श्रावक द्वारा साधक के पडगाहन कर चौके में ले जाकर उच्चासन पर विराजित किया जाता हैं।
3. **पाद–प्रक्षालन–** उच्चासन पर विराजित करके जैन साधक के पैर धुलवाये जाते हैं
4. **पूजा–** तत्पश्चात् जैन साधकों की उनके पद के अनुरूप भक्ति–भाव से पूजा की जाती हैं।
5. **प्रणाम**– इसके पश्चात् श्रावक साधक को प्रणाम करते हैं।

   तत्पश्चात् श्रावक चार प्रकार की शुद्धि बोलकर शुद्ध आहार जैन साधक को कर पात्र में आहार प्रदान करती हैं
6. **मन शुद्धि–** दातार स्वीकार करते हैं आहार के समय उनका मन शुद्ध हैं।
7. **वचन शुद्धि–** दातार स्वीकार करते हैं आहार के समय उनके वचन शुद्ध हैं।
8. **काय शुद्धि–** दातार स्वीकार करते हैं आहार के समय उनके वस्त्र एवं काया शुद्ध हैं।

9. **आहार–जल शुद्धि–** दातार स्वीकार करते हैं उनके द्वारा साधक को दिये जाने वाले आहार जल शुद्ध हैं।

इस प्रकार नवधा भक्ति पूर्वक , जैन साधक मौन पूर्वक आहार ग्रहण करते हैं। आर्यिका चंदनामती जी एक जैन साधिका हैं वे भी दिन में एक बार कर–पात्र में विधि पूर्वक आहार–जल ग्रहण करती हैं।

स्वाध्याय

स्वाध्याय शब्द का शाब्दिक अर्थ हैं ''स्व अर्थात् स्वयं, अध्याय अर्थात् अध्ययन करना। इस प्रकार स्वाध्याय से तात्पर्य स्वयं अध्ययन करना हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार स्वाध्याय मानव को उचित व अनुचित के बीच भेद कराता हैं। सही, गलत की पहचान करके मानव करने योग्य कार्यों को ही सम्पादित करने का विवके स्वाध्यायके माध्यम से कर पाता हैं। मनुस्मृति (3/75) में उल्लेख हैं– ''स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्''[131]। अर्थात् स्वाध्याय के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये , क्योंकि इससे सद्बुद्धि, विवेक का विकास होता हैं और समस्त समस्याओं का हल मिलता हैं। स्वाध्याय करते रहने से मनुष्य मेधावी होता है। ज्ञान की उपासना का माध्यम स्वाध्याय ही हैं। स्वाध्यायशील व्यक्ति का विचार शक्ति और चिन्तनधारा केन्द्रित रहती हैं। मन स्वाध्याय में लगाने से स्थिर होने लगता हैं और मन की स्थिरता आत्मोपलब्धि में परम सहायक होती हैं।

आर्यिका चंदनामती जी का स्वाध्यायमयी जीवन

आर्यिका चंदनामती के जीवन में सदा ही स्वाध्याय का विशेष महत्व रहा हैं। उनके परिवार, माता एवं परिवेश ने उन्हें सदैव स्वाध्याय की प्रेरणा प्रदान की। ज्येष्ठ भगिनी मैना ने पद्मनन्दिपंचविंशतिका का स्वाध्याय करके ही मात्र 18 वर्ष आयु में गृहत्याग कर आर्यिका पद प्राप्त किया। ज्येष्ठ भगिनी सदैव ही उनके जीवन का आदर्श थी। उनके द्वारा सदैव सम्बोधित किये जाने पर बाल माधुरी ने स्वाध्याय को जीवन में विशेष महत्व प्रदान किया। बाल्यावस्था से

---

[131] मनुस्मृति (3/75)

ही स्वाध्याय के प्रति प्रेम ने उन्हें अल्पवय में सांसारिक जीवन से विरक्त कर दिया। मात्र तेरह वर्ष की आयु में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत उनके गहन स्वाध्याय का ही प्रतिफल हैं। लौकिक शिक्षा कम होने पर भी जैन ग्रंथों के निरन्तर स्वाध्याय के कारण ही शास्त्री की उपाधि से अलंकृत किया गया। आर्यिका दीक्षा के 28 वर्षों में लगभम 200 ग्रंथों की रचना करना गहन स्वाध्याय द्वारा ही सम्भव हो सका। जैन सिद्धांत ग्रंथ षट्खण्डागम की सिद्धांत चिंतामणि टीका की हिन्दी टीका कर पी0एच0 डी0 की मानद् उपाधि से अलंकरण भी उनके विशेष स्वाध्याय से सम्भव हो सका।

आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा समय–समय पर कराये जाने शास्त्र स्वाध्याय ने आर्यिका चंदनामती जी को विशेष विद्वता प्रदान की। वर्तमान में वे संघस्थ आर्यिकाओं को अपनी गुरू माता से प्राप्त ज्ञान रूपी मोती प्रदान कर उनके वैराग्य को और अधिक दृढ़ करने का कार्य करती हैं। वे सदैव अपने भक्तों को स्वाध्याय की प्रेरणा देते हुये समझाती हैं कि आत्मोत्थान एवं सत्य की प्राप्ति का एकमात्र स्त्रोत स्वाध्याय ही हैं।

आचार्य विद्यानन्द जैनाचार्य जी कहते है –'श्रुत स्कन्धे धीमान रमयतु मलोमर्कटममुम्' यह मन वानर के समान चंचल है, इसे जो स्वाध्याय में एक तान कर देता है वही धन्य है। स्वाध्याय से हेय और उपादेय का ज्ञान होता है। स्वाध्याय की उपासना निरन्तर करते रहना जीवन को नियमित रूप से मॉजने के समान है। इस प्रकार कहना उचित होगा कि जिस प्रकार उदर को अन्न देना दैनिक आवश्यकता है उसी प्रकार मस्तिष्क को उसका भोजन अनिवार्य हैं। इसके लिये बड़े–बड़े अन्वेषक और दार्शनिक रात–दिन सब कुछ भूलकर स्वाध्याय में संलग्न रहते हैं। स्वामी रामतीर्थ जब जापान गये तो व्याख्यान सभा में उपस्थित होने पर संयोजक द्वारा उन्हें शून्य शब्द भाषण के लिये दिया गया। उन्होंने जापानियों की दृष्टि में शून्य प्रतीत होने वाले उस अकिंचन विषय पर इतना विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया कि श्रोता उनकी विद्वत्ता से आश्चर्यचकित हो गये। यह उनके स्वाध्याय का फल था।

स्वाध्याय प्रेमी प्रसिद्ध विद्वान पं0 हरिनारायण जी पुरोहित ने बाजार में किसी पठनीय पुस्तक को बिकते हुये देखा। उस समय उनके पास पर्याप्त धन उपलब्ध नहीं था अतः उन्होंने अपना कुर्ता खोलकर उस विक्रेता के पास गिरवी रख दिया और स्वाध्याय हेतु पुस्तक प्राप्त की। इसलिये उनका 'विद्याभूषण' सार्थक हुआ। संसार में जितने उच्च कोटि के लेखक, वक्ता और विचारक हुए हैं उनके सिरहाने पुस्तकों के बने रहते हैं। बड़े–बड़ें अन्वेषक , दार्शनिक तथा साहित्यकार रात–दिन, भूख–प्यास भूलकर स्वाध्याय में रत् रहते हैं।

परन्तु वर्तमान परिवेश में पुस्तकालयों, व्यक्तिगत संग्रहालयों, ग्रंथ भण्डारों को दीमक लग रही है। नवीन पीढ़ी का जीवन स्वाध्याय से दूर हो रहा हैं। वर्तमान जन–जीवन रात–दिन धनोपार्जन की चक्की पिस रहा है। युवा वर्ग सिनेमा, टेलीविजन एवं अन्य मनोरंजन के साधनों को जीवन का चरमोत्कर्ष मानने लगा हैं। स्वाध्याय से अनभिज्ञ लोग विचारकों की रचनाओं से लाभ प्राप्त नहीं कर पाते। अतः आवश्यकता है उन्हें यह समझाने की कि स्वाध्याय समस्त स्थानों और समस्त परिस्थितियों में सहायक हैं क्योंकि स्वाध्याय जीवन को आलोकित करने के लिये ज्योति के समान हैं।

संयम पालन

पंचेन्द्रिय के विषयों को तथा मन के विषय को रोकना और छह काय के जीवों की हिंसा न करना संयम कहलाता हैं। व्रतों को धारण करने से, समितियों का पालन करने से, कषायों का नष्ट करने से और मन वचन काय को वश में रखने से संयम का पालन होता हैं। पुरूषार्थसिद्ध्युपाय में श्लोक संख्या 204 में आचार्य लिखते हैं–

''धर्मः सेव्यः क्षान्तिर्मृदुत्वमृजुताच शौचमथ सत्यम्।

आकिञचन्यं ब्रह्म त्यागश्च तपश्च संयमश्चेति''[132] ।।(आचार्य अमृतचंद्र, 1997)

[132] आचार्य अमृतचंद्र, पुरूषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक संख्या 204

इस श्लोक में दस धर्मों के विषय में वर्णन करते हुये लिखा गया हैं कि संयम धर्म दस धर्मों में से एक धर्म हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसारपाँच व्रत,पाँच समिति का पालन , चार कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) का त्याग तथा मन, वचन, काय का निग्रह ही संयम हैं। इसके साथ –साथ शास्त्रों में इन्द्रिय निरोध को भी संयम कहा गया हैं। आचार्य गुणभद्र स्वामी आत्मानुशासन ग्रंथ श्लोक संख्या 120 पर संयम के विषय में लिखते हैं–

''प्राक् प्रकाशप्रधानः स्यात् प्रदीप इव संयमी।

पश्चात्तापप्रकाशाभ्यां भास्वानिव हि भासताम्''[133]। (आचार्य गुणभद्र, 2018)

अर्थात् संयमी पुरूष पहले तो प्रकाश की प्रधानता वाले दीपक के समान रहता है फिर प्रकाश और प्रताप दोनों से सहित हो सूर्य के समान दीप्त–प्रकाशित होता हैं।

आर्यिका चंदनामती जी ने जैन साधिका के व्रत ग्रहण करते संयम पालन की प्रतिज्ञा भी ग्रहण की। दीक्षित जीवन के तीस वर्षों में इन्द्रिय का निरोध करके श्रृंगार, तेल, इत्र, सिनेमा, लौकिक संगीत, स्वादिष्ट एवं स्वेच्छा पूर्ण आहार का त्याग कर श्वेत वस्त्र धारण कर आर्यिका पद को गौरवांवित किया।

तप

इन्द्रियों का दमन करना तथा इच्छाओं का निरोध करना तप हैं। संसार में इच्छाओं का कोई अंत नहीं हैं। तप इन इच्छाओं पर नियन्त्रण करने में सहायक हैं। बिना किसी नियन्त्रण के मानव जीवन बिना ब्रेक की गाड़ी के समान हो जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी के अनुसार जिस प्रकार स्वर्ण को तपाने से उसका शुद्ध रूप निकल जाता हैं उसी प्रकार आत्मा बारह प्रकार के तप द्वारा कर्म रूपी मैल का क्षय करके शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता हैं। जैन साधकों के लिये तप समितियों का पालन है। तप गुप्तित्रय का दृष्टा हैं। जहाँ आत्मा तथा परद्रव्यों का

---

[133]आचार्य गुणभद्र, आत्मानुशासन ग्रंथ श्लोक संख्या 120

भिन्न–भिन्न बोध हैं, वह तप हैं। जैन साधकों द्वारा किये जाने वाला तप जन्म–मरण से मुक्ति प्रदान करने वाला हैं।

आर्यिका चंदनामती जी इन्द्रियों के दमन एवं इच्छाओं के निरोध करते हुये तप की अग्नि से अपनी आत्मा को कुंदन बना रही हैं।

त्याग

भारतीय संस्कृति में दान एवं त्याग को बहुत श्रेष्ठ कहा गया हैं। जैनागम के अनुसार जो मानव यथा शक्ति दान, त्याग करता है उसी का जीवन सफल होता है। जैन परम्परा का इतिहास त्याग से भरा हैं। जैन साधक (पुरूष) साधना हेतू वस्त्र का त्याग कर देते हैं। सर्दी, गर्मी सहन करते हैं। वही साधिकायें मात्र श्वेत साड़ी धारण कर गहन त्याग का परिचय देती हैं।

आर्यिका चंदनामती जी ने आर्यिका दीक्षा के समय विभिन्न त्याग किये–

1. गृह त्याग
2. परिवार का त्याग
3. रंगीन वस्त्र त्याग
4. श्रृंगाार का त्याग
5. संसारिक विषयों का त्याग
6. गृहस्थ जीवन का त्याग
7. वाहन का त्याग
8. जूते–चप्पल का त्याग
9. आरंभ–परिग्रह का त्याग
10. राग–द्वेष का त्याग

इनके अतिरिक्त इन्द्रियों के विषयों का त्याग कर भोजन में विभिन्न वस्तुओं का त्याग कर अपने जीवन को सीमित एवं मर्यादित बनाया।

सामायिक

द्रव्य, श्रेत्र, काल, भाव की मर्यादा पूर्वक साम्य परणति में अवस्थित होने को सामायिक कहते हैं। जैनागम के अनुसार अपनी क्षेत्र मर्यादा के अन्तर्गत भी आरम्भ– परिग्रह तथापाँच पापों से मुक्त होकर आधि–व्याधि–उपाधि से रक्षा करने के लिये अकर्त्ता–अभोक्ता, ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव की प्राप्ति के लिये, स्वसंवेदन–आत्मानुभूति करने के लिये ज्ञान–ध्यान–तपस्या में लीन रहने के लिये दो–तीन घड़ी आदि सीमित समय के लिये समता स्वभाव में अवस्थित रहना सामायिक हैं। सामायिक व्रत समस्त व्रतों का शिरोमणि हैं। संसार–सागर से तिराने के लिये अनुपम यान हैं तथा मुक्ति महल में प्रवेश कराने के लिये सजग हेतु हैं

आर्यिका चंदनामती जी की दिनचर्या में सामायिक का विशेष स्थान हैं। वे दिन में तीन बार सामायिक करके जीवन को सफल बना रही हैं।

प्रायश्चित

जैन परम्परा में जैन साधकों एवं जैन श्रावकों के पाप से निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त व्रत का विशेष महत्व हैं। जिसमें श्रावक अपने गुरू (मुनि या आर्यिका) के समक्ष अपने किये गये अथवा विचार में उत्पन्न हुये दोषों को रखते हैं वही जैन साधक संघ के नायक आचार्य जी या गणिनी जी के समक्ष अपने दोषों को रखकर प्रायश्चित लेते हैं। गुरू शिष्यों के दोषों को गुप्त रखकर पाप कर्म की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित प्रदान करते हैं। जैन साधक गुरू से चलने–उठने–बैठने में होने वाली जीव हिंसा, प्रमाद आहार चर्या में लगे दोष आदि के लिये भी प्रायश्चित लेते हैं। गुरू आहार के पश्चात् एवे संध्याकाल में दिन में दो बार प्रायश्चित प्रदान करते हैं।

आर्यिका चंदनामती जी अपने नित्य कर्म में लगने वाले दोषों के लिये गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी जी से प्रायश्चित लेती हैं एवं अपने शिष्यों के दोषों को दूर करने के लिये उन्हें प्रायश्चित प्रदान करती हैं।

पंच महाव्रत पालन

जैन साधकों के 28 मूलगुणों में पंच महाव्रत का विशेष महत्व हैं

अहिंसा महाव्रत

अहिंसा महाव्रत के अंतर्गत चारों प्रकार की हिंसा का त्याग होताहैं।

1. उद्योगी हिंसा
2. आरंभी हिंसा
3. विरोधी हिंसा
4. संकल्पी हिंसा

सत्य महाव्रत

सत्य महाव्रत में जैन साधक सदैव हित–मित–प्रिय वचन ही बोलते हैं। झूठ के पूर्ण त्यागी होने के कारण अप्रिय सत्य बोलने की अपेक्षा मौन ग्रहण करके चर्या पालते हैं। ''सर्वोदय तीर्थग्रंथ'' में आचार्य अभिनन्दन सागर जी लिखते हैं–

''शुभं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयाभ्द्द्रमित्येव वा वदेत्।

शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह''।। (आचार्य अभिनन्दन सागर, 2005)

अर्थात् अच्छा ही बोलना चाहिये अथवा प्रिय वचन बोलना या भद्र वचन बोलना न्याय संगत होता हैं। किसी भी प्राणी के साथ व्यर्थ वाद–विवाद नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे कोई लाभ नहीं होगा। जैन साधक इसी के अनुरूप सदैव न्याय संगत वचन बोलते है।

अचौर्य महाव्रत

अचौर्य महाव्रत के अंतर्गत जैन साधक बिना पूछे या बिन दिये मिट्‌टी व जल भी प्रयोग नहीं करते।

ब्रह्मचर्य महाव्रत

ब्रह्मचर्य महाव्रत के अंतर्गत जैन मुनि समस्त स्त्रियों को माता, भगिनी की दृष्टि से देखते हैं व आर्यिकाओं के लिये समस्त पुरूष वर्ग पिता, भाई के समान हैं। पूर्ण रूप से जैन साधकों के समस्त सांसारिक भोगों का त्याग होता हैं।

अपरिग्रह महाव्रत

अपरिग्रह महाव्रत के अर्न्तगत जैन मुनियो के पास पिच्छी संयम का उपकरण, कमण्डल शौच का उपकरण एवं शास्त्र ज्ञान के उपकरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का परिग्रह नहीं हेता हैं। जैन आर्यिकायें पिच्छी, कमण्डल व शस्त्र के साथ मात्र दो श्वेत साड़ी का परिग्रह रखती है। अन्य समस्त सांसारिक परिग्रह का त्याग कर नंगे पॉव पद विहार करते हैं। गृह त्याग करके जैन साधक चातुर्मास के काल को छोड़कर बाकी समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर पदविहार करते हुये धर्म का प्रसार करते हैं। जैन साधक बहते जल के समान निर्मल रहते हैं।

आर्यिका चंदनामती जी दीक्षा के तीस वर्षों से इन पंच महाव्रतों का निष्ठा से पालन कर रही हैं।

जैन साधना में अत्याधिक महत्वपूर्ण चातुर्मास

जैन परम्परा में चातुर्मास अर्थात् वर्षाकाल का विशेष महत्व हैं। वर्षा ऋतु में वर्षा के समय होने वाली जल वृष्टि से अनंत जीवों की उत्पत्ति होने लगती हैं। ऐसे में जीवों की रक्षार्थ जैन साधक विहार बंद करके एक स्थान पर चार माह के लिये चातुर्मास स्थापित कर लेते हैं। निश्चित क्षेत्र की मर्यादा में रहकर उत्कृष्ट संयम पालते हैं। जैनागम के अनुसार आषढ़ सुदी चर्तुदशी से कार्तिक कृष्ण अमावस्या तक का काल चातुर्मास कहलाता हैं।

1989 से लेकर 2018 तक आर्यिका चंदनामती जी 30 चातुर्मास गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी के साथ सम्पन्न कर चुकी हैं। सम्पूर्ण भारत के विभिन्न राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, दिल्ली आदि प्रान्तों चातुर्मास कर जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का कार्य किया। साथ ही जैन संस्कृति से जन साधारण को परिचित कराने का भी कार्य किया हैं।

चातुर्मास सूची–

1. पहला चातुर्मास, 1989– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
2. दूसरा चातुर्मास, 1990– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
3. तीसरा चातुर्मास, 1991– सरधना , मेरठ
4. चौथा चातुर्मास, 1992– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
5. पाँचवाँ चातुर्मास, 1993– अयोध्या तीर्थ
6. छठा चातुर्मास, 1994– टिकैतनगर, बाराबंकी
7. सातवाँ चातुर्मास, 1995– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
8. आठवाँ चातुर्मास, 1996– मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र
9. नवमा चातुर्मास, 2008– लाल मंदिर, चांदनी चौक–दिल्ली
10. दसवाँ चातुर्मास, 2014– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
11. ग्यारहवाँ चातुर्मास, 1999– राजा बाजार, कनाट प्लेस– नई दिल्ली
12. बारहवाँ चातुर्मास, 2000– कमल मंदिर, प्रीत विहार, दिल्ली
13. तेरहवाँ चातुर्मास, 2001– अशोक विहार, फेस–1–दिल्ली
14. चौदहवाँ चातुर्मास, 2002– प्रयाग–इलाहाबाद
15. पन्द्रहवाँ चातुर्मास, 2003– कुण्डलपुर, नालंदा
16. सोलहवाँ चातुर्मास, 2004– कुण्डलपुर, नालंदा
17. सत्रहवाँ चातुर्मास, 2005– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
18. अठारहवाँ चातुर्मास, 2006– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
19. उन्नीसवाँ चातुर्मास, 2007– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
20. बीसवाँ चातुर्मास, 2008– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
21. इक्कीसवाँ चातुर्मास, 2009– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
22. बाइसवाँ चातुर्मास, 2010– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
23. तेइसवाँ चातुर्मास, 2011– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर
24. चौबीसवाँ चातुर्मास, 2012– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर

25. पच्चीसवाँ चातुर्मास, 2013– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर

26. छब्बीसवाँ चातुर्मास, 2014– जम्बूद्वीप , हस्तिनापुर

27. सत्ताइसवाँ चातुर्मास, 2015– मांगीतुंगी सिद्ध

28. अट्ठाइसवाँ चातुर्मास, 2016– मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र

29. उन्तीसवाँ चातुर्मास, 2017– मुम्बई, महाराष्ट्र

30. तीसवाँ चातुर्मास, 2018– मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र

गुरू माता आर्यिका ज्ञानमती जी से प्राप्त ज्ञान के मोती

1. शुभस्य शीघ्रं अर्थात् शुभ कार्य को करने में देर नहीं करनी चाहिये।
2. मनोऽनुकूलं श्रेष्ठं मूहूर्तं अर्थात् किसी भी कार्य को करने में मन की अनुकूलता सबसे श्रेष्ठ मूहूर्त जानना चाहिये।
3. मध्यम प्रवृत्ति अपनाओ।
4. सीमा से अधिक किया गया उपगूहन एवं स्थितिकरण आर्ष परम्परा को विकृत कर सकता हैं।
5. विषम परिसिथिति में भी धर्म–धैर्य और गुरू को कभी मत छोड़ो।
6. गरम–गरम मत खाओ, ठण्डा करके खाओ।
7. विद्वानों को गुरूओं का समीप्य अवश्य प्राप्त करना चाहिये।
8. भगवान बाहुबली के शल्य नहीं थी , विकल्प था।
9. आत्महित करते हुये ही परहित करना चाहिये।
10. समयसार से पूर्व श्रावकाचार एवं मूलाचार का स्वसध्याय अवश्य करें।

आर्यिका चंदनामती जी के विषय में अन्य जैन साधकों एवं विचारकों के विचार

आर्यिका चंदनामती जी 'यथा नाम तथा गुण को सार्थक करने वाली' हैं।

–जैन साधिका गम्भीरमती जी (शिष्या –गणिनी आर्यिका सुपाश्र्वमती माता जी)

आर्यिका चंदनामती जी 'वाणी की जादूगर हैं।

–आर्यिका सुदृढ़मती जी(संघस्थ)

धर्मप्रेरिका हैं आर्यिका चंदनामती जी

–क्षुल्लिका चंद्रमती जी(शिष्या–गुजरात संत केसरी आचार्य भरतसागर जी महाराज)

संस्कार शिल्पी हैं आर्यिका चंदनामती जी।

– आर्यिका स्वर्णमती जी(संघस्थ)

मातृत्व प्रतिभा से परिपूर्ण हैं–आर्यिका चंदनामती जी।

–ब्रह्मचारिणी सारिका जैन (संघस्थ)

उत्कृष्ट शिष्यता का आदर्श स्वरूप हैं –आर्यिका श्री चंदनामती माता जी।

–जे. के. जैन, पूर्व सांसद, दिल्ली

अमावस्या में प्रकाशपुंज हैं पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी।

–प्रो. डी. ए. पाटील, जयसिंहपुर (चेयरमैन–दक्षिण भारत जैन सभा)

तेजोमय व्यक्तित्व सम्पन्ना प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माता जी

–डॉ श्रेयांसकुमार जैन, बडौत(अध्यक्ष–अखिल भारतीय दि. जैन शास्त्री परिषद्)

आर्यिका चंदनामती एवं उनके साहित्य के माध्यम से जैन धर्म के विकास में योगदान

आर्यिका चंदनामती जी ने जैन धर्म के विकास में अभिन्न योगदान दिये। जैन धर्म भारत का एकमात्र ऐसा धर्म हैं, जिसमें मन, वचन, काय तीनों की शुद्धि पर बल दिया गया हैं। जैन धर्म में जैन साधक, साधिकाओं के लिये कठिन साधना का मार्ग व श्रावक, श्रााविकाओं के लिये अनेक नियम हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने 31 वर्ष की अवस्था में सांसारिक भोग विलासमय

जीवन का त्याग करके जैनेश्वरी दीक्षा लेकर जैन धर्म के उत्थान में कार्य करने प्रारम्भ किये और जैन धर्म के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

1. जैन संस्कृति अत्याधिक प्राचीन हैं, समय–समय पर विभिन्न मुनियों व आर्यिकाओं ने जैन धर्म की दीक्षा लेकर समस्त सांसारिक भोगों का त्याग कर जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का कार्य किया। भारत देश की भूमि जैन साधकों की साधना भूमि हैं। भगवान आदिनाथ के काल में 350000 आर्यिकायें व भगवन महावीर के काल में 36000 आर्यिकायें थी। परन्तु समय के साथ इस पावन धरा पर बहुत से आक्रमणकारियों ने आक्रमण करके देश को गुलाम बनाया जिसके कारण जैन श्रमण परम्परा लुप्त होने लगी। वर्तमान में भारत की जनसंख्या लगभग 133.92 करोड़ (2017) हैं। जिनमें से ''4,451,753 जैन हैं''[134]। (जैनिज्म इन इण्डिया, विकिपिडिया, 20,1,2018) जो भारतीय जनसंख्या का 0.36% हैं। जिनमें से दिगम्बर जैन आर्यिकाओं की संख्या लगभग 600 हैं। इस प्रकार 133.92 करोड़ की जनसंख्या में से लगभम 600 आर्यिकायें ही इस कठिन साधना के व्रतों का पालन कर रहे हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर लुप्त होती जैन श्रमण संस्कृति की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।
2. आर्यिका चंदनामती जी ने जैन साहित्य को नवीन आयाम प्रदान किये। लगभग 200 ग्रंथों के लेखन, सम्पादन, टीका आदि कार्य आर्यिका श्री के द्वारा पूर्ण किये गये। आर्यिका चंदनामती जी के विषय में आर्यिका आदिमती जी लिखती हैं: ''अनेक भजन, स्तुति की रचना करके एवं षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धांतचिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद करके समाज का उपकार किया हैं''। साधारण शब्दों में यह भी कहा जा सकता हैं कि षट्खण्डागम ग्रंथ जो मात्र प्राकृत और संस्कृत के विद्वानों का ही विषय था उसे हिन्दी में अनुवादित कर सामान्य जनों तक पहुॅचाने में आर्यिका चंदनामती जी का विशेष योगदान हैं। आर्यिका श्री द्वारा रचित पूजायें एवं भजन अत्याधिक सरल एवं रोचक है। हस्तिनापुर के प्रतिष्ठाचार्य श्री नरेश जैन शास्त्री के अनुसार ''आर्यिका चंदनामती जी कृत पूजन एवं

[134] जैनिज्म इन इण्डिया, विकिपिडिया, 20,1,2018

विधान हजारों भक्तों की आस्था का केन्द्र है। आस–पास के क्षेत्रों (खतौली, शामली, मवाना, सरधना, मेरठ आदि क्षेत्रों में) आर्यिका श्री के द्वारा रचित विधानों का विशेष महत्व है, प्रायः विधानों में उब जाने वाली युवा पीढ़ी आर्यिका श्री द्वारा विधानों के समय भक्ति से भाव –विभोर हो जाती है''[135]। (प्रतिष्ठाचार्य श्री नरेश जैन शास्त्री, 2017) इस प्रकार आर्यिका श्री सरल एवं रोचक साहित्य एवं विधान आदि के माध्यम से युवा पीढी को जोड़कर जैन धर्म का विकास कर रही हैं।

3. आर्यिका चंदनामती जी सदैव स्त्री शिक्षा पर बल देती हैं, उनकी प्रेरणा से समय–समय पर त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर के माध्यम से जैन धर्म से संबंधित डिप्लोमा कोर्स कराकर धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती हैं, जिसमें हजारों की संख्या में स्त्रियॉ भाग लेकर जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त करती है। इस कार्य को प्रोत्साहित करते हुये डॉ. श्रेयांस कुमार जैन बड़ौत लिखते हैं कि ''नारी समाज को आर्यिका चंदनामती माता जी ने बहुत कुछ दिया हैं। इनका अवदान नारी समाज कोटि–कोटि वर्षों तक स्मृत रखेगा। केवल दीक्षा लेना पर्याप्त नहीं हैं। दीक्षा लेकर शिक्षा लेना और शिक्षा देना तथा सद्गुणों से प्राणीमात्र का उपकार करना आवश्यक है। आपने दीक्षा के बाद शिक्षा, स्वाध्याय, ग्रन्थ लेखन, तीर्थ जीर्णोद्धार एवं नवीन तीर्थों के निर्माण कार्य में सहयोग कर श्रमण संस्कृति के उत्थान में अपूर्व योगदान किया हैं''[136]। (डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, 2013)
4. हिन्दी काव्य–धारा में भक्तिकाल में संत कबीर, सूरदास, मीराबाई आदि ने प्रभु भक्ति के गीत लिखकर व गाकर साहित्य जगत में क्रांति की लौ जलाई, उसी प्रकार आर्यिका चंदनामती जी के लिखे गीत जैन साहित्य जगत में उन्नति प्रदान करते हैं। सन् 2016 में सिद्ध क्षेत्र मांगीतुंगी में विश्व की सबसे ऊॅची भगवान ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा का पंचकल्याणक सम्पन्न हुआ। जिसमें लाखों की संख्या में जैन श्रावक–श्राविकाओं ने भाग लिया। जिससे जैन धर्म की अत्याधिक प्रभावना हुई। पंचकल्याणक से पूर्व आर्यिका चंदनामती जी ने इस विषय पर भजन लिखा था मांगीतुंगी तीर्थ से आमंत्रण आया हैं, हम

[135] प्रतिष्ठाचार्य श्री नरेश जैन शास्त्री से साक्षात्कार के आधार पर
[136] डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, प्रज्ञापुंज, पृष्ठ संख्या 114

सब मांगीतुंगी जायेगे। जो अत्याधिक प्रसारित हुआ। मांगीतुंगी पंचकल्याणक की भव्यता में आर्यिका श्री द्वारा रचित भजन का भी विशेष योगदान रहा। भगवान ऋषभदेव मूर्तिकमेटी मांगीतुंगी के अध्यक्ष डॉ. पन्नालाल पापड़ीवाल, पैठण जी आर्यिका चंदनामती जी के विषय में लिखते हैं ''माता जी ने जो भजन बनाये हैं उसमें पूरे भारत के घर–घर में –सबसे बड़ी मूर्ति का, मांगीतुंगी तीर्थ का, दुनिया में नाम हो रहा है, मूर्ति का निर्माण हो रहा है......। इस पद को सुनते ही हम सभी लोग झूमने लगते हैं''।

5. जैन धर्म में आर्यिका दीक्षा के पश्चात् दीक्षा गुरू के प्रति समर्पण ही नवदीक्षिता के लिये ज्ञान की प्रथम पाठशाला हैं। आर्यिका चंदनामती जी का गुरू माता ज्ञानमती जी के प्रति समर्पण जैन धर्म के श्रावकों के जीवन में अनुकरणीय हैं। आर्यिका चंदनामती गुरू भक्ति के विषय में क्षुल्लक मोती सागर जी लिखते हैं– ''चंदनामती माताजी दीक्षा से पूर्व 17 वर्ष तक ब्रह्मचारिणी अवस्था में तथा सन् 1989 से अब तक प्रातः ऑख खुलने से रात्रि में सोने तक तथा रात में सोते हुये भी उन्हीं के साथ बिताया है। उन्हीं के साथ जिया है''। गुरू भक्ति की अनन्य मूर्ति आर्यिका चंदनामती जी का व्यक्तित्व वर्तमान में जैन श्रावकों को आकर्षित करके धर्म के प्रति उनकी आस्था को नवीन आयाम प्रदान करता हैं।

6. आर्यिका चंदनामती जी त्रिलोक शोध संस्थान से तत्वाधान से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'सम्यग्ज्ञान पत्रिका' की विषय–वस्तु के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती हैं। साथ ही आपके सम्पर्क में आने वाले सभी मानव आपकी वाणी की मधुरता एवं वात्सल्य से अपनी पीड़ा भूलकर तनाव से मुक्त हो जाते हैं। आर्यिका चंदनामती जी के विषय में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन की महामंत्री मनोरमा जैन लिखती हैः ''सम्यग्ज्ञान पत्रिका' की कुशल मार्गदर्शिका एवं संघ का कुशल संचालन करना आपकी निपुणता है। आपके सम्पर्क में आने वाला हर मानव तनाव मुक्त हो जाता हैं''। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जैन धर्म की प्रभावना के कार्य कर रही हैं।

7. आर्यिका चंदनामती जी सदैव जैन धर्म के उत्थान के कार्य करती हैं। उनके कुशल मार्ग दर्शन में विभिन्न धार्मिक संगठनों द्वारा धर्म व नैतिकता के कार्य सम्पादित हो रहे। आर्यिका

चंदनामती जी के विषय में वीर सेवा दल मध्यवर्ती समिति के अध्यक्ष बाल बह्मचारी संजय गोपालकर, सांगली जी लिखते हैं–''चंदनामती माताजी का मार्गदर्शन हर धर्ममय कार्य को नया आयाम देता है। उनकी ज्ञान की प्रस्तुति लोगों की जीवन दृष्टि बदलती है। पूज्य आर्यिका चंदनामती माताजी सुयोग्य शिष्या तो बनी है उसके साथ वह अनोखी धर्मोपदेशिका भी हैं। अपने नाम जैसा व्यवहार करके वह धर्म की सुगंध बांटना चाहती हैं। माताजी के जीवन की सुगंध खूब सारे लोगों ने ली है और हर कोई लेना चाहता है''। इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी अपने ज्ञान के द्वारा लोगों को धर्म से जोड़ने का कार्य कर रही हैं[137]।

8. आर्यिका चंदनामती जी के सरल व्यक्तित्व एवं जैन धर्म के प्रति आस्था के कारण हजारों की संख्या में उनके शिष्य हैं, जिन्हें प्रवचनों के माध्यम से जैन धर्म एवं संस्कृति का ज्ञान प्रदान करती हैं। उनमें कुछ उत्कृष्ट कोटि के विद्वान हैं, कुछ उत्कृष्ट जैन श्रावक हैं। आर्यिका चंदनामती जी के वात्सल्य–पूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर कई कन्याओं ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर आर्यिका ज्ञानमती जी के संघ में रहकर आत्मकल्याण का मार्ग अपनाया।
9. आर्यिका चंदनामती जी दीक्षा लेने से पूर्व ब्रह्मचारिणी अवस्था में भी जैन धर्म एवं जैन संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण कार्य करती थी। इसका जीवन्त उदाहरण आर्यिका ज्ञानमती जी की संघस्थ आर्यिका स्वर्णमती जी हैं। माधुरी शास्त्री का संबोधन कुमारी स्वाति जैन के दीक्षा लेकर आर्यिका स्वर्णमती जी बनने में महत्वपूर्ण कारण बना। इस विषय में आर्यिका स्वर्णमती जी लिखती हैं

[137], पं. शिवचरनलाल जैन, प्रज्ञापुज्ज, 77

''भौतिकता की होड़ में नेत्र बंद कर दौड़ रहे युवा वर्ग को धर्म से जोड़ने का कार्य कर रही हैं। ''जैन युवा वर्ग को मांसाहार से सर्वदा दूर रहने एवं रात्रि भोजन के त्याग की विशेष प्रेरणायें आपसे सदैव प्राप्त हुआ करती हैं।''[138]

[138] पं. शिवचरनलाल जैन, प्रज्ञापुज्ज, 79

उपसंहार

आर्यिका श्री का व्यक्तित्व एवं साहित्य जैन धर्म के विकास में एक अभिन्न अंग हैं। वर्तमान में इस भौतिकवादी युग में मानव भोग–विलासमय जीवन प्राप्त करने के लिये न करने योग्य कार्यों को सम्पादित करते हैं। आगे बढ़ने की इच्छा उचित, अनुचित का भेद भूला देती हैं। प्रत्येक मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर दूसरे को कष्ट देने में नहीं हिचकिचाता। ऐसे स्थिति को जंगलराज कहते हैं। ऐसे में एक ऐसे विकल्प की आवश्यकता हैं जो मनुष्य को स्वार्थ भावना से ऊपर उठाकर प्रेम, वात्सल्य आदि भावों से परिचित कराये ऐसे में जैन साधिका आर्यिका चंदनामती जी ऐसा विकल्प हैं जिन्होंने सद्भावनाओं और नैतिकता के विकास में सम्पूर्ण जीवन लगा दिया।

आर्यिका चंदनामती जी बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य आचार्य शांतिसागर जी की परम्परा में दीक्षित आर्यिका हैं। उनका जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जिस परिवार में वैराग्य धारण कर दीक्षा लेने की प्राचीन परम्परा हैं। उनकी ज्येष्ठ भगिनी मैना ने उनके जन्म से पूर्व मात्र 18 वर्ष की आयु में वैराग्य पूर्वक गृह त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर इस युग की प्रथम बालसती होने का गौरव प्राप्त किया। उनके परिवार से जैन परम्परा को चार आर्यिकाओं का सानिध्य प्राप्त हुआ। बचपन से ही सादा जीवन उच्च विचार रखने वाली आप बाल्यावस्था में माधुरी के नाम से जानी जाती थी। गुड़िया से खेलने की आयु में गूढ़तम जैन साहित्य का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया था। जिससे उनका मन संसार से विरक्त होने लमा। ऐसे में आर्यिका ज्ञानमती जी के सानिध्य ने नववैरागिनी को समय–समय पर सम्बोधन प्रदान कर एवं शास्त्र स्वाध्याय करा कर वैराग्य को दृढ़ करके जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर माधुरी को आर्यिका चंदनामती जी के रूप में नयी पहचान प्रदान की थी। वर्तमान परिपेक्ष्य में आर्यिका चंदनामती जी एक महान् विभूति हैं जिन्होंने जैन धर्म के सिद्धांतों का पूर्ण निष्ठा से पालन करते हुये पाश्चात्य एवं भौतिकता की चकाचौध से दिग्भ्रमित होती युवा पीढ़ी को भारतीय संस्कृति, जैन धर्म एवं आदर्शमय जीवन से परिचित

करने का प्रयास किया। जैन धर्म में आर्यिका दीक्षा ग्रहण करते समय दीक्षा गुरू आचार्य जी या गणिनी आर्यिका जी द्वारा आगम सम्मत 28 मूलगुण धारण कराये जाते हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने दीक्षित जीवन के 29 वर्षों में गुरू माता गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा प्रदत्त मूलगुणों का पूर्ण निष्ठा से पालन किया तथा अपने जीवन का प्रत्येक क्षण प्राणीमात्र के कल्याण हेतु समर्पित किया है।

आर्यिका श्री की लौकिक शिक्षा कम होते हुये भी उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। भाषाई ज्ञान एवं संस्कृत–व्याकरण ज्ञान के आधार पर उन्होंने अनेक प्राचीन ग्रंन्थों की हिन्दी टीका कार्य किया। जैन धर्म के प्राचीनतम ग्रंथ, ग्रंथाधिराज षट्खण्डागम की आर्यिका ज्ञानमती जी कृत सिद्धांत–चिंतामणि ग्रंथ की हिन्दी टीका करके जैन धर्म के गूढ़तम रहस्यों को सरलता से प्रस्तुत किया। आर्यिका श्री ने लगभग 200 ग्रंथों की सरल भाषा में रचना, टीका, सम्पादन आदि का कार्य करके जैन साहित्य के उत्थान का महत्वपूर्ण कार्य पूर्ण किया। आर्यिका श्री ने चौबीस तीर्थंकरों, उनकी जन्मभूमि व पंचकल्याणक भूमि, सिद्धक्षेत्रों की महिमा आदि विषयों पर भजनों के लेखन का कार्य कर जैन भजन साहित्य को नवीन आयाम प्रदान किये। आर्यिका श्री अनुशासन, स्वाध्याय, संगीत शिक्षा एवं स्त्री शिक्षा पर विशेष बल देती हैं। उनके अनुसार शिक्षा मानव को सभ्य बनाती है। स्त्री जिसे जननी, माता आदि उपाधियों से अलंकृत किया जाता हैं, वह बालक की सर्वप्रथम गुरू होती हैं। जो बालक को निस्वार्थ भाव उच्च संस्कार प्रदान कराती हैं। जिस परिवार में स्त्री शिक्षित होती हैं वहाँ जन्म लेने वाले बालक को माता के माध्यम से समय–समय पर उत्तम शिक्षायें प्राप्त होती रहती हैं। साथ ही संगीत शिक्षा मनुष्य मानसिक शांति प्रदान करती हैं। माता द्वारा बालक को सुनाई जाने वाली लोरियाँ बालक के लिये संगीत शिक्षा की प्रथम सीढ़ी हैं।

आर्यिका श्री ने प्राणिमात्र की रक्षार्थ जैन धर्म के मूल सिद्धांतों अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य के प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया। आर्यिका श्री के अनुसार जीव का स्वभाव अहिंसामय हैं, हिंसा आदि पाप विभाव हैं। जब जीव अपने स्वभाव को भूलाकर विभाव का आश्रय लेता हैं, तो वह स्वयं अपनी आत्मा घात करता हैं इसलिये प्रत्येक जीव को पाप प्रवृत्ति

को छोड़कर धर्म में मन लगाना चाहिये। अहिंसा मानव को मैत्रीमय, वात्सल्यमय, सद्भावनायुक्त एवं शांतिमय जीवन प्रदान करती हैं। आर्यिका श्री भगवान महावीर के संदेश जिओ और जीने दो के विषय में कहती हैं कि प्रत्येक जीव चाहे वह छोटा होया बड़ा उसे जीने का समान अधिकार हैं। कोई भी जीव अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु दूसरे के जीवन के जीवन को नष्ट नहीं कर सकता हैं। यदि मानव दूसरे के अथवा अपने जीवन का घात कर ले तो वह महापाप का संचय कर लेता हैं। पाप से निवृति व पुण्य की प्राप्ति के लिये अहिंसा के सिद्धांत का पालन अवश्यंभावी हैं। जैन धर्म विश्व का एकमात्र ऐसा धर्म हैं जो मनुष्य को भक्त ही नहीं, अपितु भगवान बनने की कला सिखाता है। आर्यिका श्री अपने प्रवचनों के माध्यम से जन– जन को जैन धर्म की अनूठी कला से परिचित कराती हैं।

आज के युग में विभिन्न तकनीकी ज्ञान के प्रयोग द्वारा जब सम्पूर्ण विश्व एक इकाई के रूप में एक साथ मिलकर कार्य कर रहा हैं। ऐसे में युवा पीढी अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी के माध्यम से ही शिक्षा ग्रहण करने लगी हैं। प्राचीन जैन साहित्य प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में हैं इन भाषाओं देश की युवा पीढ़ी अनभिज्ञ होती जा रही हैं। तब आर्यिका चंदनामती जी ने देश– विदेश में रहने वाली युवा पीढ़ी को धर्म से जोडे रखने के लिये प्राकृत व संस्कृत ग्रंथों का सरल रूप में हिन्दी अनुवाद का कार्य किया अंग्रेजी भाषा की बढ़ती लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुये आर्यिका श्री ने जैन ग्रंथों को अग्रेंजी में प्रस्तुत करने का कार्य प्रारम्भ किया। वर्तमान में लगभग 12 ग्रंथों को अंग्रेजी में प्रस्तुत करने का कार्य कर चुकी हैं। जैन विधानों में महत्वपूर्ण शांति विधान को भी अंग्रेजी में लिखकर जैन धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रत्येक वर्ष जुलाई माह में विदेशी अनुसंधान कर्त्ता भारत आते हैं जिनके लिये दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा विशेष सेमिनार का आयोजन किया जाता हैं। आर्यिका चंदनामती जी सेमिनार के माध्यम से अंग्रेजी भाषा में विदेशी जिज्ञासु अनुसंधान कर्त्ताओं को जैन संस्कृति से परिचित कराने का कार्य करती हैं। आर्यिका श्री की वाणी में तात्त्विक एवं दार्शनिक चिंतन पूर्ण सामान्य जन तक पहुॅंचाती हैं। आपके दर्शन दर्शक को पावन बनाते हैं और आपकी सत्य प्रिय मधुरिम वाणी मत–मतान्तरों पर विराम लगाती हैं। आपकी सशक्त लेखनी धार्मिक, दार्शनिक,

ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक शोध–खोज को लिये हुये है। आपके अनुसार मनुष्य का कर्म अहिंसा युक्त ही होने चाहिये। संकीर्ण हिंसक, स्वार्थरत भावनाओं से मुक्त मानव ही धर्म, समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में सहायक हैं।

जैन धर्म के नियम पंच महाव्रत, पंच समिति, त्रिगुप्ति, संयम, तप, त्याग आदि को चारित्र में अंगीकार करते हुये आर्यिका चंदनामती जी आर्यिका चर्या का पालन कर रही है लगभग 200 पुस्तकें आपकी परिष्कृत लेखनी से प्रसूत हैं। भाषा सरस, प्रांजल और शैली मधुर। सम्पूर्ण कृतियों में गहन अध्ययन/स्वाध्याय, अभिव्यक्ति–कौशल का परिचय सहज ही मिलता हैं। आर्यिका श्री के मंगल विचार जैन संस्कृति के विकास के लिये अमोघ मंत्र के समान है। अतः जैन धर्म एवं संस्कृति में रूचि रखने वाले मानवों के लिये आर्यिका श्री का जीवन एवं विचार अनुकरणीय हैं। अतः जैन सिद्धांतों के विकास एवं साहित्य के उत्थान के इच्छुक प्रत्येक प्राणी को इन अमूल्य विचारों का सम्मान करते हुये अपने जीवन में यथोचित स्थान देना चाहिये। उनके जीवन एवं साहित्य पर किया गया यह शोध–प्रबन्ध मुझे आत्मबल, धर्मबल तथा बुद्धिबल प्रदान करेगा।

निष्कर्ष

आर्यिका चंदनामती जी दिगम्बर जैन आर्यिका पद के 28 मुलगुणों का पालन करते हुये, दस धर्म, बारह भावनाओं आदि को जीवनचारित्र में अंगीकार करते हुये अपनी चर्या का निर्दोष पालन कर रही हैं। उनकी शांत छवि एवं वैराग्य पूर्ण जीवन शैली से प्रभावित होकर वर्तमान में उनके हजारों की संख्या में भक्त हैं, जिन्हें वे जैन धर्म की शिक्षा प्रदान कर धर्म के विकास का कार्य कर रही हैं। उनकी चर्या से प्रभावित होकर आर्यिका स्वर्णमती जी ने दीक्षा ली व अनेकों कन्याओं ने ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया, यह व्रत जैन आर्यिका पद की प्रारम्भिक अवस्था हैं। इस प्रकार आर्यिका श्री के माध्यम से वर्तमान में लुप्त होती दिगम्बर जैन आर्यिका परम्परा को नवीन आयाम प्राप्त हो रहा है। आर्यिका श्री ने अपनी लेखनी से लगभग 200 ग्रंथों की रचना, टीका आदि करने का कार्य किया। जिसमें उन्होंने सरल एवं हृदयस्पर्शी भाषा का प्रयोग करके भाषा की क्लिष्टता एवं गूढ़ सिद्धांतों के कारण धर्म से विमुख हो रही युवा पीढी को पुनः धर्म से जोड़ने का कार्य किया। उनके द्वारा लिखे गये भजन आज बालक–बालिकाओं को अत्याधिक आकर्षित करते हैं। जैन सिद्धांतों व अध्यात्म पर आधारित इन भजनों के माध्यम से जैन धर्म की प्रभावना का कार्य हो रहा हैं। जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म हैं, जिसमें सब जीवों को समान मानकर सबके हित को सर्वोपरि माना गया है। आर्यिका श्री के प्रवचनों के द्वारा श्रावक–श्राविकायें जैन धर्म के मूलमंत्र अहिंसा से परिचित हो रहे हैं, जिससे उनके जीवन से हिंसा का ह्रास हो रहा हैं। आर्यिका श्री ने एनसाइक्लोपिडिया ऑफ जैनिज्म के माध्यम से युवा पीढ़ी को धर्म से जोड़कर जैन धर्म व संस्कृति से परिचित कराकर भगवान महावीर के सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार किया। आर्यिका श्री ने चारों अनुयोगों के ग्रंथों की रचना, टीका, सम्पादन आदि करके जैन साहित्य को विकसित करके जैन धर्म की अभूतपूर्व उन्नति का कार्य किया, साथ अंग्रेजी ही भाषा में जैन साहित्य को प्रस्तुत करके विदेशी अनुसंधानकर्त्ताओं को जैन साहित्य से जोड़ने कार्य किया जिससे जैन धर्म, दर्शन का अत्याधिक विकास हो रहा हैं।

आर्यिका श्री ने अपनी लेखनी के माध्यम से षट्खण्डागम ग्रंथ की आर्यिका ज्ञानमती कृत संस्कृत टीका (सिद्धांत चिंतामणि टीका) का सरल हिन्दी में अनुवाद करके सामान्य जैन श्रावक–श्राविकाओं को जैन सिद्धांतों से परिचित कराया। महाव्रत धारी आर्यिका श्री ने परहित की भावना से जैनधर्मावलम्बियों को जैन धर्म से जोडा जिससे जैन धर्म का अत्याधिक विकास हुआ। जैन धर्म में देवदर्शन को जैन श्रावक–श्राविकाओं के छह आवश्यकों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, आर्यिका श्री ने विभिन्न जैन तीर्थों के विकास में मार्गदर्शन प्रदान कर जैन धर्म व संस्कृति का विकास किया। वर्तमान में शताधिक जैन श्रावक–श्राविकायें प्रतिदिन तीर्थों के दर्शन कर अपने जीवन को सफल रहे है। साथ ही वे विभिन्न प्रकार के शैक्षिक का कार्यक्रमों के माध्यम से धार्मिक शिक्षा को प्रसारित कर रही हैं।

उनके व्यक्तित्व एवं साहित्य से जैन धर्म पर धनात्मक प्रभाव पड़ता हैं। आर्यिका श्री के द्वारा जैन धर्म का धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, शैक्षिक, साहित्यिक विकास हो रहा है। आर्यिका चंदनामती एवं उनके साहित्य का जैन धर्म के विकास में अत्याधिक योगदान हैं।

भावी शोधार्थियों हेतु सुझाव :

1. यह शोध केवल जैन आर्यिका चंदनामती जी पर ही किया गया है अन्य आर्यिकाओं पर भी शोध कार्य किया जा सकता है।
2. आर्यिका चंदनामती जी के तत्व चिंतन, योग संबंधी विचारों आदि से सम्बन्धित विषयों पर शोध कार्य किया जा सकता है।
3. इस शोध में केवल आर्यिका चंदनामती जी के साहित्य एवं विचारों को प्रकाशमान किया गया हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जैन साहित्य पर शोध कार्य किया जाना सम्भव है।
4. आर्यिका चंदनामती जी के विचारों का किसी व्यक्ति विशेष के विचारों के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता हैं।
5. आर्यिका चंदनामती जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का अन्य संघस्थ आर्यिकाओं द्वारा किस प्रकार पालन किया जा रहा है, इस प्रत्यय पर भी अध्ययन कार्य सम्भव हैं।

6. आर्यिका चंदनामती जी के शैक्षिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता हैं।

7. वर्तमान भारत के सन्दर्भ में आर्यिका चंदनामती जी के नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा–संबंधी विचारों का समालोचनात्क अध्ययन किया जा सकता हैं।

8. आर्यिका चंदनामती जी एक आदर्श शिक्षिका के रूप में विषय पर भी शोध कार्य सम्भव हैं।

9. वर्तमान युग में आदर्श भगिनी व आदर्श शिष्या आर्यिका चंदनामती जी विषय पर भी कार्य किया जा सकता हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आचार्य, विद्यासागर. 2017–2018. आत्मानुशासन. जैन विद्यापीठ, सागर, मध्यप्रदेश।

आर्यिका, चंदनामती. 2017. जैन शासन ध्वज परम्परा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

पन्नालाल, साहित्याचार्य, 2017. डा. पद्मपुराण द्वितीय भाग, सोलहवाँ संस्करण. भारतीय ज्ञानपीठ।

आर्यिका, ज्ञानमती. 2016. जैन धर्म एवं भगवान ऋषभदेव. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2016. ऋषभगिरि मांगीतुंगी भजन संग्रह. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2015. आरती संग्रह. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2015. सप्तऋषि विधान.. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2014. नवग्रहशांति विधान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2014. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–12. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2014. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–11. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

मुनि, प्रमाणसागर 2014. जैन धर्म और दर्शन, चौदहवां संस्करण. निर्ग्रंथ फाउण्डेशन, भोपाल।

आर्यिका, चंदनामती. 2013. तत्त्वार्थ सूत्र एवं दशधर्म भजन. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

जैन, पं., शिवचरनलाल. 2013. प्रज्ञा पुंज. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आचार्य, सन्मतिसागर. 2013. रत्नकरण्ड श्रावकाचार स्याद्वादी टीका. स्याद्वाद ज्ञानपीठ श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक तीर्थ, बड़ागाँव, बागपत।

आर्यिका, चंदनामती. 2012. द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2012. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–10. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2012. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–9. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2012. जम्बूस्वामी चारित. सम्यकज्ञान मासिक पत्रिका, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

जैन, पं0, हीरालाल. 2011. पूजन पाठ प्रदीप, 41 संस्करण, शैली श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन संस्थान।

जैन, डॉ0, पन्नालाल. 2011. आचार्य जिनसेन विरचित आदिपुराण भाग–2, तेरहवाँ संस्करण. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2011. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–8. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2011. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–7. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2011. श्रावक संस्कार निर्देशिका. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2011. आओ जानें, तेरहद्वीप रचना में क्या–क्या हैं?. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती. 2011. प्रवचन निर्देशिका. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2011. दशलक्षण पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती. 2010. प्रथमाचार्य शान्तिसागर महाराज.. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2010. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–5. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

जैन, जितेन्द्र कुमार. 2010. मुक्ति की ओर. साहित्य ज्ञान रत्न. मेरठ।

रानी, सीमा. 2009. गांधियन फिलॉस्पीः द वे टू पीस एण्ड ह्यूमन वैल बींग, जनरल ऑफ एजुकेशन एण्ड पैडागोजी, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वाल्यूम 1, नम्बर 2, पृष्ठ 29–33।

आचार्य, धर्मभूषण. 2009. तत्त्वार्थसूत्र. दीप प्रिंटर्स. नई दिल्ली।

आचार्य, भारतभूषण. 2009. शील मंजूषा के महकते पुष्प. श्री दिगम्बर जैन धर्मार्थ वात्सल्य समिति।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2009. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित द्वितीय संस्करण. पुस्तक–1. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2009. षट्खण्डागम विधान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2009. पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2009. जैन वर्शिप. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2008. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–4. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

नेहरू, जवाहर, लाल. 2008, कक्षा 8, हिंदी पूरक पाठ्य पुस्तक–भारत की खोज. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्।

भारिल्ल, पं0 रत्नचन्द. 2008. चलते फिरते सिद्धों से गुरू. श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट, जयपुर।

शास्त्री, कैलाशचन्द्र. 2008. जैन धर्म, तेरहवाँ संस्करण. आचार्य शांतिसागर 'छाणी ग्रंथमाला' ।

आर्यिका, चंदनामती. 2008. तीर्थंकर जन्मभूमि विधान.. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2008. कल्याण मंदिर विधान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

वर्णी, क्षुल्लक, सहजानन्द. 2008. श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार. श्री सहजानन्द शास्त्रमाला. मेरठ।

आर्यिका, चंदनामती. 2008. विश्वशांति चालीसा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2007. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–3. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

मुनि, सौरभसागर. 2007. जैनत्व का बोध. सौरभांचल प्रकाशन।

भारिल्ल, पं0 रत्नचन्द. 2007. यदि चूक गये तो..... पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2007. श्री भक्तामर मण्डल विधान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2007. जम्बूद्वीप भजन संग्रह–3. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2007. प्रयाग तीर्थ पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2007. जैन भारती अंग्रेजी संस्करण. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2007. समयसार गाथा पद्यानुवाद. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2006. समयसार विधान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2006. चारित्र चन्द्रिका. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2006. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–2. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती एवं आर्यिका, चंदनामती. 2006. षट्खण्डागम सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद सहित पुस्तक–6. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2006. आर्यिका रत्नमती परिचय एवं पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आचार्य, देश भूषण. 2005. अहिंसा धर्म के विविध आयाम, प्राकृत विद्या. श्री कुन्द–कुन्द भारती ट्रस्ट, नई दिल्ली, अक्टूबर 05–मार्च 06, वर्ष 18, अंक 1।

परेरा, आर. पी. 2005. टीचर्स गाइड टू पीस एजुकेशन, जनरल ऑफ वैल्यू एजुकेशन, वाल्यूम 5, नम्बर 1,2, सन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली ।

आर्यिका, चंदनामती. 2005. जम्बूद्वीप भजन संग्रह–2. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आचार्य, विद्यासागर. 2005. समग्र–खण्ड़ 4. आगम प्रकाशन, रेवाड़ी।

आचार्य, धर्मभूषण. 2005. जैन दर्शनसार, द्वितीय भाग. श्री दिगम्बर जैन समिति, गाजियाबाद।

आर्यिका, चंदनामती. 2005. जम्बूद्वीप भजन संग्रह–2. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2005. कुण्डलपुर भजन संग्रह. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2005. ज्ञानतीर्थ परिचय एवं पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2005. पंचकल्याणक तीर्थ विधान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2004. सच्चा वैराग्य बना इतिहास. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2004. कुन्दकुन्द मणिमाला. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2004. काकन्दी तीर्थ परिचय एवं पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2003. श्री महावीर स्त्रोत. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आचार्य, धर्मभूषण. 2003. जैन दर्शन सार. श्री दिगम्बर जैन समिति, गाजियाबाद।

ऐलक, विज्ञानसागर. 2003. चारित्र चक्रवर्ती–एक अनुचिंतन. नैशनल फाईन आर्ट प्रेस।

उपाध्याय, निर्णयसागर. 2003. हमारे आदर्श. आचार्य शांतिसागर जी महाराज साहित्य प्रकाशन समिति।

आर्यिका, चंदनामती. 2003. स्वर्णिम व्यक्तित्व की धनी–गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माता जी. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2003. वाराणसी तीर्थ परिचय एवं पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

मोहन, राधा. 2003. रिसर्च मैथड्स इन ऐजुकेशन, नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद।

आर्यिका, चंदनामती. 2002. गणिनी ज्ञानमती–परिचय एवं प्रश्नोत्तरी. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2002. ऋषभदेव नृत्य नाटिका. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2002. राजगृही तीर्थ परिचय एवं पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

शास्त्री, सुमेरूचन्द्र, दिवाकर. 2002. महाश्रमण महावीर. वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला. हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2002. आरती संग्रह. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2001. श्री जिनार्चना. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2001.महावीर भक्ति प्रसून. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2001. अमूल्य प्रवचन. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2001. संस्कृत साहित्य के विकास में श्री ज्ञानमती माता जी का योगदान. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2001. ऋषभदेव दशावतार. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2001. कुण्डलपुर तीर्थ परिचय एवं पूजा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

उपाध्याय, गुप्तिसागर. 2001. मइंकलेहा चरिउ, साहित्य भारती प्रकाशन।

आर्यिका, चंदनामती. 2000. धन्य हुआ विपुलाचल पर्वत. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 2000. ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आचार्य, गुणभद्र. 2000. उत्तरपुराण, सातवां संस्करण. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

मुनि, सौरभसागर. 2000. धर्म गगन में करें विहार. वर्धमान ऑफसेट प्रिन्टर्स. लखनऊ।

आर्यिका, चंदनामती. 1999. महासती चंदना. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

शर्मा, आर. ए. एवं चतुर्वेदी. 1998. शिखा, गुरू, शिष्य एवं ज्ञान , सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।

आर्यिका, चंदनामती. 1998. ज्ञानमती माताजी की अमृतवाणी. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 1998. अवध की अनमोल मणि. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 1998. रानी त्रिशला के अनोखे सपने. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 1997. गणिनी ज्ञानमती चरितम्. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

अग्रवाल, ओमप्रकाश. 1997. प्रवचन पढो तनाव भगाओ. प्राच्यश्रमण भारती, मुजफ्फरनगर।

आर्यिका, ज्ञानमती. 1997. जैन भारती, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 1996. भगवान महावीर चालीसा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, चंदनामती. 1995. ज्ञानज्योति की भारत यात्रा. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

जैन, डा0, नानकचन्द. 1994. धर्म प्रवचन. श्री सहजानन्द शास्त्रमाला, मेरठ।

उपाध्याय, समतासागर. 1994. दक्षिणोदित धर्म सूर्य. आचार्य दर्शनसागर पब्लिकेशन, जयपुर।

आर्यिका, चंदनामती. 1992. ध्यान साधना. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

शास्त्री, डॉ0, नेमिचन्द्र. 1992. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, प्रथम भाग, श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ।

शास्त्री, डॉ0, नेमिचन्द्र. 1992. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, द्वितीय भाग, श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ।

शास्त्री, डॉ0, नेमिचन्द्र. 1992. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, तृतीय भाग, श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ।

शास्त्री, डॉ0, नेमिचन्द्र. 1992. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, चतुर्थ भाग, श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ।

आचार्य, अभिनन्दनसागर. 1985. श्री सर्वोदय तीर्थग्रंथ उत्तरार्द्धः. अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज।

शास्त्री, ब्रह्मचारिणी, माधुरी. 1984. सुमेरू वंदना,. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

शास्त्री, ब्रह्मचारिणी, माधुरी. 1980. मातृभक्ति. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आर्यिका, ज्ञानमती. 1978. प्रवचन निर्देशिका. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

आचार्य, कुन्द–कुन्द. 1969. समयसार , ज्ञानोदय प्रकाशन, जबलपुर।

आचार्य, श्रुतसागर. 1949. तत्त्वार्थवृत्ति. भारतीय ज्ञानपीठ. काशी।

www. Encyclopedia of Jainism

Gyanmati-wikipedia

www. Bhaktibharat. Com

www. Shahityasangrah.com

www. Jainworld. Com

https://en.m.wikipedia.org

www. JainGranths.com

परिशिष्ट

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY
FIRST SPECIAL CONVOCATION

आर्यिका

BABLU
BABLU

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद द्वारा वैशाख कृ. दूज, 8 अप्रैल 2012 को
पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी को प्रदत्त पीएच.डी. की मानद् उपाधि

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

TMU

(उत्तर प्रदेश विधायिका अधिनियम संख्या 30, सन् 2008 द्वारा स्थापित)

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

द्वारा

पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका

श्री चंदनामती माताजी

को विश्वविद्यालय अधिनियम परिच्छेद 7 (ई) के अंतर्गत

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

की मानद उपाधि

आज दिनांक 8 अप्रैल 2012 को

मुरादाबाद भारत गणराज्य में आयोजित

प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह

में प्रदान की जाती है।

शोध कर्त्री आर्यिका ज्ञानमती जी ससंघ से साक्षात्कार करते हुये

GUINNESS WORLD RECORDS
CERTIFICATE
The tallest Jain idol
was achieved by
Ganini Gyanmati Mataji,
Chandanamati Mataji &
Shri Ravindrakirti Swamiji (India)
at Mangi Tungi,
Nasik,India,
on 6 March 2016.
OFFICIALLY AMAZING

शोध कर्त्री आर्यिका स्वर्णमती जी से साक्षात्कार करते हुये

खुरई (म.प्र.) में सन्त शिरोमणि आचार्य श्री
विद्यासागर जी महाराज एवं आर्यिका शिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी के दो संघों का संगम-
देखिए कतिपय चित्र।

सिद्ध क्षेत्र मांगीतुंगीः 108 फिट ऊँची ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा

प्रकाशित

शोध पत्र

आर्यिका चन्दनामती जी एवं उनके साहित्य का जैन धर्म में योगदान

स्वाति जैन

शोधार्थिनी तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

जैन धर्म क्या हैं?

सर्वप्रथम इस प्रश्न का उत्तर अति आवश्यक हैं मुनि प्रमाण सागर जी के अनुसार "जैन धर्म जिन से बना हैं जिन का अर्थ हैं– जीतने वाला। जो अपनी इन्द्रियों, मानसिक विकारों, इच्छाओं, वासनाओं को जीतता हैं वह जिन हैं। जिन कोई ईश्वरीय अवतार नहीं हैं अपितु काम क्रोधादिक विकारों को जीतने वाला सामान्य मनुष्य ही हैं। जिन के अनुयायी ही जैन कहलाते हैं। जैन का अर्थ हैं जिन का अनुसरण अनुगमन करने वाले।"

इस प्रकार जैन धर्म जिन अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के अनुसरण करने वालों का धर्म हैं। जैन धर्म की प्राचीनता को परिभाषित करते हुए विद्वानों ने लिखा हैं–

1. **डॉ0 जिम्मर** जैन धर्म को प्रागैतिहासिक, वैदिक धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र तथा प्राचीन मानते हुए लिखते हैं, "ब्राह्मण आर्यों से जैन धर्म की उत्पत्ति नहीं हैं, अपितु वह बहुत प्राचीन प्राग्आर्य, उत्तरपूर्वी भारत की उच्च श्रेणी के सृष्टि विज्ञान और मनुष्य आदि के विकास तथा रीतिरिवाजों के अध्ययन को व्यक्त करता हैं।"
2. लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास हैं कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे, किन्तु इसका प्रचार ऋषभदेव ने किया था। इसकी पुष्टि में प्रमाणों का अभाव नहीं हैं।"

–वरदाकान्त मुखोपाध्याय

जैन धर्म के अनुसार जिसमें चेतना पायी जाती हैं अर्थात् जो देखता, जानता हैं सुख–दुख का अनुभव करता हैं वह जीव हैं। प्रत्येक जीव में भगवान बनने की शक्ति हैं (सामर्थ्य हैं) यदि जीव स्वयं की आत्मा के स्वभाव अर्थात् निर्मल, निर्विकार जीवन व्यतीत करें तो वह परमात्मा बन सकता हैं परन्तु जीव विभावों के कारण काम–क्रोधादि को अपना स्वभाव मानता हैं और चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता हैं तथा नरक–निगोदादि गतियों में दुख भोगता हैं इन चर्तुगति परिभ्रमण व दुखों से मुक्ति का एक मात्र उपाय हैं जैनेश्वरी दीक्षा। जैनेश्वरी दीक्षा में केवल मनुष्य गति के जीव ही ग्रहण कर सकते हैं। इनमें सभी अंगोपांग से पूर्ण मनुष्य ही दीक्षा का अधिकारी हैं।

जैनेश्वरी दीक्षा में जीव पंच महाव्रत धारण कर निर्ग्रन्थ मुनिराज रूप उत्कृष्ट चारित्र का पालन करते हुये कर्मों की निर्जरा के लिये तय रूपी नौका में सवार होकर मोक्ष महल की ओर प्रस्थान करता हैं।

निर्ग्रन्थ मुनिराज की भांति स्त्रियाँ भी जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर सकती हैं वे श्वेत वस्त्र धारण कर उपचार से महाव्रत का पालन करती हैं व अनन्त सुख की प्राप्ति के लिये पुरूषार्थ करती हैं जिससे अगामी भव (पर्याय) में मोक्ष की प्राप्ति कर सकती हैं।

दिगम्बर जैन धर्म के अनुसार "स्त्री पर्याय से मोक्ष की प्राप्ति असम्भव हैं।"

सिद्धान्ताचार्य पं0 कैलाशचन्द्र शास्त्री जी की कृति "जैन धर्म" में जैन संघ का निरूपण करते हुए लिखा हैं — "मुनि, आर्यिका और श्रावक, श्राविका इनके समुदाय को जैन संघ कहते हैं। मुनि और आर्यिका गृहत्यागी वर्ग हैं और श्रावक श्राविका गृही वर्ग हैं।"

इस प्रकार जैन धर्म में चतुर्विध संघ महत्वपूर्ण हैं इनमें से किसी एक के अभाव में जैन धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती हैं। सिद्धान्ताचार्य जी के शब्दों में गृहत्यागी वर्ग मुनि पद और आर्यिका पद हैं। जैन धर्म में मुनि पद व आर्यिका पद पूजनीय हैं।

जैन धर्म मान्यता के आधार पर मूल रूप से दो वर्गों में विभाजित हो गया प्रथम वर्ग— दिगम्बर जैन धर्म व द्वितीय वर्ग— श्वेताम्बर जैन धर्म। वास्तविक परिपेक्ष्य से तीर्थंकर आदिनाथ से महावीर स्वामी तक सभी तीर्थंकरों ने दिगम्बर जैन धर्म का पालन किया इस प्रकार जैन धर्म का वास्तविक स्वरूप दिगम्बर जैन धर्म ही हैं। इसमें दिगम्बर मुनिराज दिशाओं को अम्बर अर्थात् वस्त्र मानते हैं तथा निर्ग्रन्थ अवस्था में स्वतन्त्रता पूर्वक परिभ्रमण करते हुए धर्म का प्रचार—प्रसार करते हैं। दिगम्बर जैन धर्म, जैन धर्म का मूल स्वरूप हैं इसे प्रमाणित करते हुए केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में भद्रबाहु के दक्षिण गमन का निर्देश करके आगे लिखा हैं—"यह समय जैन संघ के लिये दुर्भाग्यपूर्ण प्रतीत होता हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं हैं कि ईस्वी पूर्व 300 के लगभग महान् संघ भेद का उद्भव हुआ, जिसने जैन संघ को श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों में विभाजित कर दिया। दक्षिण से लौटे साधुओं ने, जिन्होंने दुर्भिक्ष के काल में बडी कडाई के साथ अपने नियमों का पालन किया था, मगध में रह गये अपने अन्य साथी साधुओं के आचार से असन्तोष प्रकट किया तथा उन्हें मिथ्या विश्वासी और अनुशासनहीन घोषित किया।"

—केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (हिन्दी संस्करण 1955) पृष्ठ संख्या 147

श्री आर. सी. मजुमदार ने लिखा हैं— "जब भद्रबाहु के अनुयायी मगध से लौटे तो एक बडा विवाद खडा हुआ नियमानुसार जैन साधु नग्न रहते थे, किन्तु मगध के जैन साधुओं ने श्वेत वस्त्र धारण करना प्रारम्भ कर दिया। दक्षिण से लौटे हुए जैन साधुओं ने इसका विरोध किया क्योंकि वे पूर्ण नग्नता को महावीर की शिक्षाओं का आवश्यक भाग मानते थे। विरोध का शान्त होना असम्भव पाया गया और इस तरह श्वेताम्बर (जिसके साधु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं) और दिगम्बर (जिसके साधु एकदम नग्न रहते है) सम्प्रदाय उत्पन्न हुये। जैन समाज आज भी दोनों सम्प्रदायों में विभाजित हैं।

इस प्रकार जैन धर्म में आचार्य भद्रबाहु जो निमित्त ज्ञानी थे उनके काल में मगध को ग्रसने वाला बारह वर्षीय महादुर्भिक्ष जैन धर्म के सम्प्रदाय विभाजन का कारण बना। पहला संघ मूल आगम के अनुसार आचारण करने वाला था, वह मूल आम्नाय कहलाया तथा दूसरा संघ शिथिलाचारी साधुओं का था, जो ईसवी की प्रथम शताब्दी में श्वेताम्बर मत का जनक बना।

दिगम्बर जैन धर्म में आर्यिका पद

प्रथम तीर्थंकर भगवान आदि नाथ जी की दोनों पुत्रियों ब्राह्मी व सुन्दरी ने भी जैनेश्वरी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। आदिनाथ भगवान से लेकर भगवान महावीर तक की अक्षुण्ण तीर्थंकर परम्परा में नारियों का भी प्रशंसनीय योगदान रहा हैं ब्राह्मी सुन्दरी जी के पश्चात् राजुल, चन्दनबाला आदि कन्याओं ने दीक्षा लेकर सर्वोच्च आर्यिका पद प्राप्त कर अपने जीवन को संयम से अंलकृत किया था। मनोवती, मनोरमा, सीता, अंजना, रणयमंजूषा, द्रौपदी आदि नारियों ने अपने सतीत्व के बल पर इन्द्रों के आसन कम्पायमान करके जिन धर्म की प्रभावना कर नारी समाज के गौरव–गरिमा को बढाया हैं।

भारत की इस पावन वसुन्धरा पर समय–समय पर अनेक आत्माओं ने जन्म लेकर जैन धर्म का प्रचार–प्रसार किया हैं। जैन संस्कृति का पुनरूद्धार किया हैं। एक सूक्ति हैं– "व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान् बनता हैं।" किन्तु तीर्थंकर जैसे महापुरूष जन्म और कर्म दोनों से महान् होते हैं। आज तक जितने भी तीर्थंकर हुये हैं सभी ने पूर्व भवों में अत्यधिक पुरूषार्थ द्वारा तप, त्याग करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके तीर्थंकर पद को प्राप्त किया हैं।

वर्तमान में पंचम काल चल रहा हैं यद्यपि पंचम काल में मोक्ष नहीं हैं फिर भी मोक्षमार्ग खुला हैं। इस कलिकाल में हीन संहनन होते हुए भी जो मनुष्य त्याग धर्म को अंगीकार करते हैं, तपस्या करते हैं, अणुव्रत, महाव्रतों को धारण करते हैं, वे नियम से देवगति को प्राप्त कर एक दिन परम्परा से मोक्षपद को प्राप्त करेंगें। आज के साधु हीन संहनन होने से जितनी तपस्या करते हैं उसमें हजार वर्ष की तपस्या का फल एक वर्ष की तपस्या में मिल जाता हैं। आज के साधु निर्दोष चारित्र को पालते हुए एवं कठोर तपस्या करके लौकान्तिक पद को भी प्राप्त कर सकते हैं। श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने मोक्षपाहुड की गाथा 77 में लिखा हैं–

अज्ज वि तिरयण सुद्धा, अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं।

लोयंतिय–देवत्तं, तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।।

अर्थात् आज भी तीन रत्न से शुद्ध दिगम्बर मुनि आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद और लौकान्तिक देव के पद को प्राप्त कर लेते हैं। पुनः वहां से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि नियम हैं लौकांतिक देव एक भवावतारी ही होते हैं।

वर्तमान युग में अनेकों महान् नारियाँ आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्वहित व परहित के लिये तत्पर हैं। प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य आचार्य वीरसागर जी महाराज की सुशिष्या गणिनीप्रमुख आर्यिका शिरोमणि परम पूज्यनीया आर्यिका ज्ञानमती माताजी की सुयोग्य एवं प्रथम शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती जी हैं। आर्यिका चन्दनामती गत 28 वर्षों से जैन धर्म के आर्यिका पद को गौरवान्वित कर रही हैं। आर्यिका चन्दनामती जी ने गृहस्थ जीवन में मात्र 11वर्ष व्यतीत किये। 11वर्ष की अवस्था में एक नन्हीं बालिका माधुरी (वर्तमान की आर्यिका चन्दनामती जी) ज्येष्ठ भगिनी वर्तमान की आर्यिका ज्ञानमती जी के जीवन से प्रभावित होकर वैराग्य के पथ पर अग्रसर हुई व ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। 13 वर्ष की आयु से नन्हीं माधुरी जैन धर्म के कठोर नियमों का पालन करते हुए शीघ्र ही पूर्णतः अभ्यस्त हो गई। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य "जैन धर्म का उत्थान" करना था जिसके लिए उन्होंने 13 अगस्त 1989 में आर्यिका दीक्षा अंगीकार की और माधुरी से आर्यिका चन्दनामती जी तक का सफर तय किया। दीक्षा के 28 वर्षों में उन्होंने अनेक ग्रन्थों की टीकायें की उन्होंने नाटक साहित्य, भजन साहित्य पद्य एवं पूजा साहित्य की रचना कर जैन धर्म के साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। उन्होंने 6 ग्रन्थों को सम्पादित किया उन्होंने जैन साहित्य का भी अंग्रेजी भाषा में भी अनुवाद किया। वर्तमान में उनके द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थों की संख्या 200 हैं। उनमें से कुछ ग्रन्थ वर्तमान में अप्रकाशित हैं। उनमें से कुछ प्रकाशित ग्रन्थों को शोधकर्त्री प्रस्तुत कर रही हैं–

<u>पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती जी का साहित्य</u>

टीका ग्रन्थ एवं पुस्तकें

1. षट्खण्डागम, भाग–1–हिन्दी टीका
2. षट्खण्डागम, भाग–2–हिन्दी टीका
3. षट्खण्डागम, भाग–3–हिन्दी टीका
4. षट्खण्डागम, भाग–4–हिन्दी टीका
5. षट्खण्डागम, भाग–5–हिन्दी टीका
6. षट्खण्डागम, भाग–6–हिन्दी टीका
7. षट्खण्डागम, भाग–7–हिन्दी टीका
8. षट्खण्डागम, भाग–8–हिन्दी टीका
9. षट्खण्डागम, भाग–9–हिन्दी टीका
10. षट्खण्डागम, भाग–10–हिन्दी टीका

11. षट्खण्डागम, भाग–11–हिन्दी टीका
12. षट्खण्डागम, भाग–12–हिन्दी टीका
13. महावीर स्त्रोत, संस्कृत–हिन्दी टीका
14. चारित्रचन्द्रिका
15. अमूल्य प्रवचन
16. ज्ञानमती माताजी की अमृतवाणी
17. श्रावक संस्कार निर्देशिका
18. गणिनी ज्ञानमती चरितम्
19. चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी– जीवनयात्रा
20. द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी
21. छहढाला (अर्थ एवं प्रश्नोत्तरी सहित)
22. ज्ञानज्योति की भारत यात्रा
23. जैनधर्म प्रश्नोत्तर माला
24. ध्यानसाधना
25. ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव
26. महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर–वास्तविक तथ्य
27. तेरहद्वीप रचना
28. भगवान पार्श्वनाथ चित्रकथा
29. ज्ञान रश्मि
30. जम्बूद्वीप रचना गाइड
31. पूनों का चाँद
32. अष्टमूलगुण
33. अवध की अनमोल मणि
34. संस्कृत साहित्य के विकास में श्री ज्ञानमती माताजी का योगदान
35. स्वर्णिम व्यक्तित्व की धनी–गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
36. गणिनी ज्ञानमती–परिचय एवं प्रश्नोत्तरी

नाटक साहित्य

1. महासती चन्दना
2. रानी त्रिशला के अनोखे सपने
3. सच्चा वैराग्य बना इतिहास
4. धन्य हुआ विपुलाचल पर्वत
5. ऋषभदेव दशावतार
6. ऋषभदेव नृत्य नाटक

भजन साहित्य

1. भजन संग्रह
2. जम्बूद्वीप भजन संग्रह
3. जिनभजन कुसुमांजलि
4. जम्बूद्वीप भजन संग्रह, भाग–2
5. जम्बूद्वीप भजन संग्रह, भाग–3

6. महावीर भक्ति प्रसून
7. कुण्डलपुर भजन संग्रह
8. भजन संग्रह (लगभग 350 भजन)
9. श्री भक्तामर मण्डल विधान
10. मनोकामना सिद्धि विधान
11. तीर्थंकर जन्मभूमि विधान
12. कल्याण मंदिर विधान
13. नवग्रह शांति विधान
14. समयसार विधान
15. सोलहकारण विधान
16. दशलक्षण विधान
17. एकीभाव स्तोत्र विधान
18. पंचकल्याणक तीर्थ विधान
19. रत्नत्रय विधान
20. सप्तऋषि विधान
21. वास्तुविधान
22. षट्खण्डागम विधान
23. आचार्य धर्मसागर विधान
24. गणिनी ज्ञानमती महापूजा

पद्य एवं पूजा साहित्य

1. कुण्डलपुर तीर्थ परिचय एवं पूजा
2. राजगृही तीर्थ परिचय एवं पूजा
3. श्री अष्टापद कैलाशगिरि परिचय एवं पूजा
4. वाराणसी तीर्थ परिचय एवं पूजा
5. काकन्दी तीर्थ परिचय एवं पूजा
6. ज्ञानतीर्थ (शिर्डी) परिचय एवं पूजन
7. आर्यिका रत्नमती परिचय एवं पूजा
8. प्रयाग तीर्थ पूजा
9. पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा
10. गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी की पूजन एवं भजन
11. ज्ञानमती पुष्पांजलि
12. गणिनी ज्ञानमती बारहमासा
13. मातृभक्ति
14. सुमेरू वन्दना
15. भगवान ऋषभदेव पूजन एवं चालिसा
16. श्री जिनार्चना
17. चालीसा संग्रह एवं रविव्रत पूजा
18. समवसरण पूजन एवं चालीसा
19. आचार्य शान्तिसागर पूजन
20. तीन मूर्ति पूजा
21. आरती संग्रह
22. कुन्दकुन्द मणि माला पद्यानुवाद
23. समयसार गाथा पद्यानुवाद

24. समयसार कलश पद्यानुवाद
25. भगवान महावीर चालीसा
26. ह्रीं बीजाक्षर पूजा
27. तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्म भजन
28. प्रथमाचार्य श्री शान्तिसागर महाराज काव्य कथानक

सम्पादित ग्रंथ

1. आर्यिका रत्नमती अभिनन्दन ग्रंथ
2. आचार्य वीरसागर स्मृति ग्रंथ
3. गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती अभिनन्दन ग्रंथ
4. कुण्डलपुर अभिनन्दन ग्रंथ
5. भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ
6. गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ

अंग्रेजी साहित्य

1. भगवान महावीर हिन्दी–अंग्रेजी जैन शब्दकोष (संकलनकर्त्री)
2. जैनभारती–अंग्रेजी (वाचना प्रमुख एवं सम्पादकीय मार्गदर्शन)
3. ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव
4. जैन धर्म और भगवान ऋषभदेव
5. जैन वर्कशॉप
6. दशलक्षण पूजा

एनसाइक्लोपिडिया ऑफ जैनिज्म की संकलनकर्त्री

आर्यिका चन्दनामती माताजी के जीवन की सबसे अनुपम कृति जैन धर्म के प्रथम लिखित ग्रंथ षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धान्त चिंतामणि हिन्दी टीका हैं। जिसमें उन्होंने अद्‌भुत विद्वता का परिचय दिया हैं। षट्खण्डागम ग्रंथ ताड पत्रों पर लिखित आचार्य पुष्पदंत एवं भूतबली जी कृत ग्रंथ हैं जो वर्तमान में मूडबद्री जी (दक्षिण कनारा) के जैन भण्डार में ताड पत्रों पर सुरक्षित हैं। वर्तमान परिपेक्ष्य से यह अत्यन्त कठिन ग्रंथ हैं जिसके कारण ग्रंथ का स्वाध्याय कर पाना असम्भव प्रतीत हो रहा था। ऐसी परिस्थिति में आर्यिका चन्दनामती जी ने सामान्य श्रावकों को हिन्दी टीका उपलब्ध करा कर ग्रंथ के स्वाध्याय की रूचि प्रदान की।

तकनीकी के माध्यम से जैन धर्म का विकास

आज की भौतिकतावादी वैज्ञानिक युग में देश की युवा पीढी पाश्चात्यता से प्रभावित हैं। ऐसी परिस्थिति में युवा आधुनिक तकनीकी के प्रयोग द्वारा इन्टरनेट के माध्यम से कम्प्यूटर, लैपटॉप आदि पर कार्य करते रहते हैं। परिवार, समाज व धर्म से जैसे उनका कोई सम्बन्ध न रहा हों। धार्मिक मूल्य एवं नैतिकता शून्य होती जा रही हैं। ऐसे में आर्यिका चन्दना मति जी ने अथक परिश्रम करके एनसाइक्लोपीडिया ऑफ जैनिज्म का निर्माण कर जैन धर्मावलम्बियों को धर्म से जोडने का प्रयास किया हैं। उन्होंने युवा पीढी को धार्मिक क्षेत्र में आगे बढाने के लिये इन्टरनेट के प्रयोग द्वारा सरल रूप से जैन साहित्य को इसमें उपलब्ध कराया। जिससे वर्तमान पीढी की रूचि जैन साहित्य को पढने के लिये जाग्रत हो। वर्तमान में हजारों की संख्या में लोग इसका प्रयोग कर रहे हैं। आर्यिका चन्दना मति जी का यह प्रयास जैन धर्म के विकास में अत्यन्त उपयोगी हैं।

धार्मिक शिक्षा का लौकिक शिक्षा के माध्यम से प्रसार

आर्यिका चन्दनामती जी की लौकिक शिक्षा यद्यपि अधिक नहीं हैं फिर भी उन्होंने अपने ज्ञान व परिश्रम द्वारा प्राकृत एवं संस्कृत के ग्रंथों की टीका करके हिन्दी में उपलब्ध कराया। उनके इन महत्वपूर्ण कार्यों के लिये उन्हें तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय ने पी. एच. डी. की मानद् उपाधि प्रदान की। इसके साथ ही आर्यिका चन्दनामती जी ने युवा पीढी के धार्मिक विकास के लिये तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय के जैन विभाग के लिये शास्त्री व आचार्य के पाठयक्रम के लेखन का कार्य किया जो यू. जी. सी. मानक पर मूल्यांकन के लिये गया हुआ हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म का प्रसार

आर्यिका चन्दना मती जी के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप प्रत्येक वर्ष पाश्चात्य देशों से ही अनेक रिसर्च स्कॉलर प्रत्येक वर्ष भारत आते हैं तथा आर्यिका चन्दनामती जी से जैन साहित्य की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

आर्यिका चन्दनामती ने अपने 28 वर्षों में जैन साहित्य से जन–जन को परिचित कराने का अथक प्रयास किया हैं। इस दिशा में उनका नवीनतम प्रयास धार्मिक साहित्य को अंग्रेजी में प्रसारित करना हैं। वर्तमान में शान्ति विधान का अंग्रेजी में अनुवाद करके धार्मिक क्षेत्र में नवीन क्रान्ति का उद्‌घोष किया हैं।

आर्यिका चन्दनामती ने अपनी गुरू द्वारा दिये गये नाम को सार्थक किया हैं। शोधकर्त्री उनके नाम को अपनी भाषा में परिभाषित कर रही हैं–

च – चन्दन सी पवित्र

न – न्यारी हो जगत से

द – दया की मूर्ति

ना – नाम सार्थक किया अपना

म – ममतामयी

ती – तीर्थों सी पावन

स्त्री शिक्षा पर विशेष बल

आर्यिका चन्दनामती स्त्री शिक्षा पर विशेष बल देती हैं उनके अनुसार स्त्रियों को पूर्ण अधिकार हैं कि वे ज्ञान की प्राप्ति करें। समय–समय पर उनके कुशल मार्ग दर्शन में त्रिलोक शोध संस्थान के तत्वाधान से समय–समय पर स्त्रियों के लिये विशेष कक्षा चलायी जाती हैं। आर्यिका चन्दनामती जी ने पारस चैनल के माध्यम से भी जैन धर्म के गूढतम विषयों को सरल व स्पष्ट रूप से जन–मानस तक पहुँचाने का प्रयास किया।

उपसंहार

आर्यिका चन्दनामति जी के जीवनवृत्त चारित्र एवं धर्मनिष्ठा वास्तव में सराहनीय हैं। आर्यिका पद के नियमों का पालन करते हुये उन्होंने जैन धर्म के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया हैं। उनके मार्गदर्शन में जैन साहित्य का पूर्णरूपेण प्रचार–प्रसार हो रहा हैं। आर्यिका चन्दनामती जी वास्तव में भावी पीढी के लिये एक नैतिकता की प्रचारक हैं। नवीन तकनीकी में प्रयोग करके उन्होंने जैन संस्कृति के प्रचार–प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

जैन, शिवचरनलाल, पंडित. प्रज्ञा पुञ्ज, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, 2013

शास्त्री, कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य, पं0. जैन धर्म, आचार्य शान्तिसागर 'छाणी'. स्मृति ग्रंथमाला, 2007

प्रमाण सागर, मुनि. जैन तत्व विद्या. भारतीय ज्ञानपीठ. 2012

ज्ञानमती, आर्यिका. जैन भारती, दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान. 15 अगस्त, 2000.

चन्दनामती आर्यिका. सिद्धान्त चिंतामणि टीका. त्रिलोक शोध संस्थान.

आर्यिका चंदनामती जी का जैन साहित्य के विकास में योगदान

(सिद्धांत चिंतामणि टीका हिन्दी अनुवाद : समीक्षा)

स्वाति जैन

शोधार्थिनी

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

मुरादाबाद

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य आचार्य शांतिसागर जी की परम्परा के आचार्य वीरसागर की प्रथम बालसती आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रथम आर्यिका शिष्या आर्यिका चंदनामती जी हैं। जिन्होंने सदैव अपनी गुरू परम्परा का निर्वाह करते हुये जैन आर्यिका पद के नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन किया। वर्तमान में उन्हें दीक्षित हुये 29 वर्ष हो चुके हैं। इन 29 वर्षों में उन्होंने जैन धर्म व जैन साहित्य के प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

साहित्यिक कार्य

आर्यिका चंदनामती जी ने अपने दीक्षित जीवन में विभिन्न ग्रंथों की टीकाएँ, नाटक साहित्य, भजन साहित्य, पद्य एवं पूजा साहित्य, ग्रंथों का सम्पादन एवं अग्रेंजी साहित्य की रचना की हैं, जिनमें साहित्य की विविध कलायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। आर्यिका श्री द्वारा रचित एवं उपलब्ध साहित्य की संख्या लगभग 200 हैं। उनकी सम्पूर्ण रचनाओं का ज्ञान के स्त्रोत के रूप में जैन साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान हैं।

पी0 एच0 डी0 की मानद् उपाधि से सम्मानित

आर्यिका चंदनामती जी के साहित्यिक कार्यों के आधार पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद ने 8 अप्रैल 2012 को पी0 एच0 डी0 की मानद् उपाधि प्रदान की।

षट्खण्डागम ग्रंथ की सिंद्धांतचिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद

षट्खण्डागम ग्रंथ जैन धर्म का प्राचीनतम ग्रंथ हैं, जिसमें सर्वप्रथम जैन धर्म के मूलमंत्र महामंत्र णमोकार को लिपिबद्ध किया गया। आर्यिका चंदनामती जी ने जैनधर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ की टीका का हिन्दी अनुवाद करके जैन संस्कृति के गूढ रहस्यों को सरलता से प्रस्तुत किया हैं।

षट्खण्डागम ग्रंथ का महत्व

वर्तमान में हुंड़ावसर्पिणी काल के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने भावश्रुत का उपदेश दिया था, अतः अर्थकर्त्ता हैं। चार ज्ञान के धारी गौतम गणधर ने एक ही मुहूर्त्त में बारह अंग व चौदह पूर्व ग्रंथों की रचना की इसलिये द्रव्य श्रुत के कर्त्ता गौतम गणधर हैं। ''इसी क्रम में सभी अंग व पूर्व के एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ।''

सौराष्ट्र, गुजरात के काठियावाड़ देश के गिरिनगर नाम के नगर की चन्द्रगुफा में निवास करने वाले अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचनवत्सल आचार्य धरसेन जी ने भविष्य में अंगश्रुत का विच्छेद हो जायेगा, ऐसा विचारकर अंगश्रुत के ज्ञान को लिपिबद्ध कराने का निश्चय किया, इसके लिये आचार्यश्री ने दक्षिण पथ से आये पुष्पदंत व भूतबली नामक दो मुनियों को परीक्षा–पूर्वक अंगश्रुत का ज्ञान प्रदान किया। पुष्पदंत आचार्य ने गुरू से प्राप्त ज्ञान के आधार पर बीस प्ररूपणा रूप गर्भित सत्प्ररूपणा की रचना की आचार्य भूतबली ने द्रव्यप्रमाणनुगम को आदि लेकर षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना की।

षट्खण्डागम ग्रंथ के छह खण्ड़

सम्पूर्ण ग्रंथ छह खण्ड़ों में विभक्त हैं, इसलिये इसे षट्खण्डागम कहते हैं। छह खण्ड़ों के नाम हैं – 1. जीवट्ठाण 2. खुद्दाबंध 3. बंधसामित्तविचय 4. वेयणा 5. वग्गणा 6. महाबंध ।

षट्खण्डागम ग्रंथ की धवला टीका

षट्खण्डागम की मूल प्रति प्राकृत भाषा में रचित ताड़पत्रीय रचना हैं। समय के साथ प्राकृत भाषा का ज्ञान लुप्त होने लगा, ऐसे में लगभग ईसवी सन् 816 में आचार्य वीरसेन स्वामी ने षट्खण्डागम की प्राकृत–संस्कृत मिश्रित टीका की रचना की। धवला नाम की यह टीका आचार्य वीरसेन कृत 72000 श्लोक प्रमाण हैं।

षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धांतचिंतामणि टीका

गणिनी प्रमुख श्री आर्यिका ज्ञानमती जी ने षट्खण्डागम ग्रंथ के सूत्रों पर धवला के समान ही संस्कृत में सिद्धांतचिंतामणि नाम की मौलिक टीका लगभग 3200 पृष्ठों में लिखी हैं। जिनमें षट्खण्ड़ागम ग्रंथ के पॉच खण्ड़ों का वर्णन हैं : 1.जीवस्थान 2.क्षुद्रकबंध 3.बंधस्वामित्वविचय 4.वेदना खण्ड 5. वर्गणाखण्ड

आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा रचित सोलह पुस्तकों में निबद्ध 5 खण्डों छह हजार, आठ सौ, इकतालिस (6841) सूत्र हैं। प्रथम छह पुस्तकों में प्रथम खण्ड जीवस्थान का वर्णन हैं। सातवीं पुस्तक में द्वितीय खण्ड क्षुद्रक बंध हैं। आठवीं पुस्तक में तृतीय खण्ड बंधस्वामित्वविचय हैं। नवमी से लेकर बारहवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड हैं। तेरहवीं से लेकर सोलहवीं पुस्तक में पांचवां खण्ड वर्गणा खण्ड वर्णित हैं।

सिद्धांतचिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद

जैन धर्म अनादि निधन एवं शाश्वत् हैं। जैन धर्म के नियम सर्वथा सत्य व लोक हितकारी हैं। वर्तमान में काल के प्रभाव से जैन धर्म लुप्त प्रायः होने लगा हैं ऐसे में जैन आचार्यों, मुनियों व आर्यिकाओं ने धर्म व ज्ञान की रक्षा के लिये जैन साहित्य के विकास में अभुतपूर्व कार्य किये, परन्तु जैन धर्म का अधिकांश साहित्य प्राकृत एवं संस्कृत में हैं। जिससे वर्तमान जैन पीढ़ी भाषा की कठिनता के कारण साहित्य के अध्ययन से विमुख होने लगी। इस विषम परिस्थिति में आर्यिका चंदनामती जी ने वर्तमान पीढ़ी को धर्म से जोड़ने के लिये प्राकृत व संस्कृत ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद का कार्य किया। सिद्धांतचिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद करके उन्होंने जैन साहित्य को नवीन आयाम प्रदान किये। बारह पुस्तकों में आर्यिका श्री ने सिद्धांतचिंतामणि टीका के चार खण्डों का वर्णन किया हैं।

हिन्दी अनुवाद :

प्रथम पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की प्रथम पुस्तक में सत्प्ररूपणाओं का वर्णन हैं – आर्यिका चंदनामती जी प्रथम खण्ड की प्रथम पुस्तक में सिद्धगति का वर्णन करते हुये पृष्ठ संख्या 189 पर लिखती हैं : जिसमें जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, आहारादि संज्ञाएँ और रोगादिक नहीं पाये जाते हैं उसे सिद्धगति कहते हैं।

द्वितीय पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की द्वितीय पुस्तक में बीस प्ररूपणाओं का व्याख्यान हैं। आर्यिका चंदनामती ने बीस प्ररूपणाओं अर्थात् गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, 14 मार्गणा और उपयोग को हिन्दी भाषा में सरलता पूर्वक वर्णित किया हैं।

तृतीय पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की तृतीय पुस्तक में द्रव्य प्रमाणानुगम और क्षेत्रानुगम का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 11 पर द्रव्य के लक्षणों को वर्णित करते हुये लिखती हैं : ''द्रव्य का लक्षण सत् अर्थात् अस्तित्व हैं। जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित होता है, सत् कहलाता हैं''।

चतुर्थ पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की चतुर्थ पुस्तक में स्पर्शनानुगम और कालानुगम का वर्णन हैं। आर्यिका श्री चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 135 पर जैन श्रावकों के अणुव्रत, जैन गुरूओं के महाव्रत का वर्णन करते हुये लिखती हैं '' देवायु को छोड़कर किसी आयु का बंध हो जाने पर मानव अणुव्रत–महाव्रत को धारण नहीं कर सकता''।

पंचम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की पंचम् पुस्तक में अंतरानुगम–भावानुगम–अल्पबहुत्वानुगम का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 169 पर श्लोक 378 के अनुवाद में सम्यक्त्व व मिथ्यात्व का वर्णन करते हुये लिखती हैं : ''तीनों कालों में और तीनों लोकों में प्राणियों के लिये सम्यक्त्व के समान कोई कल्याणकारी वस्तु नहीं है एवं मिथ्यात्व के समान कोई दूसरी अहितकारी वस्तु नहीं हैं''।

षष्टम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की षष्टम् पुस्तक में जीवस्थान चूलिका का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 193 पर श्लोक 4 के अनुवाद में सम्यक्त्व धारी जीव की गति का वर्णन करते हुये लिखती हैं : ''जो सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला जीव है, वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय नहीं होता है, क्योंकि इनमें सम्यक्त्व को ग्रहण करने योग्य परिणाम नहीं पाये जाते हैं। इसलिये सम्यक्त्व धारी संज्ञी पंचन्द्रिय ही होते हैं''।

इस प्रकार छह पुस्तकों में जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड का वर्णन हैं।

सप्तम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की सातवीं पुस्तक में द्वितीय अधिकार क्षुद्रक बंध का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 311 पर श्लोक 134 के अनुवाद में भाव लिंगी संतों के विषय में वर्णन करते हुये लिखती हैं : ''मध्यलोक में ढ़ाई द्वीपों में एक सौ सत्तर कर्म भूमियॉं हैं, उन सभी कर्मभूमियों में एक साथ यदि अधिक से अधिक संयत – दिगम्बर मुनिराज हो जाये, तो प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त तीन कम नव करोड़ मुनि होते हैं''।

अष्टम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की आठवीं पुस्तक में तृतीय अधिकार बंधस्वामित्वविचय का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी पृष्ठ संख्या 142 पर श्लोक 42 के अनुवाद में श्रावकाचार का वर्णन करते हुये श्रावक की क्रियाओं के विषय में लिखती हैं : '' श्रावकों की चार क्रियायें हैं – पूजा, दान, शील और उपवास अथवा छह क्रियायें भी कही गई हैं। देवपूजा, गुरू की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छह क्रियायें गृहस्थों के लिये

प्रतिदिन करने की हैं''।

नवम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की नवमीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत प्रथम 'कृति' अनुयोगद्वार का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 20 से लेकर 93 में श्लोक 2 से 42 के अनुवाद में 64 ऋद्धियों का वर्णन किया हैं। वे लिखती हैं : '' रागद्वेष आदि विकार भावों को छोड़कर कठिन तपस्या करने वाले उन बाहुबली महाराज के अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व यह आठ विक्रिया ऋद्धि प्रकट हुई थीं। जिन्हें अनेक प्रकार की औषधिऋद्धि प्राप्त हैं और जो आमर्श, क्ष्वेल तथा जल्ल आदि के द्वारा प्राणियों का उपचार करते हैं ऐसे उन मुनिराज की समीपता जगत् का कल्याण करने वाली थी''।

दशम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की दसवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत 'वेदना' अनुयोगद्वार का वर्णन हैं। वेदना अनुयोगद्वार के सोलह भेद हैं जिनमें से 5 इस पुस्तक में वर्णित हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 15 पर मंगलाचरण के अनुवाद में अकृत्रिम चैत्यालयों की महिमा वर्णित की हैं। '' तीनों लोकों की सम्पत्ति के स्थान स्वरूप जो स्वयंभू भगवान के अकृत्रिम जिनमंदिर हैं और जो स्वयंसिद्ध–अनादिनिधन हैं, वे जिनमंदिर मेरा मंगल करें अर्थात् मेरे लिये मंगलकारी होवें।

एकादशम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की ग्यारहवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 267 पर श्लोक 199 के अनुवाद में अनुभाग का वर्णन किया हैं। वे लिखती हैं : '' आठों कर्मों और जीवप्रदेशों के परस्पर में अन्वय (एकरूपता) के कारणभूत परिणाम को अनुभाग कहते हैं''।

द्वादशम् पुस्तक – सिद्धांत चिंतामणि टीका की बारहवीं पुस्तक में चतुर्थ खण्ड वेदना खण्ड के अंतर्गत अनुयोगद्वार के शेष सात भेदों का वर्णन हैं। आर्यिका चंदनामती जी ने पृष्ठ संख्या 229 पर श्लोक 23 के अनुवाद में अंतराय कर्म के भेदों का वर्णन किया हैं। वे लिखती हैं : '' अंतराय कर्म के 5 भेद हैं, दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यान्तराय। जिस कर्म के उदय से दान की इच्छा करता हुआ भी दान नहीं दे सके वह दानांतराय कर्म हैं। जिस कर्म के उदय से लाभ की इच्छा होते हुए भी न हो सके, वह लाभान्तराय कर्म हैं। जिस कर्म के उदय से पुष्पादि और अन्नादि वस्तुओं को भोगना चाहे परन्तु भोग न सके, वह भोगांतराय कर्म हैं। जिस कर्म उदय से स्त्री आदि उपभोग की वस्तु का उपभोग न कर सके, वह उपभोगान्तराय कर्म हैं। जिस कर्म उदय से अपनी शक्ति प्रगट करना चाहे परन्तु प्रगट न कर सके, वह वीर्यान्तराय कर्म हैं।

इस प्रकार आर्यिका चंदनामती जी ने प्राचीनतम ग्रंथ की टीका का सरल शब्दों में अनुवाद करके जन –साधारण को प्राचीन साहित्य से परिचित कराया। जैन धर्म में जीव का परम ध्येय सिद्धत्व अर्थात् जन्म–मरण से मुक्ति हैं। इन पुस्तकों में सिद्ध अवस्था का स्वरूप, सिद्ध अवस्था प्राप्ति का मार्ग : सम्यक्त्व की प्राप्ति, श्रावकाचार, मुनि अवस्था, 64 ऋद्धि आदि वर्णन करते हुये जैन सिद्धांत को प्रस्तुत किया । भाषा, शैली की दृष्टि से अनुवाद सरल, सुबोध एवं उत्तम हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

चंदनामती, आर्यिका . 4 अक्टूबर 2009. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद द्वितीय संस्करण. पुस्तक–1. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 2006. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–2. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 26 अक्टूबर 2007. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–3. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 14 अक्टूबर 2008. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–4. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 21 फरवरी 2010. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–5. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 22 अक्टूबर 2006. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–6. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 6 जून 2011 . षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–7. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 11 अक्टूबर 2001. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–8. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 29 अक्टूबर 2012 . षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–9. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 29 अक्टूबर 2012. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–10. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 8 अक्टूबर 2014. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–11. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।

चंदनामती, आर्यिका . 8 अक्टूबर 2014. षट्खण्डागम हिन्दी अनुवाद पुस्तक–12. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर।